

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178872

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83
D53T

Accession No. G. H. 2806

Author धनवटे, सुमतिदेवी

Title तपान और ज्योति १९५९

This book should be returned on or before the date
last marked below.

अल्पमौली संस्करण

तूफान और ज्योति

एक मार्मिक उपन्यास

लेखिका

सुमतिदेवी धनवटे

पुस्तक भेंट के निमित्त



सत्यसाहित्य प्रकाशन

१९५६

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली-१

पहली बार : १९५९
अल्पमोली-संस्करण
मूल्य : डेढ़ रुपया

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत उपन्यास को हिंदी के पाठकों के लिए सुलभ करते हुए हमें बड़ा हर्ष होता है। यह एक बहुत ही मार्मिक कृति है। इसमें बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रारंभ करके एक कुलीन स्त्री के जीवन की कहानी दी गई है। लाड़-प्यार में पली उस स्त्री का विवाह एक विशिष्ट परिवार में होता है; लेकिन उसे शीघ्र ही पता चल जाता है कि उसका पति न केवल स्वेच्छाचारी है, अपितु उसका जीवन बहुत ही उच्छृंखल भी है। वह संस्कारवान् स्त्री अत्यंत व्यथित रहती है। उसकी आत्मा सहारा खोजती है। संयोग से वह मिल भी जाता है; लेकिन उसकी पार्थिव वासना उस आधार को कलुषित न कर दे, इस भय से वह उससे दूर भागती है। भाग्य की कठोरता उसे चैन नहीं लेने देती। अपने संस्कारों के कारण, कुल की मर्यादा के कारण, वह विद्रोह भी नहीं कर पाती। परिस्थितियां उत्तरोत्तर विषम होती जाती हैं। अंततोगत्वा उसका जीवन इतना भारभूत हो उठता है कि वह बड़ा ही कठोर कदम उठाने को बाध्य हो जाती है।

निस्संदेह कथानक बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। कई स्थलों पर पाठक का जी भर आता है।

मूल मराठी में यह रचना बहुत हा लोकप्रिय हुई है। हिंदी में इसका रूपांतर श्री रामचंद्र रघुनाथ सर्वटे ने किया है। हमें विश्वास है कि इस कृति का हिंदी-जगत् में सर्वत्र स्वागत होगा।

—मंत्री

तूफान और ज्योति

: १ :

नागपुर की हद पार करने तक प्रसन्न बड़े आराम से गाड़ी चला रहा था, लेकिन सरहद ज्योंही निकली कि उसने गाड़ी की रफ्तार बढ़ा दी। तीस मील की रफ्तार से दौड़नेवाली कार अब पचास-पचपन पर भाग रही थी। पेड़-पौधे जल्दी-जल्दी पीछे छूट रहे थे और ज्वार से लहलहाते खेत आ-आकर आंखों से ओझल हो रहे थे। सायंकाल की शीतल हवा बदन का स्पर्श कर रही थी।

कभी-कभी गाय-भैंसों अथवा बकरियों का झुंड बीच में आकर रुकावट डाल देता तो प्रसन्न मोटर की रफ्तार कम करके सर्पाकार मोड़ लेता हुआ बड़ी सफाई से रास्ता निकाल आगे बढ़ जाता। प्रतिमा अच्छी तरह जानती थी कि प्रसन्न पर मोटर को वायु-वेग से दौड़ाने का कितना खर्च सवार रहता है। जब वह उसके पास कार में बैठी होती तो उसके इस दुस्साहस से उसे बड़ा डर लगता था और वह कहा करती थी, “आपके साथ कार में आने में मेरी तो रूह कांपती है।”

“क्यों?”

“कहीं मोटर को कोई इतना तेज चलाता है? व्यर्थ ही जान पर आ बनेगी किसी दिन!”

तब चक्र पर से अपना बायां हाथ हटाकर प्रतिमा के गले में डालकर प्रसन्न कहता, “प्रीति, तुम पगली हो—पगली!”

आज भी प्रतिमा इसी तरह डर रही थी। वह कहना चाहती थी, “इतनी तेज गाड़ी न चलाइये।” पर कह न सकी। बाहर फैली हुई सुहावनी सांध्यबेला देखकर उसका मन प्रकृति की छटा पर मुग्ध होगया था।

सूरज पश्चिम में विश्राम लेने जा रहा था। आकाश में फैली उसकी पीली, लाल और सुनहली किरणें वृक्षों की चोटियों को सुशोभित कर रही

थी। संध्या का उल्लास मानों पृथ्वी के कण-कण में व्याप्त हो रहा था। पक्षियों के दल कलरव करते हुए नीड़ों की ओर लौट आये थे। अंधेरे की छाया आहिस्ते-आहिस्ते नीचे उतर रही थी।

इस सौंदर्य का आनंद लूटने में प्रतिमा पूरी तरह लीन होगई थी, लेकिन ऐसे आनंद को एक समय में व्यक्ति अकेला न लूटकर दूसरे के साथ लूटे तो वह द्विगुणित हो ही जाता है, यह हम नहीं कह सकते ! पर प्रतिमा ने कुछ ऐसा ही अनुभव किया, इसमें संदेह नहीं। नील गगन में मंद गति से उड़ते जा रहे बगुलों के झुंड की ओर देखकर उसने प्रसन्न से कहा, “देखिये, देखिये, इधर देखिये ! कितना सुंदर दीख रहा है बगुलों का झुंड !”

प्रसन्न की जगह कोई दूसरा होता तो मोटर की रफ्तार को कम कर देता और संध्या के उस सौंदर्य का आनंद खूब लूटता लेकिन प्रसन्न ने ऐसा नहीं किया। उसने न मोटर की चाल कम की, न नीले आकाश में उड़ते बगुलों के झुंड को देखा और न अस्ताचल की ओर प्रस्थान करते सूर्य का सुंदर दृश्य ही। मोटर के चक्र पर उसके दोनों हाथ यथावत रक्खे रहे। उसका मन कुछ बेचैन था। वह अपने-आपसे ही मानों कह रहा था, “आखिर आज प्रतिमा अपना हठ पूरा करके ही रहेगी। कामठी का बंगला देखने और उसमें तीन-चार दिन रहने की अपनी साध पूरी करके ही मानेगी।”

यों देखा जाय तो प्रसन्न प्रतिमा को बहुत प्यार करता था। वह उसके हृदय की रानी थी, मन की सम्राज्ञी थी। प्रतिमा के मुंह से कोई बात निकलती कि वह उसे तुरंत पूरा कर देता।

किन्तु एक अपवाद था इसका, और वह था कामठी का बंगला। उस बंगले की याद आती अथवा बातचीत के दौरान में उसकी चर्चा होती तो प्रतिमा कहा करती, “अजी, रहने दीजिये अपना वर्णन ! हमारा विवाह हुए एक साल होगया, लेकिन एक बार भी आपने वह बंगला मुझे नहीं दिखाया !”

और प्रसन्न बोल उठता, “अरे हां, प्रीति, हम वहां एक दिन जरूर चलेंगे !”

लेकिन वह दिन अभी तक नहीं आया था।

सच पूछा जाय तो उक्त दिन को ला देना प्रसन्न के हाथ में था, पर वह जान-बूझकर उसे टाल रहा था। जब भी प्रतिमा उस बंगले को देखने

की इच्छा प्रकट करती अथवा उसके लिए ज़िद करती तो उससे कुछ इधर-उधर की बातें कहकर वह उसे बहला देता। कहने को वह कह भी देता, “कल शाम को ज़रूर चलेंगे जी। इस शनिवार को वहां जाना पक्का है। तुम तैयारी कर लेना !” लेकिन ऐन मौके पर वह कोई-न-कोई ऐसा कारण उपस्थित कर देता जिससे जाने की बात टल जाती और प्रतिमा का आनंद किरकिरा हो जाता। तब वह क्रोध से तमतमा उठती। फिर प्रसन्न उसके बालों पर अंगुलियां फेरते हुए और दाहिने हाथ से उसकी चिबुक ऊपर उठाकर कहता, “क्यों, नाराज़ होगई, मेरी प्रीति, मुझपर !”

प्रसन्न के हाथ को झटकते हुए प्रतिमा वहां से हट जाती और मुंह फुलाकर कहती, “देख लिया, आप मुझे कितना प्रेम करते हैं !”

“अरी पगली !”

“बस आगे एक शब्द भी न कहिये। क्या मैं यहां से कहीं चली जाऊं ?” इतना कहकर प्रतिमा एकदम अपने कमरे में चली जाती।

प्रतिमा जानती थी कि प्रसन्न उसे कितना चाहता है, लेकिन फिर भी यह पहेली हल नहीं होती थी कि कामठी के बंगले की बात आने और उसे देखने का आग्रह करने पर प्रसन्न का चेहरा इतना गंभीर क्यों हो जाता है।

असल में प्रसन्न ही सारी बातें जानबूझकर छिपा रहा था। इतने दिनों तक उस रहस्य को वह जिस प्रकार गोपनीय रखता रहा था उसी प्रकार आगे भी उसे छिपाये रखने का उसका इरादा था। लेकिन आज उसे हार माननी ही पड़ी और प्रतिमा जीत गई। एक घंटा पहले प्रतिमा अपने सिविल लाइंस के बंगले के बरामदे में खड़ी सांस रोककर प्रसन्न की प्रतीक्षा कर रही थी। बीच-बीच में कुछ गुनगुनाती जाती थी और कलाई पर बंधी घड़ी पर निगाह डाल लेती थी। कभी-कभी अपने-आपसे कह उठती थी, “लगता है, शायद आज भी उनका मुझे बनाने का इरादा है !”

उसका दूसरा मन उसे हिम्मत देता हुआ कहता, “नहीं, आज ऐसा नहीं होगा, प्रतिमा ! आज कामठी के बंगले ज़रूर जायंगे और वहां तीन-चार दिन रहेंगे भी ?” ऐसा लगता था, मानों प्रतिमा के पैरों के पास खामोश

पड़ा जाँनी^१ उसकी आशा को बढ़ावा दे रहा था, क्योंकि जिस समय वह सोच रही थी कि आज वहाँ जरूर जायंगे, जाँनी क्षण-भर के लिए उससे चिपट गया, फिर बंगले के फाटक के पास जाकर, कान खड़े करके, दूर देखने लगा, मानो वह कहना चाहता हो, “ऐसा क्यों कर रहे हैं, मालिक ? जल्दी घर आजाइये !”

क्षण-भर दूर तक देखकर वह पुनः प्रतिमा के पास दौड़ता हुआ आगया और उसके आंचल से खिलवाड़ करता हुआ जैसे कहने लगा, “मालकिन, अभी आ रहे हैं मालिक । आप कामठी जायंगीं । मैं भी चलूंगा ।”

उसी समय मोटर का हार्न बजा । सुनते ही जाँनी हवा की तरह दौड़ता हुआ फाटक पर गया । प्रसन्न की ‘कॉडिलॉक’ बंगले के भीतर आई । रुकने पर उसका दरवाजा खट-से बंदकर, तालियों की जंजीर को अंगुली से घुमाता और मुंह से सीटी बजाता हुआ प्रसन्न प्रतिमा की ओर बढ़ा ।

वह जानता था कि देर हो जाने से प्रतिमा का पारा चढ़ा होगा, पर उसके गुस्से को भगाना प्रसन्न के बाएँ हाथ का खेल था । वह उसके सामने आया और कंधे पर हाथ रखकर बोला,

“प्रीति, मुझे बड़ा अफसोस है कि इतनी देर होगई ।”

पर प्रतिमा न हँसी, न बोली । उल्टे जाँनी के एक घूँसा जमाकर प्रसन्न से दूर हटाते हुए व्यंग्य से बोली, “जीहां, देखती हूं कि आपको कितना अफसोस हो रहा है ।”

“क्या कहूं प्रतिमा, दफ्तर के काम ऐसे होते हैं कि कभी खत्म ही नहीं होते ।”

“ठीक है । तो सीधा क्यों नहीं कह देते कि कामठी नहीं जाना है ?” प्रतिमा ने झल्लाकर कहा ।

पर उसके क्षोभ से प्रसन्न की मनःस्थिति में तनिक भी अंतर न पड़ा, उल्टे वह मुस्कराता रहा । कामठी की यात्रा स्थगित हो जाने पर प्रतिमा के चेहरे पर जो सात्विक क्रोध के भाव उभरते, उनसे वह बड़ी सुंदर हो उठती थी । आज भी वही हुआ । उसके लाल कपोलों पर घुंघराले केशों

की लटें बार-बार आ रही थीं, जैसे धीरे-से उसे गुदगुदाकर उसका क्रोध कम करने का प्रयत्न कर रही हों। कुछ क्षण स्तब्धता में बीत गये। वह प्रसन्न की ओर मुड़कर बोली, “यदि बंगले पर न ले जाना हो तो मुझसे साफ-साफ कह दीजियें ! आज दो महीने होगये, लगातार टालते जा रहे हो ! अच्छी बात है, अब मैं एक न सुनूंगी। जाकर ही मानूंगी। कबकी तैयार खड़ी हूं !”

प्रतिमा आसमानी रंग की जार्जेट की साड़ी पहने थी। बदन में बंद-गले का उसी रंग का जंपर था। जूड़े में सेवती के फूलों की वेणी। प्रसन्न चुपचाप एकाग्र मन से उसकी ओर देखता रहा। उसके इस प्रकार देखने से प्रतिमा और अधिक चिढ़ गई। वह उसके पास आई और उसका हाथ पकड़कर तनाव के साथ बोली, “कहिये, चलेंगे या नहीं ?”

“जब तुम्हारा इतना आग्रह है तो चलना ही होगा।”

प्रतिमा ने तुरंत नौकर से कार में सामान रखवाया। इस बीच जानी ने दौड़कर अपनी जगह सुरक्षित कर ली। एक प्याला चाय लेकर प्रसन्न प्रतिमा के साथ कामठी के लिए रवाना हो गया।

चलने को वह चल तो पड़ा, पर बात असल में यह थी कि कामठी के बंगले को जाने के लिए उसका मन तनिक भी उत्सुक न था। वैसे देखा जाय तो नदी-किनारे का वह बंगला काफी बड़ा था, सुंदर था और भव्य भी था। उसके पिता श्री बापूसाहब देशमुख ने उसे बनवाया था। नागपुर के बंगले में उस भवन के कई चित्र देखकर प्रतिमा की सहज इच्छा हुई कि कम-से-कम एक बार वहां जाय और कुछ दिन उस बंगले में रहे। पर हजार प्रयत्न करने पर भी वह यह न जान पाई कि आखिर इस बंगले को लेकर प्रसन्न के चेहरे का रंग बदल क्यों हो जाता है। तब प्रतिमा ने यह तय किया था कि वहां जाकर ही पता लगाऊंगी कि इस बंगले में ऐसा क्या रहस्य है कि वहां जाने के लिए प्रसन्न को उत्सुकता अनुभव नहीं होती।

जैसे ही नागपुर की सीमा निकली कि प्रसन्न ने मोटर की रफ्तार बढ़ा दी। शाम की ठंडी हवा ने जैसे ही प्रतिमा के शरीर का स्पर्श किया कि उसका गुस्सा काफूर हो गया और सायंकाल के रमणीक प्राकृतिक सौंदर्य का अवलोकन कर वह हर्षविभोर हो गई। पर प्रसन्न जैसे अपने में खोया था। आसपास के प्राकृतिक सौंदर्य को देखने की उसे इच्छा ही नहीं हो

रही थी। उसका मन उदास-सा था। मन-ही-मन में वह कह रहा था, “जो दिन मैं नहीं लाना चाहता था, वह आकर ही रहा।”

कामठी का बंगला ! यह वह स्थान था, जहां प्रसन्न को अपने माता-पिता की विशेष रूप से याद हो आती थी। इस स्मरण से उसे बड़ी बेचैनी अनुभव होती थी। यह बात उसने कई बार प्रतिमा से कही थी, लेकिन इससे प्रतिमा को कभी संतोष न हुआ। आखिर विवश होकर वह उसके साथ कामठी जा रहा था। प्रतिमा उस बंगले में तीन-चार दिन रहनेवाली थी। पर प्रसन्न को अगले ही दिन रामटेक जाना था। वहां उसकी मंगनीज की खदानें थीं और बहुत-से काम पड़े थे।

मोटर कामठी की सीमा में प्रविष्ट हुई तबतक अंधेरा हो गया था। शुक्लपक्ष की अष्टमी के चंद्रमा की शीतल चांदनी सर्वत्र फैली थी। सड़क के दोनों ओर छोटे-छोटे बंगले थे, जिनके आसपास के हरे-भरे उद्यान बड़े सुहावने लगते थे। प्रतिमा पहली बार वहां आई थी। उसे ठीक से पता न था कि प्रसन्न का बंगला कहां है। इसलिए उसने उतावली से पूछा, “अपना बंगला कहां है ?”

“बस अब जरा आगे बढ़ते ही हमारा बंगला आजायगा !” प्रसन्न ने उत्तर दिया।

“नदी से सटे होने के कारण बड़ा सुंदर लगता होगा ! दूध-सी चांदनी आज कैसी फैली है ! नदी का जल चमकता होगा। बाग के फूलों की मंद-मंद सुगंध वायु की लहरियों पर नाच रही होगी ! और...”

न जाने प्रतिमा अपनी कल्पना का और कितना विस्तार करती, लेकिन इसी समय कार ने नदी का पुल पार किया और कच्ची सड़क पर जाने लगी। इस कारण कार को हल्के-हल्के हिचकोरे लगने लगे। अब आसपास एक भी बंगला नहीं दिखाई दे रहा था। इसके विपरीत, चारों ओर पेड़ों और झाड़ियों का जंगल-सा फैला था। यह देखकर प्रतिमा का मन भय से व्याकुल हो उठा। वह सोचने लगी—जिस बंगले की सब सुंदर, विशाल और भव्य कहकर प्रशंसा करते हैं, वह इतने घने जंगल और एकान्त में क्यों बनाया गया ?

प्रतिमा ने अपनी यह शंका प्रसन्न के सामने रखी और उत्तर की

आशा कर ही रही थी कि कार की बत्तियों की रोशनी में उसे एक बड़ा, नक्काशीदार लोहे का फाटक दिखाई दिया। प्रसन्न के हार्न बजाते ही बंगले के भीतर से एक आदमी दौड़ता हुआ आया और उसने फाटक खोला। फाटक खुलते समय बड़ी कर्कश आवाज़ हुई।

उस कर्णकटु आवाज़ से प्रतिमा डर गई। मन में तरह-तरह की शंकाएं कुहराम मचाने लगीं। पति की इच्छा के न होते हुए मैं यहां चली आई, इसमें मैंने कोई गलती तो नहीं की? वह कार से उतरी और एक बार उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई।

बरसाती का वह भाग जहां कार खड़ी थी, बड़ा भव्य था। पंद्रह फुट ऊंचे पत्थर के चार बड़े-बड़े खंभे बंगले की ऊंचे दरजे की बनावट और भव्यता की साक्षी दे रहे थे। सामनेवाले दो खंभों को विसटेरिया जाति की पुष्प-लताएं घेरती हुई ऊपर तक चढ़ गई थीं। बंगले के सामने की चार सीढ़ियां संगमरमर की थीं। सामने का बरामदा लकड़ी के खंभों और दो फुट ऊंची लोहे की जाली से सुसज्जित था। नाना प्रकार के देशी-विदेशी पुष्पों के गमले बरामदे की शोभा में चार चांद लगा रहे थे।

संगमरमर की सीढ़ियों को पार कर प्रतिमा ने बंगले में प्रवेश किया। बंगले के निचले तले के दाहिनी ओर एक बैठकखाना था। उसमें जाकर प्रतिमा ने चारों ओर देखा। रुपहले कांच की खिड़कियों पर हरे रंग के रेशमी परदे पड़े हुए थे। दीवारों पर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र टंगे थे। फ्रांस और इंग्लैंड से लाये गए आंग्ल युवतियों के शुभ्र पुतले बैठकखाने के चार कोनों में लकड़ियों की तिपाइयों पर बड़े आकर्षक ढंग से रखे हुए थे। सामने की दीवार पर प्रसन्न के पिता बापूसाहब का एक सुन्दर तैलचित्र था। न जाने किस चित्रकार ने वह तैयार किया था! चित्र के रंगों का चुनाव और उनकी संगति दोनों बड़े ही आकर्षक थे। बापूसाहब का चेहरा रोबदार था, परंतु उस रोब में प्रतिमा को मृदुता नहीं दिखाई दी। इसके विपरीत आवश्यकता से अधिक तामसी और कट्टर वृत्ति ही उसमें झलक रही थी।

प्रतिमा जैसे-जैसे उस तैल-चित्र को देखती गई, उसे बापूसाहब की आकृति से भय लगने लगा। उसने बापूसाहब को प्रत्यक्ष कभी नहीं देखा था।

चित्र से ऐसा जान पड़ता था कि देखने में वह बुरे न रहे होंगे। नाक सीधी और पैनी बुद्धि की द्योतक थी। निचला ओंठ कुछ मोटा-सा था। सिर पर लगी 'फर' की टोपी उनके शरीर की गठन पर खूब फब रही थी। लेकिन इसके बावजूद उनकी आंखों में झलकनेवाले उग्र और क्रोधपूर्ण भाव को प्रतिमा अधिक देर तक न देख सकी। उसने तुरंत अपनी दृष्टि वहां से हटाकर दूसरी ओर घुमाई। निकट खड़े प्रसन्न से वह बोली, "मुझे घुमाकर पूरा बंगला दिखा दीजिये।"

"अच्छा, चलो।"

दूसरे कमरे में आसमानी रंग की मखमल से आवृत कोच बड़े व्यवस्थित ढंग से रखे थे। दरवाजों और खिड़कियों पर सुनहले रंग के रेशमी जालीदार चुन्नों से युक्त परदे लगे थे। वायु के मंद झकोरों के साथ वे हिल-डुल रहे थे। नीचे बिछा हुआ मोटा ऊनी गलीचा पैरों को गुदगुदा रहा था। इस कमरे में भी बापूसाहब का तैल-चित्र टंगा था। उसकी ओर देखती हुई प्रतिमा बोली, "आप बिल्कुल अपने पिताजी पर पड़े हैं। शायद मां पर पड़े हों। लेकिन, क्योंजी, यह क्या बात है कि यहां मां का एक भी चित्र दिखाई नहीं दे रहा है?"

"तुम ठीक कहती हो, प्रीति। मेरी मां का एक भी चित्र यहां नहीं है।" प्रसन्न ने कहा।

"क्यों?"

"मैं नहीं जानता। जब मैं चार-पांच साल का था, तभी माताजी का देहांत हो गया था। इस कारण मुझे माताजी के विषय में कुछ भी याद नहीं आता। अपने ननिहाल में मैंने उनके बचपन के फोटो देखे हैं। पर जिन्होंने उन्हें देखा है, वे कहते हैं कि वह बड़ी सुंदर थीं। उनमें और मुझमें बहुत समानता है।"

इतना कहते-कहते प्रसन्न को लगा कि वह जरूरत से ज्यादा बोल रहा है। उसने विषय टाल दिया। फिर भी यह दुःख तो मन में बना ही रहा कि इतने बड़े बंगले में सचमुच मां का एक भी चित्र नहीं है।

वह प्रतिमा को बंगला दिखाने लगा, उसके सौंदर्य की प्रशंसा करने लगा। अचानक प्रतिमा की दृष्टि बाईं ओर गई। प्रसन्न का हाथ मजबूती

से दबाकर वह बोली, “वाह, यहां से नदी कितनी सुंदर दिखाई दे रही है !”

बंगले के अहाते से निकली हुई पगडंडी सर्पाकार मोड़ लेती हुई नदी के पाट में जाकर सुस्ता रही थी। नदी का पाट बहुत चौड़ा था। वर्षा में यह नदी पानी से लबालब भर जाती थी। लेकिन गरमी आते ही उसमें एकाध धारा ही शेष रह जाती थी और बाकी बचा बालुकामय भाग आहें भरता हुआ खुला पड़ा रहता था। प्रतिमा यह सब देख रही थी। चंद्रमा का शीतल प्रकाश बालू पर बिखर जाने से उसपर कुछ पीली-सी रंगत छा गई थी और पानी का प्रवाह भी चांदी की तरह चमक रहा था। केशराशि के मध्य मांग जिस तरह कामिनी के रूप पर खिलती है, उसी तरह यह जल-प्रवाह रजनी का शाल ओढ़े पृथ्वी पर खिल रहा था।

प्रतिमा जिस तरह नवोदित लेखिका थी, उसी तरह कवियित्री भी थी। उस भावनापूर्ण दृश्य ने उसकी स्वप्निल दृष्टि को पूर्ण रूप से निश्चेष्ट-सा कर दिया। उसे यह बोध ही न रहा कि मेरे सास-ससुर इतने रसिक होंगे। चेतना लौटी तो उसने पाया कि वह बंगले के एक कमरे में घूम रही है और वहां की सजावट देख रही है। खिड़की के परदे, तिपाइयों पर रखे संगमरमर के पुतले और प्राकृतिक दृश्यों के तैलचित्रों का एक विद्यार्थी की तरह वह अध्ययन करने लगी। उसकी सास ने जीवन का पुष्प किस प्रकार खिलाया होगा ! चांदनी रात में नदी की बालुका में बापूसाहब के साथ घूमते समय वह अप्सरा की तरह दीखती होंगी अथवा किसी जलदेवी की तरह ? ऐसे अनेक विचार उसके मन में लगातार उठ रहे थे, तूफान की तरह। तभी उसे बापूसाहब की उस आकृतिवाले चित्र की याद हो आई। उसने सोचा—उन जैसे कठोर और गुस्सैल आदमी के साथ गृहस्थी चलाते हुए क्या सास को कुछ सुख मिला होगा ? अथवा कि गर्म बालू की तरह उनका जीवन...

“प्रीति, उस पारवाला वह मंदिर तुमने देखा ?” प्रतिमा की विचार-श्रृंखला को तोड़ते हुए प्रसन्न ने पूछा। प्रतिमा चौंक पड़ी। मंदिर की ओर देखकर बोली, “मंदिर पर सफेदी की गई है या कि वह संगमरमर का है ?”

“तुम्हीं पहचानो।”

लेकिन प्रतिमा उसे पहचान न सकी। रात बढ़ती देखकर वे वापस बंगले में आये। ऊपर की मंजिल में पश्चिम की ओर जो दो बड़े कमरे थे,

उनमें वे दोनों रहनेवाले थे। एक कमरे में कपड़ों की दो बड़ी अलमारियां थीं। उनके बगल में शीशम की लकड़ी का ड्रेसिंग टेबुल था। दूसरे कमरे में स्वच्छ मसहरी लगे हुए दो पलंग थे। उन दो पलंगों के मध्य भाग में एक कांच की मेज पर बिजली का लैंप रक्खा था। पश्चिमी खिड़की खोलकर प्रसन्न बिस्तर पर लेटता हुआ बोला, “प्रीति, अब तो मेरे पेट में चूहे बड़े जोर से कूदने लगे हैं।”

दोनों भोजन करने बैठे, उस समय प्रतिमा ही अधिक बोल रही थी। अपने ससुर द्वारा बनवाया वह बंगला उसे बहुत पसंद आया था। वह बार-बार उस बंगले की प्रशंसा कर रही थी। लेकिन प्रसन्न केवल ‘हां-हां’ ही कर रहा था। उसके चेहरे पर आनंद की चमक न थी। एक अजीब तरह की उदासीनता अधिकाधिक गहरी होती जा रही थी।

खिड़की से आनेवाला मंद किंतु शीतल पवन कितना सुखकारी था ! चांदनी से सुशोभित नदी का पाट किसीपर भी जादू कर सकता था। लेकिन प्रसन्न पर उस सबकी एक अलग ही प्रतिक्रिया हो रही थी। बहुतेरी कोशिश करने पर भी प्रतिमा यह नहीं समझ पा रही थी कि वह आखिर इतना गंभीर और उदास क्यों है। भोजन के उपरान्त प्रसन्न अपने बिस्तर पर जा लेटा और मसहरी की सफेद छत की ओर निर्विकार मन से देखने लगा। बालों में से पिनों को निकालकर प्रतिमा ने अलग रख दिया और अपनी मसहरी के भीतर जाने से पहले रोशनी गुल करने लगी। यह देखकर प्रसन्न ने कहा, “प्रीति, रोशनी क्यों बुझा रही हो ?”

“क्यों, क्या बिजली की रोशनी में सोने का इरादा है ?”

“हां !”

“क्यों ?”

“एक बार तुमसे कह दिया कि रोशनी न बुझाओ ! तुम्हारी बहस करने की आदत पड़ गई है !” कुछ खीझ-भरे स्वर में प्रसन्न ने कहा।

पत्नी ने इस तरह के चिड़चिड़े उत्तर की कभी आशा न की थी। वह चुपचाप अपने पलंग से उठकर प्रसन्न की मसहरी के भीतर आई और उसके सिरहाने बैठकर उसके केशों को कोमलता से सहलाते हुए बोली, “क्यों जनाब, इस तरह नाराज क्यों हो रहे हैं ? मैं जानती हूं कि इतने जगमगाते

प्रकाश में आपको नींद नहीं आती। इसलिए पूछ रही हूँ कि क्या बत्ती बुझा दूँ ?”

“नहीं !”

“क्यों, अंधेरे में डर लगेगा क्या ?”

“नहीं, डर तो नहीं लगेगा, पर प्रीति, देखती नहीं, यह बंगला बिल्कुल वीरान और डरावना है। ऐसी दशा में यदि तुम सारी बत्तियाँ गुल कर दोगी तो यह बंगला मुझे खाने को दौड़ेगा ?”

“कैसी उलटी-सीधी बातें कर रहे हैं आप ! यह बंगला बिल्कुल डरावना नहीं है।”

“छोड़ो इस विषय को, प्रीति ! जाओ, मेरे बैग में से ज़रा क्रीम की शीशी ले आओ।” विषय बदलने के विचार से प्रसन्न ने प्रतिमा को काम बता दिया। क्रीम की शीशी लाकर प्रतिमा ने प्रसन्न को दे दी। लेकिन मंदिर की गुंबद के भीतर जिस तरह आवाज़ देर तक गूँजती रहती है, उसी तरह की गूँज प्रतिमा को सुनाई दे रही थी। कुछ क्षण चुप रहने के बाद वह बोली, “इधर मैं देख रही हूँ कि आप बहुत बेचैन हैं। मैं सोचती हूँ, इस बंगले के बारे में आपकी राय अच्छी नहीं है। आपकी इस बेचैनी के पीछे कोई रहस्य छिपा होना चाहिए। आप मुझे सब बातें बता नहीं रहे हैं। क्या मैं आपके विश्वास के योग्य नहीं हूँ ?”

अंतिम शब्द मुँह से निकलते-निकलते प्रतिमा की आवाज़ कांप गई। उसकी पलकें अनजाने गीली होगईं और रोकते-रोकते दो आंसू प्रसन्न के माथे पर टपक पड़े। प्रसन्न चौंक उठा। प्रतिमा का हाथ अपने हाथ में लेता हुआ बोला—

“कितनी पगली हो तुम, प्रीति ! मैं तुम्हें बेहद प्यार करता हूँ। तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। यही नहीं, तुमने मेरा पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया है। इससे पहले मैंने तुमसे कुछ छिपाया है जो आज इस बंगले के बारे में छिपाऊंगा ? बात यह है कि यहां की एक-एक चीज़ मेरे माता-पिता की स्मृतियों से रंगी हुई है। यहां के कण-कण में उनके जीवन का इतिहास खुदा हुआ है।”

“फिर भी आपके चेहरे पर इतनी अस्वस्थता क्यों झलक रही है ?

माता-पिता की मंगल स्मृतियों से मनुष्य का मन खिल उठता है, ऐसा लोग कहते हैं। लेकिन आपके बारे में मुझे दूसरी ही चीज़ दिखाई दे रही है। ऐसा लगता है, मानों किसी दुःख के स्मरण से आप उदास हैं। जो स्मृतियाँ आपके मन में कुहराम मचा रही हैं, उनसे ऐसा जान पड़ता है कि वे आपको अप्रिय मालूम होती हैं।” प्रसन्न को बीच में ही रोककर प्रतिमा ने कहा।

प्रसन्न चुप हो गया। उसने प्रतिमा की ओर एकटक देखा। वह और अधिक उदास हो गया।

प्रसन्न बहुत बार इस बंगले में आ चुका था और जब-जब वह आया तब-तब उसकी हालत इसी तरह की हो गई। पर आज तो उसकी अस्वस्थता पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। जो बात वह प्रतिमा से कहना नहीं चाहता था, वह इसी समय उससे कह देने को आतुर हो उठा। उसने कहा, “प्रीति, यद्यपि मैंने हृदय से कहा कि तुमने मेरा पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया है, फिर भी मैंने एक बात तुमसे छिपाकर रखी है। वह बात तुम्हें बता देना जरूरी है, वरना तुम शंकाओं-कुशंकाओं का जाल बुनती रहोगी और स्वयं उसमें फँस-कर गिर पड़ोगी और व्यर्थ घायल हो जाओगी।”

“यह तुम क्या कह रहे हो ? वह कौन-सी बात है, जो तुमने मुझे नहीं बताई ?”

“प्रीति, तुम्हें एक बहुत ही कटु इतिहास सुनना होगा। वैसे देखा जाय तो इस इतिहास की पूरी जानकारी मैं भी नहीं पा सका, फिर भी सच यह है कि इस बंगले में रहते हुए मेरी माँ ने नदी में कूदकर आत्म-हत्या की थी।”

इन शब्दों को सुनकर प्रतिमा चीख पड़ी। उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। सामने की रोशनी के एकदम गुल हो जाने से सड़क पर चलते राहगीर की जो मुसीबत होती है, वही प्रतिमा की हो गई, अथवा अथाह जलाशय में अचानक पत्थर गिरने से जैसे असंख्य वृत्त निर्मित होते हैं, वैसी ही अवस्था प्रतिमा के मन की हो गई। उसने अपने-आपसे ही बार-बार पूछा, “क्या सचमुच प्रसन्नबाबू की माँ ने नदी में कूदकर आत्म-हत्या की थी ?”

इस आशा से कि शायद आज भी मेरे मालिक मुझे कार में ले जायेंगे, जौनी प्रसन्न की कार के पीछे दौड़ता हुआ गया, लेकिन कार बंगले के फाटक से कभी की बाहर निकलकर सड़क पर दौड़ी जा रही थी। प्रतिमा बरसाती के एक ओर खड़ी होकर जाती हुई मोटर को देख रही थी। जब मालिक जौनी की इच्छा पूरी न करते, तब वह अपनी मालकिन के पास आ जाया करता और उछल-कूदकर उसे परेशान कर डालता। इस समय भी वही हुआ। फाटक तक वह बड़ी आशा से दौड़ता हुआ गया और अंत में निराश होकर प्रतिमा के पास आ गया और उसके दाहिने हाथ को प्यार से चकोटने लगा।

वैसे जौनी की यह उछल-कूद और उसका चकोटना प्रतिमा को अच्छा लगा करता था, लेकिन इस समय उसकी ये हरकतें उसे अच्छी नहीं लगीं। उसने जरा क्रोध से एक चपत जमाते हुए उससे कहा, “भाग यहां से।”

मालकिन का रुख देखकर बेचारा जौनी चुपचाप वहां से चल दिया। प्रतिमा वहीं खड़ी-खड़ी बाग की हरियाली को देखती रही। आंखें देख रही थीं, पर उसका मन कहीं और ही उलझा हुआ था। कल रात को सोते समय प्रसन्न ने जो कहा था, उसकी उसे बार-बार याद आती थी। वह अपने-आपसे पूछती थी, “क्या यह ठीक है कि उसकी सास ने नदी में कूदकर आत्म-हत्या की थी ?...पर क्यों ?”

इस आखिरी प्रश्न का उत्तर उसे नहीं मिल रहा था।

सच यह है कि आत्म-हत्या की बात को सुनकर वह इस तरह कांप उठी थी, जिस तरह एकाएक भूकंप हो जाने से सारी जमीन हिल जाती है।

यदि किसी दूसरे ने यह बात कही होती तो प्रतिमा उसपर विश्वास ही न करती और उसे पागलों में शुमार करती, लेकिन प्रसन्न के मुंह से निकली बात पर अविश्वास कैसे करती ! दबेलित मन से देखते हुए उसने कहा था, “आप यह क्या कह रहे हैं ? ऐसे रमणीक स्थान में रहते हुए, इतना भाग्यशाली जीवन व्यतीत करते हुए, आपकी मां ने आत्म-हत्या की ?”

प्रसन्न ने उत्तर दिया था, “कहा तो यही जाता है।”

“पर आत्म-हत्या उन्होंने क्यों की ? आखिर ऐसी क्या बात हो गई थी ?”

“प्रीति, मैं सच कहता हूँ, इसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता। मेरे पिताजी हमेशा यह सावधानी बरता करते थे कि इस विषय में मैं कुछ भी न जान पाऊँ।”

“कितनी विचित्र और कितनी भीषण मालूम होती है यह घटना ? आपकी माँ जैसी सुंदर स्त्री के आत्म-हत्या करने का प्रसंग उपस्थित हो, यह कितने दुर्भाग्य की बात है ? मैं तो सोचती थी कि ऐसे रमणीक स्थान में आपकी माँ ने किसी अप्सरा की तरह जीवन बिताया होगा। वह किसी महारानी की तरह वैभव के बीच में रही होंगी। चांदनी रात में चमकनेवाले इस जलाशय में जलकन्या की भांति उन्होंने विहार किया होगा। उनके तितली की तरह कोमल पैरों के निशान सारे उद्यान में जगह-जगह पर अंकित होंगे। उनके हास्य का मंजुल नाद आस-पास के वृक्षों में निनादित हुआ होगा। नौका उन्हें लेकर चांदनी रात में जाने कितनी बार इस नदी की धारा में घूमी होगी। पर आपने तो कुछ और ही बात बताई है। क्यों जी, उनके जीवन में ऐसी कौन-सी कठोर और दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी होगी, जिसका उन्हें इतना भयंकर प्रायश्चित्त करना पड़ा ? ऐसा कौन-सा असहनीय दुःख आंधी बनकर उनकी जिंदगी में आया होगा, जिसके कारण उन्हें अपने प्राणों से विरक्त होकर अपनी जीवन-ज्योति बुझा देनी पड़ी होगी ?”

इतना कहते-कहते प्रतिमा का गला भर आया, उसकी आवाज कांप उठी और उसकी आंखों में आंसू छलछला आये। तर्क-वितर्क की गुत्थी सुलभाने का प्रतिमा जैसे-जैसे प्रयत्न कर रही थी, वैसे-वैसे वह अधिकाधिक उसमें फंसती जाती थी। प्रसन्न से जब उसने अधिक पूछताछ की तो वह बोला, “प्रीति, बस करो। तुम आगे अब और कुछ न कहो। तुम्हारे हर शब्द से मेरा दिल फटा जा रहा है। बीती बातों को भूल जाने में ही आदमी को सुख मिलता है। मैं इसीलिए तो इस बंगले में आने को टालता रहता था। यहां आता हूँ तो मेरे मन में भी इसी तरह के विचार तूफान मचाने लगते हैं। हजारों तरह की शंकाएं-कुशंकाएं डराती रहती हैं।”

“लेकिन क्या आपने इसका कारण खोजने की कोशिश नहीं की ?”

“की क्यों नहीं ? की थी। बचपन में ‘आत्म-हत्या’ शब्द का अर्थ ही मेरी समझ में नहीं आता था। लेकिन जब मैं धीरे-धीरे बड़ा होने लगा और जब किसी-किसीसे मां के बारे में उल्टी-सीधी बात सुनने को मिलने लगीं, तो उनकी आत्म-हत्या का रहस्य जानने की इच्छा मेरे मन में पैदा हुई। लेकिन उन गड़े मुर्दों को उखाड़ने से अब क्या लाभ है ?”

मां का फोटो देखने को न मिलने से प्रतिमा का मन पहले जिस तीव्रता से आतुर हो उठा था, उसी तरह उनकी आत्म-हत्या की घटना सुनकर वह व्याकुल हो गया। उसके मन में करुणा, प्रेम और आदर का मिश्रित भाव छा गया।

प्रसन्न चार-पांच वर्ष की उम्र से ही बापूसाहब के पास रहा था। कभी-कभी प्रसन्न उनसे पूछता, “पिताजी, मेरी मां कहां गई है ?”

नन्हे बच्चे को समझाने के लिए वह कह दिया करते थे, “बेटा, जब तू छोटा था, तभी वह भगवान के घर चली गई।”

लेकिन जब वह बड़ा हुआ तब इस उत्तर से उसे संतोष न होता था। उसने बहुत बार नौकरों से पूछा। कोई कहता, “मालकिन नदी पर नहाने गईं और पानी में ब्रह्म गईं।” कोई कहता, “मालकिन का दिमाग खराब हो गया था। पागलपन में वह एक दिन नदी में कूद पड़ीं और डूबकर मर गईं।”

इस प्रकार के उत्तरों से भी प्रसन्न का समाधान न होता था। एक दिन वह हिम्मत करके बापूसाहब से पूछने गया, तो वह उसपर बरस पड़े, “खबरदार, जो आगे इस बारे में मुझसे कभी कोई बात पूछी !”

प्रसन्न पंद्रह वर्ष का हुआ। एक दिन वह अपने कुछ मित्रों के साथ इस बंगले पर आया। उस समय माली ने उसे वह स्थान दिखाया, जहां से कूदकर उसकी मां ने अपने प्राण विसर्जन किये थे। माली ने कहा, “मालकिन की आत्मा यहां चक्कर काटा करती है, क्योंकि कभी-कभी हूबहू उन जैसी एक स्त्री यहां दिखाई दिया करती है। वह बंगले के आसपास घूमती है और फिर चली जाती है।”

बीस वर्ष का हो जाने पर भी प्रसन्न को अपनी मां की मृत्यु के सच्चे इतिहास का पता न चला था। पर उसमें यह विश्वास घर कर चुका था कि

उसे देखने के लिए ही मां की आत्मा यहां विचरण किया करती होगी। प्रत्यक्ष में वह मां के स्नेह और वात्सल्य से वंचित रहा था, इसलिए अपनी मां को देखने के लिए उसका मन बड़ा उत्सुक रहता था। पर बापूसाहब ने बंगले जाने पर रोक लगा दी थी। सो प्रसन्न इस बंगले पर अधिक नहीं आया। दो वर्ष उपरांत बापूसाहब का देहांत हो गया और उनके साथ ही यहां का इतिहास भी भूतकाल में लुप्त हो गया।

पिता के बाद प्रसन्न इस बंगले का मालिक हो गया। पर उसके लिए इस बंगले में कोई आकर्षण न रह गया। उसे लगता था कि जिस बंगले में मेरी मां को आत्म-हत्या के लिए प्रवृत्त होना पड़ा, वह शुभ नहीं है और इसीलिए वह यहां आना बराबर टाला करता था। आज भी यदि प्रतिमा ने हठ न किया होता तो वह आनेवाला नहीं था।

प्रतिमा रातभर विचारों के भंवर में डूबती-उतराती रही। एक क्षण को भी उसकी आंख न लगी। इसलिए सुबह उठने पर उसकी आंखें लाल हो रही थीं।

प्रसन्न अपनी खदानें देखने रामटेक जाने लगा तो यह सोचकर कि प्रतिमा विचारों के जाल से मुक्त हो जाय, उसने साथ चलने का बड़ा आग्रह किया, परंतु प्रतिमा तैयार न हुई। बंगला छोड़कर और कहीं जाने की उसकी इच्छा नहीं थी।

सुबह उसने प्रसन्न के साथ सारा बंगला पुनः देख डाला। उसके माता-पिता के समय में वह जिस दशा में था ठीक उसी दशा में आज भी था। बंगले के बाईं ओर के हिस्से में बापूसाहब रहा करते थे। आज भी उनकी चीजें वहां ज्यों-की-त्यों रखी हुई थीं। जमीन पर शेर और चीतों के कमाये गए चमड़े बिछे थे। एक दीवार पर एक सिंह का चमड़ा टंगा था। उसके निकट शिकारी के वेश में बापूसाहब का फोटो लगा हुआ था। उस फोटो की ओर देखकर प्रतिमा डर गई।

मेहमानों के लिए जो विशेष कमरे बने थे, उन्हींमें वे दोनों ठहरे थे। उन कमरों की दूसरी ओर प्रसन्न की मां के दो कमरे थे।

प्रतिमा उन कमरों के देखने के लिए बहुत आतुर थी, लेकिन उनकी चाबियां किसन नाम के एक नौकर के पास थीं। बापूसाहब ने बंगला बन-

वाया था, उस समय उन्होंने जो नौकर यहां रखे थे, उनमें से किसन अभी तक इस बंगले में काम कर रहा था। दोपहर को बारह बजे के बाद वह काम पर आया करता था। इसलिए प्रतिमा को तत्काल वे कमरे देखने को न मिले। पहले तो उसे बड़ा बुरा लगा, लेकिन बाद में उसे संतोष हुआ कि प्रसन्न के जाने पर वह उन कमरों को आराम से देख सकेगी।

प्रतिमा को उदास देखकर प्रसन्न ने उसके मनबहलाव के लिए तैरने का कार्य-क्रम बनाया। बंगले के पिछवाड़े ही नदी बहती थी। लोगों का आना-जाना तो वहां नाम-मात्र को भी न था। इस कारण नदी के गहरे शांत शीतल जल में वे दोनों खूब तैरे। नदी का निर्मल और नीला जल उन्हें बड़ा अच्छा लगा।

पूरे डेढ़-दो घंटे तैरने के बाद प्रसन्न और प्रतिमा बंगले की ओर लौटे। उस समय बारह बजे थे। धूप तेज थी। लेकिन सरदी के दिन होने से धूप की तेजी अखर नहीं रही थी। तौलिया से बाल पोंछती हुई प्रतिमा प्रसन्न के साथ बांध की ओर धीरे-धीरे पैदल आ रही थी। उसे उदास देखकर प्रसन्न बोला, “प्रीति, तुम बड़े कोमल मनवाली हो।”

“कैसे ?”

प्रसन्न बोला, “देखो, मैंने तुमसे कल रात अपनी मां के बारे में जो कहा, वह तुमने अपने मन में रख लिया है। वैसे तो लेखकों की बात ही ऐसी हुआ करती है। कोई भावपूर्ण कथानक या प्रसंग मिला कि कलाकार अपने को तो भूल ही जाते हैं, अपने साथ चलनेवाले आदमी का भी उन्हें ध्यान नहीं रहता।”

प्रसन्न के इस विनोद से प्रतिमा को हँसी आ गई। उसका हाथ अपने हाथ में लेती हुई बोली, “क्या लेखकों के बारे में आपका इतना बुरा मत है ?”

“नहीं जी, मूल में किसीका भी मत किसीके विषय में खराब नहीं हुआ करता, लेकिन मनुष्य ही उसे अपनी तरफ से अच्छा या बुरा बना लेता है।”

प्रतिमा हँसकर बोली, “अरे, वाह ! आज तो आप सिद्धान्त की बातें कर रहे हैं।”

इस तरह हँसी-मजाक करते हुए दोनों एक पगडंडी तयकर एक ऊँचे

पत्थर पर आ पहुँचे। वहाँ नीचे तली में पानी बड़े गहरे नीले रंग का दिखाई दे रहा था। कुछ क्षण के लिए ठहरकर वे उस अथाह जल की ओर देखते रहे। प्रसन्न दो कदम जाकर कटसरैया के फूल तोड़ लाया। उनमें से कुछ फूल उसने प्रतिमा को दिये, कुछ अपने पास रखे।

“क्यों ये फूल क्यों दिये हैं?” प्रतिमा ने आश्चर्य से पूछा।

प्रसन्न इसका कोई उत्तर न देकर बोला, “प्रीति, यहाँ पानी कितना गहरा दिखाई दे रहा है!”

प्रसन्न की आवाज कांप रही थी और उसका चेहरा बहुत ही गंभीर हो गया था। क्षण-भर किसी गूढ़ भावना से मानों स्तब्ध रहकर अनंतर कोमलता से बोला—

“प्रीति, मेरी मां ने इसी गहरे जलाशय में आत्म-हत्या की थी। आओ, हम दोनों उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें, जिससे……” प्रसन्न आगे नहीं बोल सका। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

उन दोनों ने अपनी-अपनी अंजलि के पुष्प जलाशय में अर्पित कर दिये, फिर प्रणाम किया। प्रतिमा ने गर्दन उठाकर देखा। प्रसन्न के हाथ जुड़े हुए थे और उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

भावों का वेग कम होने पर प्रसन्न ने कहा, “अच्छा हुआ, प्रीति, हम लोग यहाँ आगये! यह देखकर मां की आत्मा को अवश्य ही संतोष हुआ होगा कि तुम जैसी प्रेमल और रूपवती पत्नी मुझे प्राप्त हुई है। है न?”

प्रसन्न के इन शब्दों का प्रतिमा से उत्तर देते न बना। उसका गला भर आया। आंचल के छोर से आंसू पोंछती हुई बोली, “सचमुच यदि मां आज जीवित होतीं, तो उन्हें कितना आनंद होता! हम दोनों को हँसते-खेलते देखकर उनका हृदय हर्ष से बल्लियों उछल पड़ता।”

प्रसन्न ने प्रतिमा का हाथ अपने हाथ में ले लिया और वे दोनों बंगले में लौट आये। दोनों ने साथ-साथ भोजन किया। एक घंटे बाद प्रसन्न अपनी खदानें देखने रामटेक चल दिया।

प्रसन्न के चले जाने पर किसन आ गया। उससे चाभियां लेकर ताला खोलते समय प्रतिमा के मन में विचारों और भावनाओं की बाढ़-सी आ रही थी। कमरा खोलते-खोलते उसे विचार आया कि हो सकता है, इसमें मां की

कोई तस्वीर हो ।

कमरा काफी बड़ा था । उसके एक कोने में शीशम की नक्काशीदार मेज रखी थी । मेज की बगल में पुस्तकों की अलमारी थी । उस अलमारी में बहुत-सी पुस्तकें करीने में रखी थीं । हर पुस्तक की पीठ पर पुस्तक का क्रमांक, मध्य में पुस्तक का और नीचे लेखक का नाम बड़े सुंदर और सुडौल अक्षरों में लिखा हुआ था । दीवार में कांच के दरवाजों की अलमारियों में चांदी और हाथीदांत की अनेक सुंदर चीजें रखी थीं । उस कमरे को देखने पर प्रतिमा को यह समझते देर न लगी कि यह मां का लिखने-पढ़ने का कमरा रहा होगा ।

इस कमरे से सटे दूसरे कमरे में शीशम की लकड़ी का एक बड़ा पलंग पड़ा था । उसीके नजदीक दर्पण की मेज और बिल्लौरी कांच लगी हुई दो अलमारियां थीं । पलंग के पैताने लोहे की जाली लगी दो खिड़कियां थीं, जिनमें से नदी का पाट स्पष्ट दिखाई देता था ।

उस कमरे में नजर दौड़ते हुए प्रतिमा को लगा कि मां कितनी कल्पना-शील और बुद्धिमती थीं ! कमरे में बिछे हुए बड़े-बड़े गलीचे गहरे लाल रंग के थे । दरवाजों और खिड़कियों पर गुलाबी रंग के सुन्दर और सुरुचिपूर्ण पर्दे पड़े थे ।

प्रतिमा पलंग के पासवाली मेज के पास आई । उसपर लिखने का एक छोटा पैड था । प्रतिमा ने उसे खोला । उसके अंदर नीले कागजों के कोने पर छपा था—बकुल देशमुख ।

“बकुल ! बकुल !” प्रतिमा ने मन-ही-मन कई बार दोहराया । तीन अक्षरों का यह नाम उसे बड़ा अच्छा लगा । अपने-आपसे बोली, “बकुल के फूल देखने में जिस तरह कोमल होते हैं, उसी तरह प्रसन्न की मां भी थीं क्या ? और फिर फूलों की सुगंधि की तरह क्या उनकी भी सुरभि थी ?”

तभी जैसे भीतर से कोई सहसा बोल उठा, “हां, सच, वह बकुल की तरह थीं । इसीलिए तो सबके हृदय में उनके लिए आदर-भाव था, श्रद्धा थी ।”

लेकिन इस विचार से प्रतिमा को संतोष न हुआ । उसने सोचा, यदि वह इतनी नाजुक और सर्वप्रिय थीं, तो उन्होंने आत्म-हत्या क्यों की ?

इस प्रश्न पर एकाएक प्रतिमा अटक गई। उसने फिर एक बार उन नीले कागजों को देखा, उनपर छपा हुआ 'बकुल देशमुख' पढ़ा। मेज के एक तरफ कुछ मासिक पत्रिकाएं पड़ी हुई थीं। दो-चार उपन्यास भी थे।

उस भव्य और सुंदर बंगले से सदा के लिए बिदा होकर पंचमहाभूतों में विलीन हुई सुकोमल बकुल की स्मृति पर से दृष्टि घुमाते हुए प्रतिमा के नेत्र सजल होगये। उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। वह सोचने लगी कि स्मृति कांटे की तरह मन को चुभनेवाली, घाव करनेवाली और बार-बार टीस पैदा करनेवाली वस्तु होती है, अथवा मयूरपंख की तरह कोमल स्पर्श से सहलाने-वाली, मन को प्यार करनेवाली स्वप्नवत वस्तु होती है ?

इस विचार-प्रवाह में तैरते हुए उसने अलमारी से एक पुस्तक निकाली। वह मेरी कारली का 'इन्नोसेंट' उपन्यास था। उसने पुस्तक का पहला पृष्ठ खोला। उसपर लिखा—

To

Innocent Bakul

24 th, Oct 1931

—A.D.

निष्कलंक बकुल को भेंट

२४ अक्तूबर, १९३१

—ए० डी०

प्रतिमा बड़ी देर तक पृष्ठ पर लिखे उन अक्षरों और उनके नीचे लिखी तारीख की ओर देखती रही। यह ए० डी० कौन हैं ? विवाह होने के बाद जिन-जिन व्यक्तियों से उसका परिचय हुआ, उनमें ए० डी० नाम का व्यक्ति उसके देखने में नहीं आया था। अपनी बातचीत में भी प्रसन्न ने इस व्यक्ति का कभी उल्लेख नहीं किया था। पर अब तो बकुल को 'इन्नोसेंट' कहने-वाला 'ए० डी०' उसकी अलमारी में पुस्तक के पहले ही पृष्ठ पर विराजमान दिखाई दे रहा था।

जब मनुष्य भूतकाल की घटनाओं से एकरस हो जाता है तो वह उनमें इतना लीन हो जाता है कि उसे ऐसा लगने लगता है मानों वे बातें नये स्त्रिरे से घट रही हों।

पुस्तक पर लिखी तीन पंक्तियों पर बार-बार निगाह घुमाती हुई प्रतिमा अपने-आपसे पूछ रही थी, "क्या बकुल इन्नोसेंट थीं ? यदि वह सचमुच

निष्कलंक थीं तो फिर उन्होंने आत्म-हत्या क्यों की ?”

जो हो, एक बात स्पष्ट थी और वह यह कि बकुल के जीवन में आने-वाले व्यक्ति को वह निष्कलंक लगीं। और चूँकि यह सच है, इसलिए बकुल इन्सोसेंट थीं, यह भी सच है।

इस तरह विचार करते हुए प्रतिमा ने वह पुस्तक पुनः अलमारी में रख दी और दीवार पर लगे चित्रों को देखने लगी। प्राकृतिक दृश्यों के कितने ही सुंदर चित्र वहाँ शोभा दे रहे थे, लेकिन बकुल का एक भी चित्र वहाँ न था। दरवाजे की दीवार पर शिकारी-वेश में बापूसाहब का एक बड़ा चित्र लगा था। उसी आकार का एक दूसरा बड़ा चित्र भी वहाँ टंगा था। उस व्यक्ति से प्रतिमा का परिचय न होने के कारण उसने कुतूहल से उसकी ओर देखा कि आखिर ये कौन महाशय हैं। चित्र के नीचे लिखा था :

चि० सौ० बकुल को सप्रेम भेंट

—अण्णा

‘अण्णा’—हस्ताक्षर को दो-तीन बार पढ़ने पर प्रतिमा के ध्यान में आया कि यह व्यक्ति शायद बकुल के पिताजी होंगे। फिर वह उस चित्र को और अधिक ध्यान से देखने लगी।

अण्णासाहब साने का वह चित्र उस समय खींचा गया होगा, जबकि उनकी उम्र साधारणतः पैंतालीस के आसपास रही होगी, मस्तक के सामने-वाले भाग के बाल गायब थे, लेकिन उसके कारण उनके व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं दीख पड़ती थी। उनकी आंखों में चमक खेल रही थी। आध्यात्मिक व्यक्ति के चेहरे पर जो तेज थिरकता रहता है, उसकी स्पष्ट आभा अण्णासाहब की आकृति में प्रकट हो रही थी। सीधी और सुडौल नाक उनके मुख की शोभा बढ़ा रही थी। प्रतिमा ने अनुमान किया कि बकुल अपने पिता के ढंग-ढाँचे की होगी। उसके प्रति उसका मत और भी अधिक अनुकूल हो गया।

अण्णासाहब के चित्र के नीचे लकड़ी की एक ऊंची-सी तिपाई थी, जिसपर कांच का एक बर्तन रक्खा था। उसकी तली में शंख, सीपियां और रेत पड़ी थी। बर्तन के मुंह के नज़दीक के चिह्न देखकर प्रतिमा ने अंदाज

किया कि बकुल ने शौक के लिए उसमें मछलियां पाली होंगी ।

कमरे के मध्य भाग में एक मंच था, जिसपर मखमल का आवरण लिपटा हुआ था । उसे देखकर प्रतिमा के मन में सहसा विचार उठा कि जब बकुल इस मंच पर तकिये के सहारे टिककर बैठती होंगी तब वह निश्चय ही एक रानी की तरह लगती होंगी । अच्छा, तो कुल मिलाकर बकुल कुशल गृहणी और अध्ययनशील किंतु रसिक पत्नी थी ।

दूसरे कमरे में आने पर प्रतिमा ने पहले की तरह हर चीज की सजावट पर निगाह डाली । पलंग पर जो गद्दा था, कह नहीं सकते, वह 'फर' का था या किसका था, लेकिन था बहुत ही मुलायम । पलंग के एक सिरे पर तकिया था, जिसपर गुलाबी रंग के रेशम से कढ़ा था 'बकुल' । एक साफ चद्दर में रजाई लिपटी हुई थी । उत्सुकता से प्रतिमा ने वह चद्दर हटा दी । गहरे नीले रंग की मखमली रजाई उसके सामने थी ।

पलंग के पास चंदन की नक्काशीदार ड्रेसिंग टेबुल थी, जिसपर कुकुम रखने की चांदी की डिब्बियां थीं । दो चपटी डिब्बियों में से एक में काजल, दूसरी में सुरमा था । सुरमा की डिब्बिया के निकट हाथीदांत की एक लंबी-सी सीक रखी थी । चांदी की मूठवाले कंधे भी थे । इन सुंदर चीजों को अनेक बार बकुल के हाथ लगे होंगे, उसकी नाजुक अंगुलियों ने डिब्बिया का कुंकुम अपने भव्य ललाट पर लगाया होगा । उसकी बड़ी-बड़ी आंखें कभी काजल तो कभी सुरमे से खिल उठी होंगी ।

सौभाग्य है इन कुंकुम की डिब्बियों का कि उनका सौभाग्य भाल पर रहते हुए मालकिन इस ससार से चली गई ।

ड्रेसिंग टेबुल के नीचे चप्पलों और जूतों की कितनी ही जोड़ियां पड़ी हुई थीं । पुरानी फैशन की मखमली चप्पलें भी थीं । एक तरफ किसी छोटें बच्चे के काले बूट रखे थे ।

प्रतिमा ने नीचे झुककर उन बूटों को हाथ में ले लिया । मन-ही-मन बोली, "ये शायद प्रसन्नबाबू के जूते होंगे और बकुल ने जाने कितनी बार बड़े प्यार से इन्हें उनके पैरों में पहनाया होगा । फिर मां और बेटे दोनों बंगले के बाग में टहले होंगे । मां ने अपने बेटे को चंदा-मामा, परियों और देवों की कहानियां सुनाई होंगी ।

सोचते-सोचते प्रतिमा का ध्यान दीवार की एक अलमारी पर गया। उसने उसका ताला खोला। उसमें बकुल की कितनी ही साड़ियां कपड़े से ढकी रक्खी थीं। साटन और बनारसी बेलबूटेदार कपड़ों के भिन्न-भिन्न प्रकार के ब्लाउज थे। साड़ियों में सफेद रेशमी साड़ियां ही अधिक दिखाई दे रही थीं। बकुल जैसी लावण्यवती सुंदरी इन श्वेत शुभ्र साड़ियों में बहुत खिलती होगी !

अलमारी के एक खाने में जरी के सालू थे। उनमें गहरे हरे रंग का बड़े-बड़े बुंदोंवाला बनारसी सालू तो बहुत ही सुंदर था। प्रतिमा ने अपने-आपसे पूछा, क्या यह सालू बकुल को उनके विवाह में मिला होगा ?

दूसरे खाने में जामुनी रंग के फीते में बंधी हुई चूड़ियां रक्खी थीं। पास ही नीले रंग के मखमली कपड़े में बंधी एक संदूकची थी। प्रतिमा के उसे खोलते ही नाना प्रकार के इत्रों की सुगंध चारों ओर फैल गई। चमेली, गुलाब, चंपा, केवड़ा, हिना और खस के इत्रों की छः आकर्षक शीशियां थीं। कुछ पूरी भरी थीं, कुछ थोड़ी खाली थीं। चमेली और खस के इत्र तो करीब-करीब खत्म ही हो चुके थे।

इत्रों की संदूकची के नजदीक कुछ गर्म कपड़े थे और उसके नीचे खाकी रंग के कपड़ों की एक गठरी। प्रतिमा ने गठरी खोली। उसमें घुड़सवारी के लिए ब्रिजिश और बंदगले का जोधपुरी कोट आदि कपड़े थे।

इन कपड़ों को देखकर प्रतिमा चकित रह गई। बकुल के कई रूप उसके सामने आ गये। मंच पर तकिया के सहारे टिककर बैठनेवाली बकुल किसी रानी की तरह शोभा देती होगी। उनकी रंगबिरंगी साड़ियों से अंदाज होता था कि वह बहुत ही रूपवती होगी। अश्वारोहण की पोशाक देखकर प्रतिमा कल्पना करने लगी कि वह इस पोशाक में कितनी आकर्षक लगती होगी। क्या वह तेजस्विता से “मेरे अपनी भांसी नहीं दूंगी” कहनेवाली रानी लक्ष्मीबाई की तरह दीखती होगी या किले में बड़ा छेद देखकर प्राणों की बाजी लगाने को तैयार चांदबीबी की तरह ? नहीं-नहीं, बकुल इन दोनों से बिल्कुल निराली लगती होगी। सुख के आनंद-सागर में विचरण करनेवाली, किंतु संकट सामने आने पर हँसते हुए उसका सामना करनेवाली, किसी समाधिस्थ योगी की तरह होगी। प्रतिमा इस प्रकार विचारों में खोई हुई

थी कि किसन भीतर आया, बोला, “मालकिन, चाय ले आऊं ?”

किसन के इस प्रश्न से प्रतिमा चौंक पड़ी । उसने चारों ओर देखा । शाम कभी की हो चुकी थी । खिड़की में से भीतर भांकती हुई सांध्यबेला की सुनहली किरणें देखकर प्रतिमा ने अपने-आपसे कहा, “अरे, शाम हो गई !”

किसन चाय ले आया । पास पड़ी कुरसी पर बैठकर प्रतिमा ने उसे पी डाला । शाम की ठंडी हवा से उसे थोड़ी कंपकंपी-सी महसूस हुई । इसी समय उसका ध्यान अलमारी में रखे एक शाल पर गया । पशमीना का वह गुलाबी शाल प्रतिमा ने बाहर निकाला । उसपर सुंदर कसीदा कढ़ा था । ओढ़ने के इरादे से उसने वह शाल उठाया और उसे खोलकर वह ओढ़ ही रही थी कि इसी समय उसमें से एक कागज निकलकर नीचे गिर पड़ा । देखने की उत्सुकता में प्रतिमा ने उसे उठा लिया । सफेद कागज में लिपटा हुआ वह एक चित्र था ।

प्रतिमा को एकदम यह अंदाज कर लेना कि वह किसका चित्र है, बड़ा कठिन मालूम हुआ । लेकिन उस चित्र से यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि जिस व्यक्ति का वह चित्र है, उसकी उम्र तीस से अधिक नहीं है । तरुण का चेहरा कुछ गोल-सा था, बड़ा रोबदार । चेहरे के हिसाब से उसका माथा अधिक चौड़ा था । उसके घुंघराले बालों की एक लट माथे पर आगई थी, जो बहुत मोहक लग रही थी । मांग के आसपास के बाल पीछे की तरफ मोड़ दिये गए थे । भौंहें काली, किंतु घनी थीं । आंखें कुछ बड़ी-बड़ी, किंतु कुछ फीके पीले रंग की थीं । ऐसा आभास होता था मानों उनमें से स्नेह टपक रहा हो । नीचे का होठ मोटा था, पर उसकी गठन बड़ी प्यारी लगती थी । वास्तव में चित्र का तरुण नहीं हूँस रहा था, बल्कि उसके भाव हँस रहे थे, होठ मुस्करा रहे थे । आंखें तो जैसे बोल ही रही थीं । देखनेवाले को यही लगता था कि वह तरुण उसे देखकर हँस रहा है । प्रतिमा को चित्र के एक कोने में कुछ लिखा हुआ-सा दिखाई दिया, लेकिन कमरे में कुछ-कुछ अंधेरा फैल जाने से उसे पढ़ना कठिन मालूम हुआ । इसलिए वह खिड़की के पास आई और उसने उन अक्षरों पर नजर डाली । नीचे एक कोने में दो अक्षर लिखे थे—ए० डी० ।

“ए० डी० !” प्रतिमा को लगा, जैसे किसी रहस्य की कड़ी हाथ लग गई हो। उसका मन उल्लसित हो उठा। बकुल को पुस्तक भेंट करनेवाला और उसे ‘इन्नोसेंट’ कहनेवाला वह तरुण यही है।

अब तो उसके दिल में एक के बाद एक बहुत-से सवाल उठने लगे। बकुल का यह कौन लगता था ? और यह चित्र कागज में लपेटकर शाल के भीतर क्यों रखा गया ? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने की कोशिश करते ही वह अटक गई। उसने चित्र को पुनः कागज में लपेटकर पूर्ववत् रख दिया। लेकिन शाल उसने अपने बदन पर ही रहने दिया। इसके बाद जाँनी को साथ लेकर वह बंगले के पिछवाड़े संतरे के बगीचे में चली गई।

बगीचे की बाड़ी के उस पार नदी बह रही थी। सूरज क्षितिज पर विश्राम ले रहा था। सायंकाल की लाल और फीके पीले रंग की सुनहली किरणें नदी के बहते पानी में डोल रही थीं। जल-प्रवाह की कलकल ध्वनि आसपास के शांत वातावरण को भंग कर रही थी। अपने-अपने नीडों को लौटनेवाले पक्षियों का कलरव भी कभी-कभी सुनाई पड़ जाता था। नदी के उस पार किसानों की भोपड़ियां थीं, जिनमें से धुआं निकलकर पेड़ों की चोटियों पर क्षण-भर के लिए रुक हवा की दिशा में भौंका खा रहा था।

इस दृश्य को देखकर प्रतिमा बहुत प्रसन्न हो गई। अंधेरा घना होते और हवा में सरदी बढ़ते देख वह वापस बंगले की तरफ आने लगी। जाँनी तो तीर की तरह बंगले की ओर भागा। प्रसन्न के लौटने का समय हो गया था। वह साढ़े छः बजे तक आने का वादा कर गया था। प्रतिमा अपने मन में सोच रही थी कि प्रसन्न के आने पर वह उससे किस तरह बतावेगी कि बकुल के कमरे में उसने क्या-क्या देखा।

तभी उसे जल्दी-जल्दी चलते आ रहे पैरों की आहट सुनाई दी। क्षण-भर के लिए उसने सोचा कि शायद नौकर आ रहा होगा। उसने पीछे मुड़कर देखा। लेकिन आनेवाला व्यक्ति नौकरों में से न था। वह कोई नया ही आदमी था और बड़ी उत्सुकता से जल्दी-जल्दी चला आ रहा था। प्रतिमा उससे पूछने ही वाली थी कि तुम कौन हो कि वह व्यक्ति स्तब्ध स्वर में बोला, “तुम कौन हो ? बकुल ? क्या बकुल हो तुम ?”

नजदीक आते ही वह व्यक्ति बोलते-बोलते रुक गया। क्षण-भर के

लिए प्रतिमा को सिर से पैर तक ध्यान से देखता हुआ बोला, “आप कौन हैं ? मुझे एकदम योंही कुछ भ्रम हो गया। शाम के धुंधले प्रकाश में ठीक से दिखाई नहीं दिया। असल में आपने जो शाल ओढ़ा है, उसीके कारण मुझे धोखा हो गया। लेकिन आप हैं कौन ?”

उस अजनबी व्यक्ति की भावभंगिमा को देखकर और सवाल सुनकर प्रतिमा विस्मित होगई। उसने पुनः उस व्यक्ति की ओर ध्यान से देखा।

वह आदमी बूढ़ा था। उसकी उम्र कोई पंचपन या साठ साल की होगी। वह नेवी ब्ल्यू रंग का सूट पहने था। आंखों पर सुनहले फ्रेम का चश्मा था। बाल काफी पक चुके थे। हाथ में शीसम की छड़ी थी।

हड़बड़ाते हुए प्रतिमा ने उत्तर दिया, “मैं प्रतिमा देशमुख हूँ। यह हमारा ही बंगला है। पर आप कौन हैं ?”

प्रतिमा के उत्तर से वह बूढ़ा मनुष्य चौंक उठा। उसके चेहरे से स्पष्ट दीख रहा था कि वह बड़े असमंजस में पड़ गया है, लेकिन शीघ्र ही अपने भावों को छिपाते हुए उसने कहा, “अच्छा, प्रतिमा देखमुख आप ही हैं ?”

“जीहां, मैं प्रसन्न देशमुख की पत्नी हूँ।”

“प्रसन्न की पत्नी ! सच कहती हो ? अच्छा, बकुल की बहू हो तुम ?”

कुछ समय पहले की हड़बड़ाहट अब उस मनुष्य के चेहरे से बिल्कुल जाती रही थी और उसके बदले आश्चर्य और आनंद के भाव उभर रहे थे। प्रतिमा ने देखा कि शायद उस मनुष्य की आंखें भी गीली हो गई थीं। लेकिन “बकुल की बहू हो तुम,” इतना स्पष्ट पूछनेवाला यह मनुष्य आखिर है कौन ? ‘बकुल’ शब्द कितनी आत्मीयता, स्नेह और आदर से वह बोल रहा था। फिर बकुल के शाल से वह इतना परिचित रहा होगा कि उसके कारण वह भ्रम में पड़ गया।

प्रतिमा ने पूछा, “आप प्रसन्न बाबू को पहचानते हैं ? लेकिन याद नहीं आता कि इससे पहले मैंने आपको कभी देखा होगा।”

वृद्ध ने उत्तर दिया, “तुम मुझे कहां से देखतीं ? देख ही नहीं सकती थीं। मुझसे तुम्हारी कभी भेंट ही नहीं हुई।”

प्रतिमा अपने मन में यह सोचती हुई कि आखिर यह कौन है, संतरे के बाग से बाहर निकलकर बंगले की ओर जाने लगी। वह व्यक्ति भी साथ

चला। बंगले की सीढ़ियां चढ़ते समय प्रतिमा को अचानक सूझा कि देखूं इस व्यक्ति में और ए० डी० हस्ताक्षरवाले युवक में कोई साम्य तो नहीं है। उसने एकदम पीछे मुड़कर उस व्यक्ति की ओर देखा और पूछा, “आपका नाम क्या है ?”

इस आकस्मिक प्रश्न को सुनकर वह व्यक्ति क्षण-भर के लिए खो-सा गया, फिर संभलकर उसने उत्तर दिया, “क्षमा करें, शायद मैंने आपको अपना नाम नहीं बताया। मैं... मैं... मैं अनंत दीक्षित हूं।”

“अनंत दीक्षित ? अनंत दीक्षित ?” प्रतिमा ने दो बार उस नाम का उच्चारण किया। फिर विस्मय से बोली, “तो क्या आप ही ए० डी० हैं ?”

नवंबर महीने की ठंड के दिन थे। अगले दिन इतनी रात को अनंत दीक्षित को हवाई अड्डे पर पहुंचाने जाने में प्रतिमा को बड़ा आलस आ रहा था, लेकिन प्रसन्न ने उससे बहुत ही आग्रह किया, बिल्कुल उसके पीछे ही पड़ गया। पिछले दिन प्रतिमा का मन बकुलमय हो गया था। इसलिए उसने सोचा कि अनंत दीक्षित के साथ रहने से उसे बकुल के वारे में और भी बहुत-सी बातें मालूम हो जायंगी। अपनी इस तीव्र जिज्ञासा की पूर्ति के लिए ही वह हवाई अड्डे पर जाने के लिए राजी हो गई। प्रसन्न की मोटर अनंत दीक्षित और प्रतिमा को लेकर तेज रफ्तार से खाना हुआ और नागपुर के हवाई अड्डे की नई बनी इमारत की वरसाती में आकर खड़ी हो गई।

हवाई अड्डे पर सदीं बड़े कड़ाके की लग रही थी। इसलिए प्रतिमा ने अपना गरम कोट बदन के आसपास सटाकर लपेट लिया और बाहर की हवा से बचने के लिए वह सीढ़ियां चढ़कर इमारत के भीतर आई। प्रसन्न और अनंत दीक्षित सामान की तौल करवाने और टिकट बनवाने के लिए टिकटघर की ओर गये। प्रतिमा मुसाफिरघर में चली गई। वहां बहुत-से मुसाफिर ठहरे हुए थे, बड़ी चहल-पहल थी। कलकत्ता, बंबई और मद्रास से आये हवाई जहाजों के मुसाफिरों का जमघट था। हर एक की पोशाक में एक प्रकार की तड़क-भड़क और रौब दिखाई दे रहा था। कुछ वृद्ध यात्री सुंदर कोचों पर बैठे विश्राम कर रहे थे। कुछ चाय-काँफी पी रहे थे। प्रतिमा भीतर पहुंची ही थी कि तभी 'लाऊडस्पीकर' से आवाज आई—'कृपया ध्यान दीजिये, दिल्ली से आनेवाला 'डाकोटा' उतर रहा है।'

इस सूचना के पाते ही जहाज के उतरने का तमाशा देखने के लिए प्रतिमा बाहर गई। हवाई अड्डे के 'रन वे' की शोभा बड़ी आकर्षक थी। सीमेंट का बना रन-वे 'पलश लाइट' के प्रकाश में जगमगा रहा था। हवाई

जहाज के उतरते समय जिस तैयारी की जरूरत होती है, उसे पूरा करने के लिए पोर्टर तथा हवाई अड्डे के इंजीनियर आदि सब अफसर अपने-अपने काम में लग गये थे। आग बुझाने का बंबा और पेट्रोल की मोटर भी अपने-अपने स्थानों पर आकर डट गये थे और हवाई जहाज के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इससे पहले आये हुये तीन हवाई जहाजों के चालक और उनके साथी आपस में हँसी-मजाक और गप्पें कर रहे थे। ठंड के दिनों में नेवी ब्ल्यू रंग की पोशाक उनपर खूब फव्वती थी। उनकी बातचीत और हलचल में रोव प्रकट हो रहा था। हवाई जहाज का आनंद लेने के लिए प्रतिमा वहां गई, जहां 'प्रवेश निषिद्ध' तख्ती लगी थी। वहां से आसपास की शोभा और भी अधिक सुंदर दिखाई दे रही थी।

इमारत की तीसरी मंजिल पर बनी 'फ्लाईंग कंट्रोल' की कांच की इमारत भीतर लगी बिजली की रोशनी में एक सुंदर शीशमहल की तरह प्रतीत हो रही थी। उसपर बड़े 'सर्च लाइट' का घूमता हुआ विशाल दीप अपने तेजस्वी प्रकाश की ज्योति फेंकता हुआ हवाई जहाजों को राह दिखा रहा था। इसी समय दिल्ली से आ रहे हवाई जहाज की घरघराहट सुनाई पड़ने लगी। थोड़ी ही देर में आकाश में उड़नेवाला विमान धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा और कुछ क्षण के भीतर रन वे पर से सरपट दौड़ता हुआ एक जगह आकर रुक गया। उसके पंखों की गति से हवा का जोरदार झोंका आया, जो प्रतिमा के शरीर पर से होता हुआ निकल गया। धूल से बचने के लिए उसने अपनी साड़ी का आंचल मुंह पर खींच लिया और वहां से लौटकर प्रसन्न और अनंत दीक्षित के पास आगई, जो हवाई अड्डे के रेस्ट्रॉ के सामनेवाले बाग के फाटक के पास खड़े बातें कर रहे थे। प्रसन्न अनंत दीक्षित से मंगनीज की खदानों के बारे में कुछ कह रहा था। उसके संचालन में रोज-ब-रोज आनेवाली कठिनाइयों, सरकार के नित्य नये बननेवाले कानूनों और मजदूरों की जीवन-समस्याओं आदि के बारे में वह उन्हें जानकारी दे रहा था। बीच-बीच में उनसे सलाह भी लेता जाता था। अनंत दीक्षित उससे बड़ी आत्मीयता से बातें कर रहे थे, मानों वह उन्हींका कोई आत्मीयजन हो। प्रतिमा का उनकी बातचीत की ओर ध्यान न हो, ऐसी बात नहीं थी। सच बात यह थी कि

उस चर्चा में उसे रस न था। लेकिन वह बंबई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली से आये हुए हवाई जहाजों की ओर देख रही थी, साथ ही रेस्ट्रॉ में चाय और कॉफी की चुस्कियां ले रहे यात्रियों की ओर भी उसका ध्यान जा रहा था। आधी रात गुजरे ढाई-तीन घंटे हो चुके थे। इसलिए नींद के कारण उसकी पलकें भारी होने लगी थीं। लेकिन प्रातःकाल की समीर से उसे एक प्रकार का आह्लाद मालूम हो रहा था। पश्चिमी क्षितिज की ओर मड़े हुए चंद्रमा का प्रकाश उसके हृदय को गुदगुदा रहा था।

आखिर विमान के आने का समय हुआ। लाउड स्पीकर से बंबई के यात्रियों को हवाई जहाज में बैठने का ऐलान किया गया। हवाई जहाज की ओर जाने से पहले अनंत दीक्षित ने प्रसन्न के कंधों पर दोनों हाथ रखे और कहा, “हम लोगों की किस तरह अचानक भेंट हुई। तुम्हारी पत्नी भी देखने को मिल गई। प्रसन्न, मैं तुम्हें हार्दिक बधाई देता हूं, बड़ी अच्छी पत्नी मिली है तुम्हें। बड़ी होशियार। मैं थोड़ी ही देर उसके साथ रहा, लेकिन उतने ही समय में मेरा विश्वास हो गया कि वह बड़ी विचारशील, भावना-प्रधान और कोमल मन की लड़की है। तुम बड़े भाग्यवान हो, बेटा। लेकिन एक बात मैं तुमसे कहे देता हूं। ऐसे भावना-प्रधान और कोमल दिलवाले व्यक्तियों से बड़ी कोमलता से बर्ताव करके अपना जीवन चलाना चाहिए। मेरा तुम दोनों को आशीर्वाद। खूब फूलो-फलो, बेटा।”

इतना कहकर वे आगे बढ़ गये और बंबई जानेवाले हवाई जहाज में बैठ गये। थोड़ी देर में हवाई जहाज के पंखों की घरघराहट शुरू हो गई। चालक हवाई जहाज को रन वे पर से दौड़ाता हुआ दूर ले गया और फिर उसका वेग बढ़ाकर धीरे-से उसे आकाश में ले गया। देखते-देखते वह दृष्टि से ओझल हो गया। प्रसन्न ने प्रतिमा के कंधे पर हाथ रखकर जम्हाई लेते हुए कहा, “प्रीति, चलो अब चलें।” प्रतिमा ने एक गहरी सांस लेकर कहा, “चलिये?”

सोनेगांव के हवाई अड्डे से नागपुर की सिविल लाइन्सवाला उनका बंगला करीब पांच-छः मील दूर था। सुबह कोई तीन बजे का समय होने के कारण रास्ता बिल्कुल खाली था। प्रसन्न को चालीस-पैंतालीस की रफ्तार से गाड़ी चलाने में कोई कठिनाई नहीं हुई और वह बराबर उसी रफ्तार से

चलाता रहा। लेकिन प्रतिमा के विचार-चक्र की रफ्तार उससे भी तेज थी। वह मन-ही-मन कह रही थी—“मानव-जीवन में योगायोग भी एक अजीब चीज होती है? पीछे की सारी घटना उसे अद्भुत संयोग मालूम हो रही थी। कामठी के बंगले में जाकर ठहरने से लेकर ए० डी० से भेंट होने तक की सभी घटनाएं उसकी आंखों के सामने चल-चित्र की तरह घूम गईं।

बंगले में घूमते हुए अनंत दीक्षित ने कहा था, “मैं बापूसाहब का अत्यंत पुराना मित्र हूं। मेरा उनके साथ बड़ा धरोपा था। इस बंगले से मैं अच्छी तरह परिचित हूं। एक समय था, जब मैं यहां हमेशा आया करता था।”

अनंतर दोनों सीढ़ियां तय कर बंगले में आये और नीचे की मंजिल के ड्राईंग रूम में अनंत दीक्षित को ले जाकर प्रतिमा ने कोच पर बैठने के लिए कहा। वह भी उनके सामने बैठ गई। दो-चार पल में आसपास निगाह घुमाकर अनंत दीक्षित ने कहा, “प्रसन्न कहां है? उस समय तो वह बहुत ही छोटा था।”

बदन से शाल उतारकर उसे कोच के पीछे रखती हुई प्रतिमा बोली, “वे रामटेक की तरफ मैंगनीज की खदानों पर गये हैं।”

दीक्षित ने आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता से कहा, “प्रसन्न खदानों पर गया है! अरे वाह! अब सारा काम वह स्वयं देखने लगा है। मेरे लिए यह बहुत ही खुशखबरी है। अब तो वह बहुत बड़ा हो गया होगा! क्यों?”

प्रतिमा ने मुस्कराते हुए कहा, “आप स्वयं अंदाज कर लीजिये। अब मैं उनकी पत्नी आपसे बातें कर रही हूं!”

उसका यह मार्मिक उत्तर सुनकर अनंत दीक्षित दिल खोलकर हँस पड़े। जब से रूमाल निकालकर आंखों पर लगी ऐनक के शीशे पोंछते हुए बोले, “तुम ठीक कहती हो।”

“आप क्या नागपुर से आये हैं या यहीं रहते हैं?” प्रतिमा ने पूछा।

“मैं बंबई में रहता हूं। किसी काम से नागपुर आया था। सहज यहां चला आया। मैंने कभी सोचा भी न था कि यहां कोई रहता होगा। कभी-कभी संयोग से ही मुलाकातें हो जाया करती हैं।”

प्रतिमा को दीक्षित की बातें बड़ी संदिग्ध और विक्षिप्त-सी लग रही थीं। उसे लगा, मानों वे इस बात को साफ़ कर रहे थे कि यह मालूम होते

हुए भी कि इस बंगले में कोई नहीं रहता, वे स्वयं यहां कैसे आगये थे। ड्राइंग रूम के कोच के कवर पर हाथ फेरते हुए दीक्षित बोले, “लगता है, तुमने यहां की सजावट में कोई हेर-फेर नहीं किया। यहां की सजावट जैसी पहले थी, उसी तरह मैं अब भी देख रहा हूं।”

प्रतिमा की समझ में न आया कि वह क्या कहे। इसने सिर्फ ‘हैं’ कह दिया और उन्हें पता न चले इस ढंग से उसने उनकी ओर देखा। एक घंटा पहले उसे शाल के भीतर जिस व्यक्ति का चित्र मिला था, उसमें और दीक्षित में बहुत साम्य दिखाई पड़ रहा था, लेकिन वह उनका तीस की उम्र का फोटो था। आज उनमें बहुत परिवर्तन हो गया था। सिर के बाल सफेद हो गये थे। आंखों पर चश्मा चढ़ा था। लेकिन आंखों से स्नेह और स्निग्धता आज भी वैसी ही टपक रही थी। केश-विन्यास भी पहले की तरह था। नीचे का होठ भी उतना ही मोटा किन्तु प्यारा लग रहा था।

“आपके लिए चाय लाऊं या शरबत?” प्रतिमा ने कोच के पीछे रक्खा शाल अपने पैरों पर रखते हुए पूछा। उस शाल को देखकर पैदा हुई वेचैनी को छिपाते हुए दीक्षित बोले, “यदि मैं कुछ भी न लूं, तो क्या कोई हर्ज है? मैं सोचता हूं कि अब मुझे जाना चाहिए।”

“क्यों? क्या आप प्रसन्नबाबू से नहीं मिलेंगे? यदि आप थोड़ी देर और रुक जायें तो जरूर मुलाकात हो जायगी। वे अब आने ही वाले हैं। आज देर हो ही गई है, नहीं तो उन्हें अभी तक आ जाना चाहिए था।” कहकर वह उठी। भीतर गई और पांच-सात मिनट के बाद लौट आई। फिर उनके सामने आकर बैठ गई। दीक्षित ने पूछा, “क्या मेरा नाम तुमने आज पहली बार सुना है?”

“जी हां, आपका नाम आज ही पढ़ा है और सुना भी आज ही है! पढ़ने और सुनने में कुछ ही अंतर रहा होगा!”

“मेरा नाम पढ़ा! कहां पढ़ा?” दीक्षित ने जैसे चौंककर पूछा।

“‘इन्नोसेंट’ उपन्यास पर। आपही ने वह पुस्तक मेरी सास को भेंट की थी?”

यह सुनकर अनंत दीक्षित स्तब्ध रह गये। उनके चेहरे पर विचारों और भावों की छटाएं अंकित हो गईं। लेकिन दूसरे ही क्षण प्रकृतिस्थ होकर

बोले, “हां, मैंने ही दी थी वह पुस्तक बकुल को। उन्हें पढ़ने का बड़ा शौक था।”

“जीहां, मालूम तो ऐसा ही होता है।”

“मतलब?”

“कुछ समय पहले ही मैंने उनके कमरे देखे। प्रत्येक कमरे की चीजें, सजावट और साफ-सुथरापन अभी तक ज्यों-का-त्यों है। अभी मैं जो शाल ओढ़े थी, वह भी उन्हींका था।”

दीक्षित जैसे किसी भूले युग में पहुँच गये हों, बोले, “यह शाल उन्हें बहुत पसंद था। ठंड के दिनों में तो वे उसे हमेशा ओढ़े रहा करती थीं। इस शाल के कारण ही उस समय मुझे कुछ भ्रम हो गया था।”

इसी समय किसन ने चाय की ट्रे लाकर मेज पर रख दी। प्रतिमा ने दो प्यालों में दूध डाला, चीनी छोड़ी और चाय बनाकर प्याला दीक्षित के हाथ में दे दिया। फिर बोली, “क्या आप मेरी एक शंका का उत्तर देने की कृपा करेंगे?”

“क्या?”

“मनुष्य की आत्मा अपनी अतृप्त आशाओं की पूर्ति के लिए क्या सच-मुच फिर से मानव-देह धारणकर विचरण कर सकती है?”

प्रतिमा का यह सवाल जितना अनपेक्षित था उतना ही विचारणीय भी।

“क्यों, तुम्हें यह प्रश्न पूछने की क्या जरूरत पड़ी? क्या ऐसा कोई अनुभव तुम्हें यहां हुआ है?”

“जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन अभी तक सास के बारे में जितनी भी बातें मैंने सुनी हैं, उससे मेरी यह धारणा हुई कि मेरी सास की आत्मा अपने जीवन की अधूरी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए यहां विचरण करती होगी। लेकिन मेरा यह अनुभव क्या सच हो सकता है?” प्रतिमा ने शून्य मन से पूछा।

अनंत दीक्षित उसका एक-एक शब्द बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उनका मन कांप रहा था, आंखें गीली हो रही थीं। बोलते-बोलते प्रतिमा ने उनकी ओर देखा। उनकी मुद्रा गंभीर हो रही थी, मानों वे पुरानी यादों के ताने-

बाने में उलभे हों। प्रतिभा ने सोचा, हो सकता है कि इस प्रवाह में वे बकुल के बारे में कुछ कहना शुरू कर दें।

इसी समय दीक्षित ने कहा, “तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिए बहुत कठिन है। मानस-शास्त्र की दृष्टि से इसका क्या उत्तर होगा, कहना मुश्किल है, क्योंकि प्रत्येक की भावना पर इस प्रश्न का उत्तर अवलम्बित है। किसी व्यक्ति के प्रति आकर्षण हो जाय तो उसकी मृत्यु के बाद भी भावनाओं की तीव्रता और कल्पना में विहार करनेवाले मन के कारण हम उस व्यक्ति को देख सकते हैं। ऐसा आभास हो सकता है कि वह व्यक्ति हमारे आसपास कहीं विचरण कर रहा है। लेकिन इस बात के लिए उत्कट इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है। बकुल की आत्मा के संबंध में मैं कुछ नहीं कह सकता। लेकिन संभव है, वह यहां की हर एक वस्तु में व्याप्त हो। लेकिन छोड़ो इस विषय को। तुमने अपनी सास के बारे में जो कुछ कहा है, उसपर से मैं यह पूछना चाहता हूं कि उनकी मृत्यु के बारे में क्या तुम सब बातें जानती हो?”

“जी नहीं!” प्रतिभा ने विषाद-भरे स्वर में उत्तर दिया। फिर गर्दन झुकाती हुई बोली, “मैं सारी बातें नहीं जानती, यही तो दुर्भाग्य है। कल तक मुझे यह नहीं मालूम था कि सासजी ने आत्म-हत्या की थी। प्रसन्नबाबू ने कल रात मुझसे यह कहा। सच बात यह है कि मुझे उनकी मृत्यु के रहस्य को जानने की बड़ी तीव्र इच्छा है। वह मुझे कैसे मालूम होगा?”

इस आशा से कि उसके इस प्रश्न से अनंत दीक्षित उस रहस्य को बताना शुरू कर देंगे, प्रतिभा रुकी और उनकी ओर देखने लगी। इसी समय मोटर के हार्न की आवाज उसके कानों में पड़ी और वह कोच से उठती हुई बोली, “यह लीजिये, वे आ गये!”

“आप ठीक समय पर आये।” कहती हुई प्रतिभा प्रसन्न के सामने गई। कोई मज्जेदार उत्तर देकर वह उसे हँसाने ही वाला था कि कोच से दीक्षित उठे और ड्राइंग-रूम के दरवाजे में आकर खड़े हो गये। प्रसन्न उन्हें पहचान नहीं पाया। उसे यह भी याद नहीं आ रहा था कि उसने उन्हें इससे पहले कभी देखा है। वह निगाह के इशारे से प्रतिभा से पूछनेवाला था कि ये कौन महाशय हैं, इसी समय दीक्षित थोड़े आगे बढ़े और मुस्कराते हुए बोले, “अरे प्रसन्न, तूने मुझे पहचाना नहीं। उस समय तू बहुत छोटा था।”

यह देखकर कि जिस व्यक्ति को उसने पहले कभी नहीं देखा, वह उसे तू कहकर संबोधित कर रहा है, प्रसन्न को बड़ा अचरज हुआ। तभी प्रतिमा बोल उठी, “आपका नाम अनंत दीक्षित है। बापूसाहब के आप बहुत पुराने दोस्त हैं।”

प्रसन्न ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। लेकिन उसे आश्चर्य इस बात का हो रहा था कि यदि ये महाशय बचपन से मुझे जानते हैं तो आज तक इन्होंने दर्शन क्यों नहीं दिये? उसके मन की बात शायद दीक्षित ताड़ गये। बोले, “अपने दिमाग को व्यर्थ क्यों परेशान कर रहे हो, प्रसन्न! मैं तुम्हारे माता-पिता का बहुत पुराना मित्र हूँ। रामटेक की खदानों पर पहले मैं ही मैनेजर की हैसियत से काम करता था। बहुत पुरानी बात है यह। उस समय तुम चार-पांच साल के थे। मैंने अपने इन हाथों से तुम्हें खिलाया है।”

फिर भी प्रसन्न के मन में एक शंका बनी रही कि मुझे इनका नाम पिताजी से एक बार भी सुनने को क्यों नहीं मिला? लेकिन उसने इस शंका की झलक अपने चेहरे पर न आने दी।

वह दीक्षित के साथ ड्राइंग रूम में आया और उनसे बातें करने में लग गया। प्रतिमा और प्रसन्न ने भोजन करके जाने का उनसे आग्रह किया। वे भी उनका दिल कैसे दुखाते! भोजन का इंतजाम करने के लिए प्रतिमा भीतर गई। प्रसन्न कपड़े बदलने के लिए दीक्षित से पांच मिनट की छुट्टी लेकर भीतर जाने लगा। वे बोले, “तुम आराम से आओ, प्रसन्न! मैं भी थोड़ा बाहर घूम आता हूँ।”

इतना कहकर वे बंगले के पिछवाड़ेवाले फाटक से बाहर निकलकर इस तरह चलने लगे, जैसे सब रास्ते उन्हें अच्छी तरह मालूम हों।

प्रतिमा बड़े उत्साह से भीतर गई थी। उसने नौकरों को बढ़िया भोजन बनाने की हिदायतें दीं। उस दिन भोजन में कोई मीठा पदार्थ नहीं बना था। इसलिए उसने ‘फ्रूट सैलेड’ बनाने का आदेश दिया। वह अनंत दीक्षित को बहुत बढ़िया भोजन कराना चाहती थी। उसकी परेशानी देखकर रसोइये ने उससे दो-तीन बार कहा, “मालकिन, आप फिफ्र न करें। रसोई बहुत बढ़िया बनेगी!” इस आशा से कि दीक्षित से फिर बातें करने का मौका मिलेगा, हॉल में आई। लेकिन दीक्षित वहां थे कहां?

उसने हॉल में चारों ओर अपनी नज़र दौड़ाई। बरामदे में भी जाकर देख आई। उसे भय हुआ कि कहीं वे चले न गये हों। उसने प्रसन्न को पुकारकर उससे पूछा, “क्योंजी, दीक्षितजी कहां चल दिये?” प्रसन्न ने अपने कमरे से ही उत्तर दिया, “बाहर टहलने गये हैं। अभी आये जाते हैं।”

प्रतिमा सोचने लगी—इतनी रात गये वे कहां घूमने गये होंगे? क्यों गये होंगे? कहीं यह सोचकर कि यदि बकुल की आत्मा इस जंगल में विचरण करती हो तो उसे खोजूं, वे उसकी तलाश में शायद चल पड़े हों? प्रतिमा का कोमल मन अधीर हो उठा। वह दीक्षित को देखने के लिए बंगले के पीछेवाले बरामदे में आई।

चारों ओर शांति छाई थी। भींगुरों की भंकार हवा में तैर रही थी। नदी के जल का निनाद सुनाई पड़ रहा था। नदी का पाट फीके स्वप्निल चंद्र के प्रकाश में चमक रहा था। आसपास दौड़ती हुई प्रतिमा की उतावली निगाह उस अंधेरे में भी दीक्षित की टोह ले रही थी। बकुल की आत्मा देह धारणकर इस रूपहले पाट में पास ही कहीं तीव्रता से प्रतीक्षा करनेवाले दीक्षित से मिलने शायद आई हो, यही देखने के लिए प्रतिमा नदी के किनारे की ओर देख रही थी। सफेद साड़ी पहने बकुल रेत पर हल्के-हल्के कदम रखकर आती हुई कहीं दिखाई दे रही है क्या? इस उत्कट भावना से प्रतिमा देखने लगी। यह सब सोचते-सोचते वह एक मधुर कल्पना-सृष्टि में खो गई थी। क्षण-दो क्षण बीते होंगे कि प्रतिमा एकाएक चौंक पड़ी। सामने फैले अंधकार में, जिस चट्टान से कूदकर बकुल ने आत्म-हत्या की थी, उस दिशा में एक प्रकाशमय ज्योति जलती हुई दिखाई दी।

“ज्योति ! ज्योति !” प्रतिमा अस्पष्ट आवाज़ में बोली। उसने अपने आपसे पूछा, “यह ज्योति कहीं बकुल की आत्मा की प्रभा तो नहीं है? इस ज्योति के प्रकाश से अब कहीं बकुल तो प्रकट न होगी?”

लेकिन दूसरे ही क्षण ज्योति बुझ गई। बकुल को देखने के लिए लालायित प्रतिमा का मन निराश हो गया। लेकिन उसी समय उस अंधेरे में खाली पगडंडी पर एक काया आगे बढ़ती हुई दिखाई दी। “बकुल ? क्या वह बकुल है ?” भर्राई हुई आवाज़ में प्रतिमा ने कहा। लेकिन अंधेरा चीरकर आती आकृति स्त्री की न थी। वे अनंत दीक्षित थे।

सिगरेट जलाने के लिए उन्होंने माचिस की सींक जलाई होगी। उसी का वह प्रकाश था। बकुल ने जिस स्थान पर आत्महत्या की थी, उस स्थान से अनंत दीक्षित को लौटते देखकर प्रतिमा का मन पुनः भांति-भांति के तर्क-वितर्क करने लगा। यदि अनंत दीक्षित को वह स्थान मालूम है, जहां बकुल ने आत्महत्या की थी, तो उसके आत्महत्या करते समय क्या वे यहां उपस्थित रहे होंगे ? इस तरह के विचारों में डूबती-उतराती प्रतिमा हॉल में आई। अनंत दीक्षित की प्रतीक्षा में प्रसन्न बैठा अखबार पढ़ रहा था। थोड़े ही समय में दीक्षित वापस आये। प्रतिमा को उनका चेहरा पहले की अपेक्षा अधिक गंभीर और उदास लगा। लेकिन खाने पर बैठने के बाद प्रतिमा ने बातचीत के सिलसिले में भिन्न-भिन्न विषय उठाकर उनकी गंभीरता और उदासी को पूर्ण रूप से भगा दिया। उनकी गप्पों पर खूब रंग चढ़ गया। रात के बारह घंटे बजते ही प्रतिमा गरम-गरम काफी ले आई और फिर प्रतिमा के साथ प्रसन्न अपनी कार से अनंत दीक्षित को लेकर हवाई अड्डे पर आया।

...

...

...

“अब उतरो न मोटर से।” प्रसन्न ने कहा। प्रतिमा ने चौंकर आंखें खोलीं। इस समय तक मोटर सिविल लाइन्सवाले उनके बंगले की बरसाती में आकर खड़ी हो गई थी। प्रसन्न ने जम्हाई लेते हुए मोटर का दरवाजा खोल दिया और प्रतिमा के कंधे को झुकभोरकर उसे मानो जगा दिया। वास्तव में प्रतिमा को नींद नहीं आई थी, आंखें बंद करके वह अनंत दीक्षित के बारे में सोच रही थी।

बंगले में प्रवेश करने पर प्रसन्न सीधा अपने बिस्तर पर जाकर पड़ रहा और उसे तुरंत नींद आ गई, लेकिन प्रतिमा की आंखों में नींद का नामोनिशान भी न था। मन में भिन्न-भिन्न प्रश्न कुहराम मचा रहे थे। हवाई जहाज में सवार होने से पहले अनंत दीक्षित ने मेरी ओर क्यों नहीं देखा ? प्रसन्न को यह इशारा क्यों किया कि कोमलता से बर्ताव कर जीवन चलाना चाहिए ? आदि-आदि।

काँफी की ट्रे हाथ में लिये शैवंती ने प्रतिमा के कमरे में प्रवेश किया, पर वह द्वार पर ही ठिठक गई। आगे बढ़कर प्रतिमा की मेज़ पर ट्रे रखने की उसे हिम्मत ही न होती थी। उसे आश्चर्य हो रहा था अपने मालकिन के स्वभाव पर। प्रतिमा दो-एक कहानियाँ लिख डालने के इरादे से अपने अध्ययन-कक्ष में जमकर बैठी थी। सामने सफेद कागज़ों का पैकट रखा था। 'पार्कर' पेन हाथ में था। लेकिन किसी भी तरह काले अक्षर सफेद कागज़ों पर नहीं उतर रहे थे। कितनी ही कहानियों की कथावस्तुएं उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं, लेकिन जब वह किसी एक कथावस्तु को लेकर लिखना आरंभ करती, तो चार सतरें लिखने के बाद ही किसी शब्द पर अटक जाती। तब उसके लिखने की गति बटन बंद करते ही बुझे बत्ती की तरह हो जाया करती।

उसे कुर्सी पर बैठे-बैठे लगभग डेढ़ घंटा हो चुका था। "जैसे भी हो अपनी एक कहानी हमारे दिवाली-अंक के लिए शीघ्र भेजिये। आपकी कहानी के बिना हमारा अंक सूना रहेगा।" इस आशय के संपादकों के दो-चार पत्र उसकी मेज़ पर पड़े हुए थे। प्रतिमा ने करीब सात-आठ साल से कहानियाँ लिखना शुरू किया था। मराठी की अनेक प्रतिष्ठित मासिक पत्रिकाओं में उसकी कहानियाँ हमेशा प्रकाशित होती रहती थीं। उसके एक-दो उपन्यास भी छप चुके थे। मराठी लेखिकाओं में उसका नाम ऊँचा था। प्रसन्न जैसा शौकीन और आत्मीयता से हर तरह की मदद देनेवाला पति मिल जाने से उसकी कहानियों में एक नया आकर्षण पैदा हो गया था।

लेकिन आज उससे लिखा नहीं जा रहा था। कहानी मन के अनुसार शुरू नहीं होती थी। इसलिए वह अपने-आप पर चिढ़कर अधूरा लिखा कागज़ गुस्से से मसल डालती और उसे मेज़ के नीचे रद्दी कागज़ों की टोकरी में फेंक देती।

उसकी यह दशा देखकर शैवंती को बड़ी बेचैनी हुई। बहुत देर तक

खड़ी-खड़ी सोचती रही कि कॉफी लेकर मालकिन के सामने जाऊं या न जाऊं ! अंत में वह मेज के पास गई और कैटली से कप में कॉफी डालते हुए बोली, “बाईसाहब, काफी तैयार है, पी लीजिये ।”

पेन को बंद करती हुई प्रतिमा बोली, “संपादकों को क्या मैं अब चंगदेव की तरह कोरे कागज ही भेज दूं ? देख तो दो पंक्तियां भी लिखते नहीं बन रही हैं । मन ही नहीं लगता ।”

प्रतिमा के अंतिम वाक्य में उसकी उस समय की मनोदशा का सजीव चित्र था । चार दिन पहले वह अनंत दीक्षित को हवाई अड्डे पर पहुंचाने गई थी । वहां दीक्षित ने प्रसन्न से जो बातें कही थीं, प्रतिमा के मन में वे गहरी जमकर बैठ गई थीं । उसकी निगाह के सामने हमेशा बकुल और अनंत का चित्र रहा करता । तीन दिन पहले वह प्रसन्न के फिर पुनः कामठी के बंगले में रहने आई थी । प्रसन्न को खदानों पर कुछ जरूरी काम निपटाने थे । उनके लिए वह रामटेक में ही चार-छः दिन रहनेवाला था । प्रतिमा ने उससे बहुत आग्रह किया था कि वह भी उसके साथ बंगले में रहे और रामटेक जाकर रोज काम देख आया करे, लेकिन प्रसन्न ने उससे कहा था, “नहीं प्रीति, मुझसे यहां रहने का आग्रह न करो । नाराज न हो । आजकल खदानों का धंधा पहले की तरह आराम का नहीं रहा है । बात-बात में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है । धंधा वही है, जो पहले था, लेकिन आसपास की दुनिया बदल गई है ।”

प्रतिमा समझ न पाई कि दुनिया बदल जाने का क्या मतलब है । इसलिए उसने पति से पूछा, “दुनिया कैसे बदल गई है ?”

“पहले मँगनीज के रोजगार में स्पर्धी इने-गिने ही रहा करते थे । अब यह बात नहीं रही । एक ओर स्पर्धा बढ़ रही है । दूसरी ओर सरकार नये-नये कानून बनाकर हमारा क्षेत्र सीमित करने लगी है । इनकमटैक्स के मामले में यदि मैं ध्यान न दूं, तो दूध की मलाई तो मिल ही नहीं सकती, दूध की एक बूंद भी मिलेगी या नहीं, इसमें शक है ।”

“ऐसी बात है ?”

“हां, इसके साथ ही मजदूरों ने तो हमें इतना हैरान कर रखा है कि क्या कहूं । उनकी मजदूरी काफी बढ़ा दी गई है । हर साल उन्हें बोनस

मिलता है। उनके रहने के लिए घर बनवाने की योजना पूरी हो रही है। बीमारी में उनका इलाज मुफ्त में होता है। इसके बावजूद मालिकों को हमेशा गालियां देते रहने से वे बाज नहीं आते, जैसे वह उनकी एक आदत ही पड़ गई है। कहीं कोई ऐसा दिन हमारी किस्मत में न आ जाय कि जिस दिन मजदूर मालिक हो जायं और मालिक भिखारी बन जायं !” इस तरह प्रसन्न ने सारी बातें प्रतिमा को समझाई और अंत में कहा, “इसलिए तुम मुझसे यहां रहने का आग्रह न करो। क्या तुम समझती हो कि तुम्हें छोड़कर जाने में मुझे खुशी हो रही है? पगली कहीं की !”

इतना कहकर प्रसन्न रामटेक चला गया था। प्रतिमा को इस बात की खुशी थी कि प्रसन्न के लौटने तक उसे इस बंगले में रहने को मिलेगा। बंगले में नौकरों की कोई कमी न थी। फिर भी शेवंती को वह नागपुर से साथ ले आई थी। शेवंती से काँफी का प्याला लेकर उसने खाली कर डाला और कमरे से बाहर निकल पड़ी।

संगीत के किसी प्रिय राग का आलाप मन को प्रभावित कर दे तो हमारे होंठ जिस तरह बार-बार उसे दोहराते रहते हैं, उसी तरह प्रतिमा के मन और हृदय में कुछ अचित्य भावनाओं का तूफान खड़ा हो गया था। जिस तरह उसे बकुल की आत्महत्या का स्थान, उसके आसपास फैला जंगल, दूर से दिखाई देनेवाला बालू का मैदान, आदि-आदि याद आ रहा था, उसी तरह अनंत दीक्षित से हुई अचानक और अनपेक्षित भेंट, बकुल-संबंधी उनकी रहस्यमयी और कोमल बातें और मनुष्य की आत्मा शरीर धारणकर दृश्य रूप में विचरण कर सकती है, इस नई सूझ के विचार भी उसके मन में घूम रहे थे।

प्रतिमा बारामदे में आकर कठघरे से टिककर खड़ी हो गई और दूर-दूर तक अपनी दृष्टि दौड़ाने लगी। शाम हो गई थी। अंधेरे के परिधान में पृथ्वी लिपटी जा रही थी।

शुक्लपक्ष की त्रयोदशी की चांदनी धरती के कण-कण को शीतल कर रही थी। चंद्रमा शीतल अमृत उंडेल रहा था और पृथ्वी उसे पीकर तृप्त होने का यत्न कर रही थी। रजत प्रकाश में नदी का जल चमक रहा था। इसके परिणामस्वरूप प्रतिमा का मन और दृष्टि, दोनों और अधिक स्वप्निल हो

गये थे ।

“अनंत दीक्षित के कथनानुसार यदि मैं बकुल की स्मृति से समरस हो जाऊं तो क्या उसकी आत्मा को दृश्य रूप में देख सकूंगी ?” एकाएक यह अद्भुत विचार प्रतिमा के मन में उमड़ उठा । वह तुरन्त बकुल के कमरों की ओर चल पड़ी । कमरों की तालियां अब उसके पास ही थीं । कमरे के द्वार का ताला खोलकर उसने रोशनी की ओर सब तरफ दृष्टि दौड़ाई । आज ये सारी चीजें बकुल के किसी समय यहां रहने का परिचय दे रही थीं । लेकिन बकुल के प्रत्यक्ष रूप में दिखाई न देने के कारण प्रतिमा उदास हो गई थी ।

कुछ देर चुपचाप खड़ी रहने के बाद वह मेज पर जा बैठी और मेज की दराज के कागजों को उलटना शुरू किया, लेकिन उनमें रही कागजों के सिवा और कुछ न मिला ।

फिर उसने पुस्तकों की अलमारी खोली । उसमें से बहुत-सी पुस्तको को उसने खोलकर और उनके पन्ने उलटकर देखा, लेकिन उनमें भी मन की जिज्ञासा को शान्त करनेवाला कोई सूत उसके हाथ न लगा । अलमारी के निचले खाने में मासिक पत्रिकाओं की एक फाइल थी । प्रतिमा ने उस फाइल से दो-चार अंक बाहर निकाले और जब वह उन अंकों में से एक-एक को यों-ही उलट रही थी, अचानक एक अंक को उलटते समय उसकी आंखें हर्ष से चमक उठीं । उस अंक के भीतर उसे एक नोट-बुक मिली, जिसपर ‘बकुल’ नाम लिखा हुआ था । उसने उन दोनों अंकों को एक तरफ कर दिया और अधीर होकर उस नोट-बुक का एक-एक पृष्ठ सूक्ष्म दृष्टि से देखना शुरू किया । पहले कुछ पृष्ठों पर कविताएं और गीत लिखे थे । पर प्रतिमा को तो आशा थी कि बकुल के जीवन-संबंधी बातें उस नोट-बुक में मिल जायंगी । पर ऐसी कोई बात पढ़ने को न मिली, तो वह कुछ निरुत्साहित-सी हो गई और उसी स्थिति में सहज ही वह आगे के पन्ने उलटती गई । इसी समय दो पन्नों के बीच एक मुड़ा हुआ कागज मिला । बड़ी अधीरता से उसे खोलकर वह पढ़ने लगी ।

प्रतिमा यह नहीं जान सकी कि उस पत्र पर हस्ताक्षर किसके थे, लेकिन इतनी बात पक्की थी कि वह पत्र बकुल को लिखा गया था । प्रतिमा उस पत्र

का एक-एक शब्द और एक-एक अक्षर मन लगाकर पढ़ रही थी।

“...बकुल, तुम्हें मैं इन्नोसेंट कहता हूँ, सो बिल्कुल उचित है, उसे भूठ न मानना। तुम पूर्ण रूप से निष्कलंक और निर्दोष हो। तुम अपने नाम को सार्थक करती हो, नाम के अनुसार बकुल के पुष्प की सुगन्ध की तरह, मेरी कॉरेली की इन्नोसेंट नायिका की तरह।

“तुमने वह पुस्तक पढ़ी है न ? उसमें इन्नोसेंट का कितना श्रेष्ठ चित्र अंकित किया गया है। लेकिन इन्नोसेंट के जीवन का शोकपूर्ण अन्त ! बकुल, दुनिया में निष्कलंक और निष्पाप लोगों के जीवन में क्या दुःख ही अधिक होता है ? तुम—तुम्हारा हृदय कितना विशाल, कितना महान है ! बकुल...”

“तुममें मुझे एक भावुक आत्मा का साक्षात्कार हुआ : एक अकृत्रिम हृदय का जो जीवन के प्रपंचों से सचमुच अनभिज्ञ है। तुममें मैंने एक सामान्य नारी के ही दर्शन नहीं किये, लेकिन एक आदर्श को देखा है। बकुल पुष्प की सुगन्धि, एक भूले संगीत की स्मृति, एक स्पर्श, जो किसी भी व्यक्ति की पीड़ा को हर लेता है ! मां का-सा निस्वार्थ तथा दिव्य प्यार...”

“बकुल, ऐसे विशाल हृदयवाले व्यक्ति से कौन प्यार नहीं करेगा ? किसे उससे सहानुभूति न होगी ?—लेकिन, ...लेकिन मेरी यह सहानुभूति किस काम की ? बकुल, आज लगता है, विधाता हम दोनों को इतना निकट क्यों ले आया ? इतने थोड़े समय में ही सहानुभूति और आत्मीयता का कोमल तंतु क्यों पैदा कर दिया ? कौन-सी शक्ति हम दोनों को एक-दूसरे की ओर खींच रही है। बकुल, एक ओर एक अमीर-लखपति है, दूसरी ओर गरीब, तुम्हारे पैसों पर जीनेवाला एक मामूली मैनेजर !

“ऐसी कोई विचित्र घटना हो जाती है तो शेक्सपियर के इस कथन पर विश्वास हो जाता है कि हम लोग भाग्य के हाथ की कठपुतली हैं।

“क्या इसी कारण भाग्य मुझे तुम्हारे निकट ले आया ? तुमसे परिचय कराया ?

“क्या भाग्य की ही बात है कि मैं तुम्हारे निकट आने और तुमसे घनिष्ठता स्थापित करने से अपनेको रोक नहीं सकता ?

“बकुल, नियति के इन खेलों पर मैं सचमुच बहुत विश्वास करता हूँ। मुझे अनेक बार अनुभव हुआ है कि हम लोग विधाता के हाथ के खिलौने हैं।

अनेक बार जीवन में ऐसे अवसर आये हैं। हमारी ऐसी मुलाकातों की जो पहले से कभी निश्चित नहीं हुई थीं, और-तो-और जिनकी हमने कभी आशा भी न की थी, जब याद आती है, तो लगता है कि इसके पीछे नियति का ही हाथ है। यह विधाता का खेल है। कोई उद्देश्य उसके पीछे छुपा हुआ है।

“वास्तव में हम दोनों के इस स्नेह से आखिर सिद्ध क्या होगा ? लेकिन नहीं, तुमने जैसा कहा, जन्म देनेवाले विधाता पर ही सारी ज़िम्मेदारी सौंपकर हम अलग नहीं रह सकते। हमें अपनी ज़िम्मेदारी पहचानकर ही हर एक कदम आगे रखना चाहिए। यद्यपि ईश्वरीय शक्ति ही हम दोनों को एक-दूसरे के निकट लाई है, फिर भी हमें सचेत रहना चाहिए। बकुल, जीवन का तत्त्वज्ञान कितना कठोर है। तुम्हारे दिल की बेचैनी, तुमपर हो रहा अत्याचार, मैं खुली आंखों चुपचाप देखता रहूँ और तुमसे सहानुभूति के चार शब्द भी न कह पाऊँ !

“बकुल, हम दोनों क्यों निकट आगये ? किसलिए आये ? क्या इसीलिए कि हम दो जीवों की इस प्रकार दयनीय दशा हो ? तुम कहोगी—अब हमें एक-दूसरे को भूल जाना चाहिए। लेकिन, बकुल, क्या यह संभव है ? तुमने कहा—हम दोनों एक-दूसरे से कभी न मिलें। लेकिन तुमने यह नहीं सोचा कि तुम मुझे कितना कठोर दंड दे रही हो ! क्या सचमुच अब हम दोनों की भेंट कभी नहीं होगी ? क्या मैं तुम्हें फिर कभी न देख पाऊँगा ? कितनी बेबसी है मेरे लिए बकुल !

“बकुल, बताओ, अब हम फिर कब मिलेंगे ? यदि विधाता चाहे तो अब भी हम दोनों अकल्पित रीति से मिल सकेंगे ? हमारी मुलाकात होगी क्या ?

—अ० दी०”

पत्र पढ़कर प्रतिमा ने एक गहरी सांस ली। वह उसे मोड़ने लगी, अचानक उसने उसे फिर खोला और उसके अक्षरों की ओर देखने लगी। बकुल और अनंत ! चांद और चकोर ! लैला और मजनु ! रोमियो और जूलियट ! एकाएक कितने ही प्रेमी और प्रेमिकाओं के जीवन-चित्र सिनेमा की तरह प्रतिमा की आंखों के सामने आगये। उसे लगा जैसे उन प्रेमियों के दिलों के टूटे हुए टुकड़े इधर-उधर बिखरकर आर्त स्वर में क्रंदन कर रहे हैं। उसे

लगा कि इस क्रंदन में बकुल का करुण स्वर उसे अधिक स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रहा है।

एकाएक दो शब्द—“अनंत-अनंत” उसके कान में पड़े। वह चौंक उठी। उसने पीछे मुड़कर देखा। फिर वह तुरंत कुरसी से उठी और खिड़की के बाहर भांका। उसे शक हुआ कि बकुल ही ने पुकारा है और वह उत्कंठित दृष्टि से बकुल को खोजने लगी। कुछ समय पहले उसे भ्रम हुआ था, मानों बकुल इस कमरे के पास से गुजरी है, लेकिन वह असत्य सिद्ध होगया। वास्तव में वायु के मंद भोंके से खिड़की का परदा हिला था।

पत्र को हाथ में ज्यों-का-त्यों रखे वह हक्का-बक्का होकर पुनः टोह लेने लगी। दूसरे ही क्षण उसे भ्रम हुआ, जैसे एक आकृति उसकी नज़रों के सामने से जा रही है। उस ऊंचे और छरहरे बदन की आकृति का चेहरा देखने का प्रतिमा ने प्रयत्न किया, लेकिन निमिषमात्र में ही वह आकृति अदृश्य होगई। प्रतिमा बहुत देर तक उसके बारे में सोचती रही। वह उसके अनदेखे चेहरे का चित्र रंग रही थी। फिर अपनी कल्पना से उसने अपने मानसपटल पर बकुल की जो रूपरेखा निर्मित की, वही उसकी नज़रों के सामने लहराने लगी। बकुल के काल्पनिक चेहरे के भाव प्रतिमा को दर्शनीय, किन्तु निराशा की चिन्ता से ग्रस्त दिखाई दिये। नेत्रों में उदासी। उसने देखा—बकुल का चौड़ा माथा, उसके नीचे घनी धनुषाकृति की भौंहें, भाल पर शोभा देनेवाली गोल बड़ी कुंकुम की बिन्दी और सफेद साड़ी। विचारों के प्रवाह में बहने लगते ही प्रतिमा एकदम असमंजस में पड़ गई। क्या सचमुच मैंने बकुल को ही देखा? या कि वह सिर्फ कल्पना का एक खेल था? अनंत ने जैसा कहा था कहीं वैसा ही तो नहीं हुआ? कहीं मेरी इच्छा-शक्ति के जोर से बकुल आई हो और फिर चली गई हो!

प्रतिमा ने गर्दन को एक झटका दिया और निश्चय किया कि अब वह इस बात को दिल से निकाल देगी। उसने हाथ में रखे पत्र की ओर देखा। उस पत्र से बकुल के जीवन का रहस्य कुछ-कुछ सुलझने लगा था। इसलिए उसके मन में आनंद की लहर उमड़ रही थी। वस्तुतः बकुल और अनंत के रहस्य को सुलझाने की उसकी जिज्ञासा चरम सीमा पर पहुँच गई थी। अनंत दीक्षित का पत्र उसे अचानक प्राप्त निधि की भाँति मालूम होता था।

प्रतिमा यह अनुमान नहीं कर सकी कि अनंत दीक्षित ने बकुल को वह पत्र कब लिखा था, क्योंकि उसमें तारीख नहीं थी। लेकिन पत्र के मजमून से अनंत की मनःस्थिति का चित्र उसकी आंखों के सामने स्पष्ट हो गया। बकुल से मिलने की उसने जो इच्छा प्रकट की थी, क्या वह पूरी हुई होगी? वे दोनों कहां मिले होंगे? क्या बकुल ने यह सब अनंत के लिए किया होगा? अनंत का पत्र पढ़कर बकुल को क्या लगा होगा? अनंत जैसे भावनाशील व्यक्ति से मिलने से इंकार करके उसने स्वयं कितनी यातना पाई होगी? इस पत्र को पढ़ते समय बकुल बहुत रोई होगी, क्योंकि पत्र के कुछ शब्द पानी के बूंदों से पुछे हुए-से दीख रहे थे।

सच बात तो यह है कि पिछले आठ-दस दिन से प्रतिमा का जीवन बकुल में रम गया था। हर घड़ी वह बकुल के बारे में ही सोचती रहती थी। उसकी आत्म-हत्या की पहेली को हल करने की कोशिश करती थी। बकुल के कमरों में जो चीजें थीं, उनके आधार से वह उसका मनःचित्र खींचती थी और जबसे उसकी अनंत दीक्षित से मुलाकात और परिचय हुआ था तबसे तो उसके मन ने इस रहस्य को सुलझाने के लिए जैसे हठ ही पकड़ लिया था। उसने सोचा, यदि बकुल के जीवन पर कोई उपन्यास लिख सकूं तो वह निस्संदेह एक अलौकिक कृति होगी।

‘अलौकिक’ शब्द होठों पर आते ही प्रतिमा के मस्तिष्क में एक कल्पना चमक गई। जब कोई कल्पना या कहानी उसे सूझती तो वह दाहिने हाथ की अंगुलियों से चुटकी बजाने लगती थी। यह प्रतिमा की आदत थी। इस समय भी ‘अलौकिक उपन्यास’ शब्दों के स्फुरित होते ही वह चुटकी बजाती हुई अपने कमरे में आई और इस ख्याल से कि इस उपन्यास के लिखने में मुझे अनंत दीक्षित से काफी मदद मिलेगी, वह उन्हें पत्र लिखने लगी।

“दीक्षित महोदय,

मेरा पत्र पाकर आपको बड़ा आश्चर्य होगा। लेकिन यह स्वाभाविक ही है। अपने पत्र के साथ मैं एक दूसरा पत्र भेज रही हूं। आपही का पत्र है यह। इसे आपने मेरी सास को लिखा था। कब लिखा था, मैं इसका अनुमान नहीं कर सकती। शायद बीस-पच्चीस बरस पहले लिखा हो। मेरी नहीं, बल्कि आपकी भी दृष्टि से यह पत्र बड़ा महत्वपूर्ण है और

इसलिए इसे आपको लौटाने में मुझे बड़ा संतोष हो रहा है ।

“इसी पत्र के साथ यदि मैं आपसे एक प्रार्थना करूं, तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी ? मैं अपनी सास के जीवन के रहस्य को अभी तक नहीं जान पाई हूं । अब आप ही इसे सुलझाकर बताने की कृपा करें । यही मेरी विनती है । क्षमा कीजिये । इस प्रार्थना से मैं आपको कष्ट दे रही हूं, क्योंकि आपको भूतकाल की बातों का स्मरण करना होगा और यह बड़ा कष्टदायक काम है । लेकिन भूतकाल सुख का चरम बिंदु भी है, यह तो आप मानेंगे ही । आशा है, आप मेरी इच्छा पूरी करेंगे ।

आपकी

—प्रतिमा”

प्रतिमा ने पत्र डाक में छोड़ दिया और कामठी में रहने तक बंगले तथा आस-पास के सब भागों को बारीकी से देखने का निश्चय किया ।

प्रतिमा बहुत देर से बैठी हुई प्रसन्न के लिए स्वेटर बुन रही थी। थोड़ा आलस-सा मालूम हुआ तो उसने गुलाबी ऊन को बंडल में लपेटकर एक ओर रख दिया और रेडियो के पास आई। इस ख्याल से कि किसी-न-किसी केन्द्र से मधुर संगीत सुनने को मिलेगा, उसने रेडियो को चालू कर दिया।

पर सच यह है कि उस समय उसे संगीत में विशेष दिलचस्पी नहीं मालूम हो रही थी। उसने प्रसन्न के लिए स्वेटर बुनने का जो काम हाथ में लिया था, वह भी इसलिए कि किसी तरह वक्त कटे। अनंत दीक्षित को पत्र लिखे कम-से-कम दो सप्ताह बीत चुके थे, लेकिन अभी तक उसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ था। इसीलिए वह बहुत निराश हो गई थी।

वह रोज अपने-आपसे कहती, “आज दीक्षित का पत्र आयागा। जरूर आयागा।” अंत में जब दिन डूब जाता तो वह निराश मन से कहती, “अब कल तो जरूर आयागा दीक्षित का पत्र!” इस आशा-निराशा के बीच वह भूल रही थी कि अचानक “बाई साहब” पुकारते हुए शेवंती ने कमरे में प्रवेश किया।

“क्यों क्या है री?” शेवंती की ओर न देखते हुए प्रतिमा बोली।

शेवंती ने बिना कुछ उत्तर दिये डाक का बंडल छोटे स्टूल पर रख दिया। प्रतिमा ने उधर देखा तो रेडियो बंद करके बड़ी उत्सुकता से वहां आई और पत्रों को देखने लगी। प्रसन्न के नाम आये पत्रों को वह एक तरफ रखती जाती थी। अचानक एक मोटा लिफाफा उसके हाथ से नीचे गिर पड़ा। उसने उसे उठाया। वह पत्र उसी के लिए था।

लिफाफा बहुत मोटा था। उसने डाक की मोहर देखी। वह बंबई से आया था। यह देखते ही उसके हृदय की कली खिल गई। उसका आनंद हृदय में नहीं समा रहा था। इसी पत्र की तो वह सांस रोककर प्रतीक्षा कर रही थी। इसी पत्र के लिए तो उसका मन व्याकुल हो रहा था।

दीक्षित को पत्र लिखने के एक-दो दिन बाद ही नागपुर में एक महत्वपूर्ण काम निकल आने से प्रसन्न प्रतिमा के साथ नागपुर के लिए रवाना हो

गया था। वास्तव में प्रतिमा की इच्छा कामठी में ही रहने की थी, लेकिन उसने अपनी यह इच्छा प्रसन्न पर प्रकट नहीं की। नागपुर लौटते समय कन्हान नदी पर पानी संचित करने के लिए बनाये जानेवाले बांध के स्थान पर वे दोनों कुछ देर के लिए ठहरे। ऊँचे कगार की तरह टेकड़ी पर प्रसन्न और प्रतिमा दोनों खड़े थे। कन्हान के पानी को रोककर उसे भिन्न दिशा में मोड़ देने की योजना कार्यान्वित हो रही थी। पहले प्रवाह के मार्ग में पत्थर डाल दिये थे और उनपर बालू के बोरे रख दिये गये थे। अपने प्रवाह के मार्ग में बाधा उपस्थित हो जाने के कारण पानी का प्रवाह जैसे चिढ़ उठा था और क्रोधावेश में बनाये गये बांध पर से कूदने का प्रयत्न कर रहा था। मार्ग न पाकर वह एक ओर फैले हुए बालू के मैदान पर वेग से आक्रमण कर रहा था। प्रवाह के मार्ग में पत्थर रखने के लिए मजदूर एक पंक्ति में खड़े, एक दूसरे को और दूसरा तीसरे को, इस क्रम से पत्थर ढोने का काम कर रहे थे। आखिरी मजदूर के प्रवाह में पत्थर फेंकते ही असंख्य जलबिंदु उठते थे और सूरज की किरणों के सुनहले रंग के कारण, उनमें विभिन्न रंग चमककर, इन्द्रधनुष का आभास कराते थे। धीरे-धीरे पानी के प्रवाह को सर्प की तरह आड़े-टेंड़े मोड़ मिल रहे थे। नदी के उस पार हरा-भरा जंगल फैला हुआ था।

प्रसन्न ने प्रतिमा के कंधे पर बायां हाथ रखकर उसे दाहिने हाथ से दूर बना हुआ कामठी का बंगला दिखाया। वह अब एक सफेद बिंदु की तरह दीख रहा था। प्राकृतिक सौन्दर्य से मोहित होने के बजाय प्रतिमा ने मन-ही-मन कहा, “बकुल अपने घोड़े पर बैठकर क्या कभी यहां तक आई होंगी ? इस कगार पर खड़े होकर क्या उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लूटा होगा ? इस नदी के किनारेवाले मैदान में उनके सुंदर घोड़े की टापों के निशान बने होंगे ? नदी के किसी पत्थर पर बैठकर अपने गोरे पैर पानी में डालकर क्या उसने जल-क्रीड़ा का आनंद लिया होगा ? सांय-सांय बहने-वाली हवा ने उनकी केश-राशि को क्या फुरफुर उड़ाया होगा ? नीचे खिसकनेवाले आंचल को ठीक करते हुए क्या उन्होंने कहा होगा, “वाह, कैसा सुंदर स्थान है यह !”

प्रसन्न प्रतिमा का हाथ पकड़कर यदि उससे चलने के लिए न कहता तो इसी तरह वह न जाने कितने ही सुंदर चित्र अपने मन में बनाती रहती। वे

दोनों टेकड़ी उतरकर नदी के किनारे आये। जाँनी रेत में खेलने के लिए उतावला हो रहा था। वह तीर की तरह दौड़ता हुआ प्रसन्न से बहुत दूर चला जाता और फिर क्षण-भर के लिए इधर-उधर देखकर इस आशंका से कि कहीं मालिक उसे यहीं न छोड़ जायं, दौड़कर वापस आ जाता।

प्रतिमा ने जूते उतारकर हाथ में ले लिये और ठंडे पानी में धीरे-धीरे प्रवेश किया। पानी का स्पर्श उसे बड़ा सुखद मालूम हुआ। प्रसन्न को बूट उतारने में आलस आया। इसलिए वह किनारे पर ही बैठा रहा। परंतु प्रतिमा उथले पानी में काफी आगे तक बढ़ती गई। जाँनी भी उसके साथ था। वह कभी-कभी पानी में दौड़ पड़ता था। प्रतिमा जरा भी गहरे पानी की ओर बढ़ती तो जाँनी को डर लगता और वह जोर-जोर से भूंकने लगता। तब प्रतिमा उससे कहती, “चुप रह। क्यों चिल्लाता है? पागल कहीं का!” इस निर्मल आनंद में प्रतिमा भूल ही गई कि शाम हो रही है। अन्त में प्रसन्न ने चिल्लाकर कहा, “प्रीति, देर हो रही है। अब लौट आओ। वलो, चलें।”

नागपुर आते समय प्रसन्न ने बीच ही में एक बंगल के फाटक के नजदीक गाड़ी रोक दी। बंगले से एक बूढ़े पारसी सज्जन बाहर आये। वे सफेद पैंट पहने हुए थे। बदन में बंदगले का कोट था और सिर पर काली मखमल की संकरी टोपी। उन्हें देखते ही प्रसन्न ने मोटर से बाहर निकलकर हाथ हिलाते हुए कहा, “कहिये, क्या हाल हैं?”

“सब ठीक है!” प्रसन्न को देखकर उन पारसी सज्जन को बड़ा आनंद हुआ। वे बड़ी आत्मीयता से बोले, “बहुत दिनों बाद दर्शन हो रहे हैं। आइये न, एक-दो मिनट बैठ लीजिये!”

प्रतिमा की ओर ध्यान जाते ही उन्होंने उसे नमस्कार किया और उससे बंगले में चलने का आग्रह किया। कार को घुमाकर वे लोग बंगले में पहुँचे। प्रसन्न ने प्रतिमा का उन पारसी सज्जन से परिचय करा दिया। ये पारसी महाशय कामठी के बड़े पुराने बार्शिदे थे। बापूसाहब से उनकी बड़ी पुरानी जान-पहचान थी। बकुल की बहू आज प्रत्यक्ष देखने को मिली, इसलिए इन भाईजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले, “आखिर आज हमारा भाग्य उदय हुआ!”

“सो कैसे ?” प्रतिमा ने हँसकर पूछा ।

“अजी, आपके ये प्रसन्नसाहब हम गरीबों के घर क्यों आने लगे ? इनके पिता बापूसाहब तो हफ्ते में कम-से-कम दो-तीन बार तो जरूर ही आया करते थे ।”

“अच्छा ! तो आपने उनकी पत्नी को भी जरूर देखा होगा ?” प्रतिमा ने पूछा ।

“क्या पूछती हैं आप ? इसी तरह एक शाम को बापूसाहब और बकुलाबाई दोनों एक साथ हमारी दुकान में आये थे । उस दिन से मेरा धंधा ऐसा चमका कि क्या कहूं ! आप सच न मानेंगी, लेकिन उन्हींके चरणों का प्रताप था वह !”

भाईजी के इन उद्गारों से प्रतिमा का मन भर गया । बकुल के प्रति आदर की जो लता उसके हृदय में पनपी थी, वह और भी अधिक लहलहा उठी । भाईजी की अंग्रेजी शराब की दुकान कामठी की सबसे बड़ी और पुरानी दुकान थी । जिन दिनों वहां अंग्रेजी फौज रहा करती थी, वह थोड़े ही समय में मालामाल हो गये । वे बड़ी नम्रता और सचाई से प्रतिमा से कह रहे थे, “यह सब पैसा मुझे बकुलाबाई के चरणों की कृपा से ही प्राप्त हुआ ।”

जब प्रसन्न भाईजी से विदा लेने लगा तब वे बोले, “दो मिनट और ठहर जाइये । थोड़ा शरबत लेकर जाइये ।”

भाईजी के भीतर जाते ही प्रतिमा ने उनके ड्राइंगरूम में निगाह दौड़ाई । पारसी धर्म के संस्थापक जरथुस्त का चित्र दीवार पर लगा हुआ था और उसके नीचे बिजली का एक छोटा-सा लाल लट्टू जल रहा था । दीवार पर दो-तीन चित्र और भी थे ।

भाईजी का नौकर शरबत के गिलास लेकर आया । उसके पीछे-पीछे भाईजी एक कागज का डिब्बा लिये हुए आये । डिब्बा प्रसन्न को देते हुए वह बोले, “तुम्हारे विवाह में मैं शामिल न हो सका था, इसलिए तुम्हें कुछ भी भेंट न दे सका । अब तुम्हें यह भेंट स्वीकार करनी होगी । गरीब की भेंट है यह !”

“वाह-वाह ! ऐसा क्यों कहते हैं !” कहते हुए प्रतिमा ने डिब्बे को

अपने हाथ में ले लिया और उसे खोलकर देखा। उसके भीतर व्हिस्की की बोतल थी। लेकिन शराब की अपेक्षा उस बोतल का आकार बड़ा सुंदर और सुडौल था। वह जहाज के आकार की बोतल थी। जहाज के पाल पर भिन्न-भिन्न रंग थे। उसके मोटे रस्से को सुनहरा रंग दे देने से वह बोतल प्रतिमा को बहुत पसंद आई थी।

मोटर चलने से पहले भाईजी ने प्रसन्न से कहा, “क्या आजकल आप लोग कामठी में रहने आ गये हैं? जरूर आइये। बहुत बढ़िया बंगला है आपका। बकुलाबाई को तो वह बहुत ही पसंद था। वे बड़ी शौकीन थीं। उस समय के बड़े-बड़े अंग्रेज अफसरों के घर बापूसाहब का आना-जाना रहता था। कभी-कभी बकुलाबाई भी क्लब जाया करती थीं। लेकिन उनका ढंग बिल्कुल अलग था। अब तो इस कामठी में कोई दम नहीं रहा। भगवान जाने कैसे वह सारा वैभव बकुलाबाई के साथ ही लुप्त हो गया?”

भाईजी के इन शब्दों से प्रतिमा को अपनी आंखों के सामने एक दूसरा ही चित्र दिखाई देने लगा। अपने बंगले पर मोटर पहुंचने तक वह उन्हीं चित्रों के बीच खोई रही।

नागपुर आने पर प्रसन्न आठ-दस दिन के लिए रामटेक चला गया।

...

...

...

प्रतिमा ने दीक्षित का लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ना आरंभ किया। पत्र के शब्दों पर प्रतिमा की निगाह दौड़ रही थी, उसका मन बेचैन हो रहा था, आंखें बार-बार गीली हो रही थीं। जिसने बकुल का जीवन-नाटक बिल्कुल समीप से देखा था और जो उस नाटक का महत्वपूर्ण पात्र था, उस अनंत दीक्षित द्वारा लिखा गया वह पत्र था। कितना विलक्षण था वह नाटक! जितना सुंदर, उतना ही भीषण। जितना महान, उतना ही कष्ट। जितना कोमल, उतना ही भयावह। उस नाटक को देखकर प्रतिमा विस्मित रह गई थी। पत्र पढ़ना समाप्त होते-होते उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई।

दीक्षित ने जो लिखा था, उसमें कहीं भी भावनाओं का तूफान न था। प्रतिमा ने बड़ी तन्मयता से उसे पढ़ा। उस कथा के आधार पर प्रतिमा ने बड़ा ही भावपूर्ण चित्र खींचा।

“अण्णा, अण्णा, आप मुझे भूल तो नहीं जायेंगे ? आपको बार-बार मेरी याद आती रहेगी न ?” —अपने पिता के सीने पर सिर रखे हुए बकुल सिसकियों के बीच कहने लगी । वह बोल भी रही थी, रो भी रही थी । बचपन में मां-बाप की छाया में बड़ी हुई लड़की को विवाह के बाद जब दूसरे के घर में प्रवेश करना पड़ता है, अपने प्यारे मां-बाप को छोड़कर जाना पड़ता है और नई गृहस्थी जुटानी पड़ती है, उस समय उसकी आंखों से इसी प्रकार गंगा-यमुना बहने लगती है । विवाह को वह भिन्न-भिन्न भावनाओं की दृष्टि से देखती है, लेकिन जब उसे अपने चिर-परिचित परिवार से बिदा होने का अवसर आता है तब ये भावनाएं गल जाती हैं और इस विचार से कि अब वह नये परिवार से नाता जोड़ रही है, जिसे पहले कभी देखा भी नहीं, उसे अपना पति मानकर उसके साथ में अपना जीवन बिताने जा रही है, उसके हृदय में कुछ दूसरे ही प्रकार के विचारों का उदय होता है ।

बकुल इसका अपवाद न थी । अण्णासाहब की वह इकलौती बेटी थी । एक राजकुमारी की तरह लाड़-प्यार में पली थी । विवाह के समय उसने सोलहवें वर्ष में पदार्पण किया था । विवाह के बाद वह ससुराल जा रही थी । अपने अण्णा से दूर हो रही थी । उनकी छाया से अलग हट रही थी । उसे बुरा लग रहा था, दुःख हो रहा था । इसी अवस्था में उपरोक्त उद्गार उसके मुख से निकले थे ।

प्रेम और वात्सल्य से पोषित बेटी को ससुराल भेजते समय किसी भी पिता की आंखें गीली हुए बिना नहीं रहतीं, भले ही वह कितने ही कड़े दिल का क्यों न हो । अण्णासाहब बड़े दृढ़ और गंभीर स्वभाव के थे, पर उस अवसर पर उनका हृदय उमड़ आया । वे अपनी बेटी के बालों पर और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे । उनकी आंखें छोटे बच्चे की तरह टप-टप आंसू गिरा रही थीं । उसी अधीर अवस्था में उन्होंने कहा, “बेटी, क्या बाप कभी अपनी बेटी को भूल सकता है ? भगवान ने मनुष्य को प्रेम और

वात्सल्य भूल जाने के लिए नहीं दिये हैं, उनकी स्मृति सदा जीवित रहती है ।

“बेटी, मैंने तुझे जो गीता दी है, ससुराल जाने पर उसके एक-एक अध्याय का नियमित रूप से पाठ करती रहना । तेरा कल्याण होगा । मेरी बेटी बड़ी भाग्यशालिनी है...”

अण्णा ने बकुल से अनेक भावनात्मक बातें कहीं, जिन्हें बकुल ने मन से सुना । लेकिन इस विचार से कि एक अपरिचित मनुष्य का सहारा स्वीकार करके एक अनजाने स्थान में उसे अपने जीवन का नया पृष्ठ खोलना होगा, बकुल का दिल कुछ भारी हो आया । उसे लगता था कि वह अण्णा को छोड़कर कहीं न जाय । लेकिन यह कैसे संभव था ? स्नेह-भरे घर की देहलीज को पार करके बाहर जाना जितना अपरिहार्य था, उसी तरह ससुराल की देहलीज को पार करके भीतर जाना भी अटल था । सिसकियों के बीच बकुल ने अण्णा के चरण छुये और पास खड़े मामा-मामी की ओर देखा । उसकी ममेरी बहन वसुधा की आंखों से आंसू बह रहे थे । उसे रोते देखकर बकुल की सिसकियां और बढ़ गई । अन्त में मन को बंधन में रखकर, उसने अपने घर में चतुर्दिक् एक निगाह दौड़ाई और मन भर वजन की बेड़ियां पहने हुए कैदी की गति से वह सामने खड़ी मोटर की ओर गई । उसके पति उसकी बाट जोहते खड़े थे । उन्हें बहुत-से रिश्तेदार घेरे हुए थे । बापूसाहब की चचेरी मौसी ताई भी खड़ी थीं । बकुल मोटर में आकर बठ गई । पास में पति बैठे । ड्राइवर ने मोटर चलाई । बिदा होने से पहले बकुल ने अपने प्रियजनों को एक बार फिर देखा । तबतक मोटर आगे बढ़ चली और बात-की-बात में वह धनतली से निकलकर, सीताबर्डी का चौराहा पार करती हुई स्टेशन-रोड की ओर मुड़ी और रेल के पुल के नीचे से भीड़ को चीर शुक्रवार तालाब के किनारे-किनारे, शहर में आई । बहुत-से आड़े-टेढ़े और तंग मोड़ लेने के बाद वह एक विशाल कोठी के सामने जाकर खड़ी हो गई ।

नई बहू के आगमन की सब प्रतीक्षा कर रहे थे । उसके स्वागत की पूरी तैयारियां थीं । कार से पहले बापूसाहब उतरे । उनके पीछे बकुल उतरी । उन दोनों के द्वार पर आते ही एक स्त्री ने हाथ का कलश उनपर से उतारा । दूसरी ने उनपर दही-भात निछावर कर एक ओर फेंक दिया ।

नये घर के भव्य और बड़े दरवाजे से बापूसाहबके पीछे-पीछे बकुल भीतर गई। पता नहीं, क्यों उसका मन उस बड़े घर को देखकर कुछ भयभीत-सा हो उठा। कोठी की ऊंची-ऊंची दीवारें उसे किसी कारागृह की तरह प्रतीत हुईं। उसी प्रकार वह दरवाजा, जिसमें लोहे की बड़ी-बड़ी कीलें ठुकी थीं, उसे किसी जेल के दरवाजे की तरह डरावना मालूम हुआ। उसने वहांपर एकत्र लोगों पर एक सहमी दृष्टि डाली, लेकिन किसीके भी चेहरे पर उसे आत्मीयता के भाव दिखाई नहीं दिये। फिर उसने तनिक लजाते हुए अपने पति की ओर देखा। वे उसीकी ओर देख रहे थे, मानों उनकी आंखें उसके निर्मल सौन्दर्य का पान कर रही हो। दोनों की निगाहें मिलते ही बकुल के मन में पति के प्रति अनेक आशाएं और आकांक्षाएं उमड़ पड़ीं। भीतर से जैसे कोई बोल उठा, “ये तेरे पतिदेव हैं। अब तू इनके साथ अपनी गृहस्थी सजावेगी। तेरी जिंदगी का नया अध्याय आज से शुरू हो गया है। अब तू अण्णा की नहीं रही, बल्कि जिससे तेरी जान-पहचान भी न थी और जिसे तूने कभी देखा तक न था उसकी भार्या है। समझी ?”

उसकी आंखों में स्वप्निल चित्र लहरा उठे। लेकिन पति की आंखों में क्या है, इसका वह पूरा अनुमान कर ही रही थी कि तभी दो नौकर रबड़ के पहियों की एक गाड़ी खींचते हुए वहां लाये। उस गाड़ी में दमे की बीमारी से बहुत ही शिथिल एक व्यक्ति था। उसके बाल पके हुए थे। उसके शरीर पर एक गरम शाल लिपटा हुआ था। यह थे बापूसाहब के पिता आबासाहब, जिन्हें वह दुबारा देख रही थी। पहली बार उन्हें तब देखा था जब वह अपनी भावी पुत्र-बधू को देखने अण्णा के घर आये थे। उस समय बकुल के हृदय में उनके प्रति कुछ भय-सा पैदा हुआ था, लेकिन अब वह भय एकाएक जाता रहा। अब उसे आबासाहब की आंखों में स्नेह, वात्सल्य और आत्मीयता दिखाई दी। बापूसाहब ने आबासाहब को झुककर प्रणाम किया। बकुल ने भी किया। बकुल की पीठ पर हाथ फेरते हुए आबासाहब ने आशीर्वाद दिया, “अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भवे !” फिर बोले, “बहूराणी, यह घर तुम्हारा है। इस घर को पराया न समझना। इसमें की हर चीज़ तुम्हारी है। यहां के सब लोग तुम्हारे हैं, तुम सबकी हो।”

आबासाहब के स्वर की आत्मीयता ने बकुल को आनंदमग्न कर

दिया। जिस घर में उसने बहू के रूप में प्रवेश किया, वह सचमुच बहुत बड़ा था। उसमें नौकर-चाकर भी बहुत थे। आबासाहब की बहू को देखने के लिए खदानों के बहुत-से लोग वहां आये हुए थे। इसलिए वहां खूब चहल-पहल थी। कोठी की निचली मंजिल के कमरों में कुछ अंधेरा था। दूसरी मंजिल के कमरों में हवा और प्रकाश दोनों भरपूर थे। पूर्व की ओर के चार-पांच कमरे बकुल के उपयोग के लिए दिये गए थे। उन कमरों से सटे बापूसाहब के कमरे थे। भौंसले के शासन-काल में यह कोठी बापूसाहब के परदादा को इनाम में मिली थी। उस जमाने में अनेक हाथी और घोड़े उनकी सेवा में यहां बंधे रहा करते थे। आज वह शान चाहे न रही हो, फिर भी उसके चिह्न-स्वरूप कोठी के पिछवाड़े की अश्वशाला और खाली पड़ा हुआ हाथीखाना बकुल ने देखे।

बापूसाहब की मां के स्वर्गवास के बाद ताई (बापूसाहब की चचेरी मौसी) घर का सारा काम देखती थीं। उनका जीवन बहुत ही दुखी और करुणाजनक था। ताई ने जब नवें वर्ष में पदार्पण किया, तभी उनका विवाह होगया था। लहंगा पहननेवाली ताई साड़ी पहननेवाली बनी^१। उसकी उम्र इतनी छोटी और कच्ची थी कि वह विवाह का अर्थ भी ठीक से न समझ पाई और गृहस्थी का अस्पष्ट-सा भी रंग मन में बहीं उभर पाया। भाग्य की भी ताई पर विशेष कृपा नहीं रही। विवाह के तीन-चार साल बाद ही उनके पति ने उनका परित्यागकर दूसरा विवाह कर लिया। ताई के जीवन पर इस तरह दुर्भाग्य का पर्दा पड़ गया। गृहस्थी बनाने का उनका चित्र एकाएक धूमिल हो गया। चार लोगों की तरह यह कहने का सद्भाग्य कि गृहस्थी एक वाटिका होती है और अपने बाल-बच्चे उसमें विकसित होनेवाले फूलों की तरह होते हैं, उसे प्राप्त न हुआ। उसका जीवन एक भयानक रेगिस्तान की तरह हो गया। लेकिन भाग्य सदा एक-सा नहीं रहता। ताई के भाग्य ने भी पलटा खाया। बापूसाहब की मां के

^१ महाराष्ट्र में उस समय बाल-विवाह की प्रथा थी। लड़की की दस वर्ष की उम्र में ही शादी हो जाया करती थी। विवाह के पूर्व लहंगा पहननेवाली लड़की विवाह होते ही साड़ी पहनने लगती थी।

कोई-न-कोई रोग घेरे रहता था। वे प्रायः बिस्तर पर ही पड़ी रहतीं। घर का काम सम्हालना उनके लिए असंभव-सा था। यह देखकर आबासाहब ताई को अपने घर ले आये और कोठी का सारा भार उनके सुपुर्द कर दिया। उस भार को ताई ने बड़ी खुशी से वहन किया।

कोठी में बकुल के लिए ताई आदि सभी नये थे। उनसे उसे बहुत सीखना था। उनका प्रेम, विश्वास और आदर प्राप्त करना था। नये घर में रहने पर उसने घर की कितनी ही बातें बारीकी से देखीं। वहां के वैभव से उसकी आंखें जरूर चौंधिया गई थीं, लेकिन कुछ बातें ऐसी भी थीं, जिन्हें देखकर वह स्तंभित हो गई थी। उसका मन सशंकित हो उठा था। उसने अपने-आपसे पूछा, “इस कोठी में रहनेवालों के मन भी क्या इस कोठी की तरह ही सात तहखानेवाले हैं—नये, पुराने, भले, बुरे, अद्भुत, भयानक और सनकी ?”

बकुल की यह शंका धीरे-धीरे सच निकलने लगी। जुलाई का महीना था। दोपहर के तीन बजे थे, फिर भी आसमान में काले-काले बादलों के कारण सर्वत्र अंधेरा-सा छा रहा था। सांय-सांय हवा चल रही थी। कभी-कभी बिजली भी चमक जाती थी, फिर वर्षा की झड़ी लग गई। गरमी से जली-भुनी धरती पर वरुण देव ने मुक्तहस्त से जल के कलश उंडेले और धरती किसी लालची की तरह वह जल पीकर तृप्त हो गई। वरुण की यह दानलीला खिड़की के सामने खड़ी होकर बकुल एकाग्रता से देख रही थी। मेघ-खंड जल्दी-जल्दी आगे बढ़ रहे थे और हवा की पालकी में बैठकर मनमाने घूम रहे थे। बिजली की कड़क दशों दिशाओं को प्रकंपित कर रही थी। मालूम होता था, मानों प्रकृति अबतक की भीषण गरमी के चिह्न तक को मिटाने के लिए तुल गई थी। निसर्ग के निर्मल सौंदर्य की ओर देखती हुई बकुल अपने-आपसे बोली, “ऐसा तृप्तिदायी वरुण क्या केवल पृथ्वी के ही भाग्य में है? वह इतना स्नेह दिखाकर पृथ्वी को साहस प्रदान करता है। फिर मनुष्य को ऐसा स्नेह और साहस क्यों नहीं देता ?”

बकुल के इस कथन में बहुत-कुछ सचाई थी। जिस कोठी में वह बहू बनकर आई और रहने लगी, उस कोठी में उस समय उसने अपने जीवन और गृहस्थी-संबंधी अनेक चित्र अपने मन में चित्रित किये थे। उन्हें अंकित

करते समय उसने जिन रंगों का उपयोग किया था, वे भड़कीले नहीं थे। इसके विपरीत उस रंग-योजना में एक अपूर्व संगति थी और थी अभिनव कल्पना। लेकिन यह कल्पना निरी कल्पना ही सिद्ध होने लगी। ताई ने जब उसे कोठी दिखाई तब कुछ समय तक उसे उसमें वैभव दिखाई दिया था, पर कहीं-कहीं उसकी मनःस्थिति आशंकित और भयाकुल हो गई थी और उसने अपने-आपसे यह शंका प्रदर्शित की थी—“इस कोठी में रहनेवाले मनुष्यों के मन भी कहीं इस कोठी की तरह ‘सात तहखाने’ न हों !”

बकुल खिड़की के सामने खड़ी बाहर हो रही वर्षा को देख रही थी। एक गहरी सांस खींचकर उसने अपने-आपसे कहा था, “हां बकुल, तेरी आशंका सच ही निकली। इस कोठी की तरह यहां रहनेवाले मनुष्यों के मन के भी सात तहखाने हैं। जो स्वतंत्रता तुझे अण्णा के घर मिली थी, वह यहां नहीं मिलने की। तुझे यहां बंधन में रहना पड़ेगा।”

खिड़की से पानी की बौछार आ रही थी और उससे बकुल की साड़ी भीग गई थी, पर वह इतनी विचारमग्न थी कि उस ओर उसका ध्यान ही न था। तभी अचानक गिरजा ने कहा, “बाईसाहब, यहां क्यों खड़ी हैं? देखिये, पानी से आपकी साड़ी भीग गई है। यदि ताई ने देख लिया तो...”

नौकरानी से यह सुनते ही बकुल चौंक पड़ी।

“क्या कहा तुमने?” उसने गिरजा की ओर देखा। उस समय बकुल की ऐसी मनःस्थिति थी कहां, जो नौकरानी के शब्दों को स्पष्ट रूप से सुन पाती !

गिरजा ने अपनी बात फिर दोहरा दी। लेकिन इस बार पूरा वाक्य न बोलकर संकेतमात्र करके वह चुप हो गई। बकुल के कोठी में आने से पहले से ही यह नौकरानी वहां काम करती थी। इसलिए ताई के स्वभाव से वह भली-भांति परिचित थी।

देशमुख के घर में आये बकुल को डेढ़ वर्ष हो गया था, फिर भी उसे ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी जेल में हो। हर क्षण उसे लगता था कि उसमें और कोठी के हर व्यक्ति में बहुत अंतर है। इतने दिनों से इस कोठी में रहते हुए भी बकुल की किसीसे भी घनिष्ठता नहीं हो पाई थी।

कोशिश करने पर भी वह उन व्यक्तियों को नहीं समझ पाई थी। वह ज्यों-ज्यों उन्हें समझने की कोशिश करती थी, उसे लगता था कि उन लोगों के भीतर गांठ है और वे अहंकारी हैं। हर व्यक्ति बकुल से इने-गिने शब्दों में काम-काजी बातें करता था। भावना के साथ कोई भी व्यवहार नहीं करता था। ताई कभी तो अच्छी तरह बोलती, लेकिन कभी-कभी बहुत ही चिढ़कर बर्ताव करतीं। उनके हर काम पर तानाशाही का आवरण चढ़ा रहता था। अण्णासाहब के लाड़-प्यार और वात्सल्य में पोषित बकुल बहुत-सी बातें नहीं जानती थी। लेकिन यह उसका अपराध न था। ऐसे समय बकुल यह आशा करती थी कि ताई उसे प्रेमपूर्वक समझाकर बतायें। इस भावना से कि दमा से पीड़ित अपने ससुर की कुछ सेवा-सुश्रूषा करे, बकुल बार-बार उनके कमरे में जाया करती और उनके बिस्तर की चद्दर अपने हाथ से बदल देती या और कुछ कर देती। लेकिन न जाने ताई को इसमें उसका क्या दोष दिखाई देता।

एक दिन वे बोलीं, “बकुल, बताओ हमारे घर में कुल कितने नौकर हैं?”

ताई के शब्दों में जो व्यंग था, उसे बकुल न समझ पाई। उसने सहमकर उत्तर दिया, “बहुत-से हैं।”

“तो उनमें से किसी भी नौकर को ऐसे काम करने को कह देना चाहिए। वैसे यदि तुम स्वयं भी ऐसे कामों को करो तो कुछ बिगड़नेवाला नहीं है, लेकिन बहू की अपनी मर्यादा होती है और उसे अपनी प्रतिष्ठा रखनी चाहिए।”

बकुल ने दुखित होकर उत्तर दिया, “वे मेरे अण्णा की तरह हैं। मैंने इसी प्रकार अण्णा की भी सेवा की होती।”

उसके इस उत्तर में अपमान न था, बल्कि गहरा आत्मीय भाव था। वह यह कहना चाहती थी कि मेरी निगाह में मेरे अण्णा में और मेरे ससुर में कोई अंतर नहीं है। यह घर मेरा है। यह गृहस्थी मेरी है। इसमें रहने-वाले जन मेरे हैं और इसलिए उनकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

लेकिन कर्तव्य की यह निष्पाप और निष्कलंक भावना ताई के मस्तिष्क में नहीं आ सकती थी और न उन्होंने उसे समझने की कोशिश ही

की। उन्होंने बकुल को आपादमस्तक देखते हुए धीरे-से कहा, “बड़ी गुण-वती हो तुम, इसमें संदेह नहीं ! लेकिन जब पिता के सामने जाना हो तो सिर को आंचल से ढंककर जाना चाहिए ? क्यों, है न ?”

ताई का यह अंतिम वचन बकुल के हृदय में शूल की तरह चुभ गया। उसे मालूम हो गया कि ताई का मन सचमुच ‘सात तहखानेवाला’ है। आबासाहब बीमारी से बहुत ही क्षीण हो गये थे। उनका स्वभाव भी बहुत चिड़चिड़ा हो गया था। उनकी फीकी आंखों से बकुल को हमेशा भय लगा करता था। घर के नौकर तो उनसे थरथर कांपते रहते थे। गिरजा ने उनके क्रोध की कितनी ही बातें बकुल को सुनाई थीं। हिरन के पैर की मूठवाले चमड़े के चाबुक से उन्होंने कितनी बार नौकरों और खदानों के मजदूरों की पीठ की क्रोधावेश में जो खबर ली थी, उसका वर्णन सुनकर बकुल के हृदय में एक प्रकार का भय समा गया था। उसका मन अण्णा से उनकी तुलना करता था। अण्णा तो किसीपर नाराज़ नहीं होते थे। क्या मज़ाल कि कोई कड़ा शब्द भी उनके मुंह से निकल जाय ! ऐसे भावुक पिता की छाया में बकुल बड़ी हुई थी।

उसके जीवन का एकमात्र सुख बापूसाहब थे। उनका रोबदार शरीर और गौर वर्ण उसे प्रिय लगता था। उनकी निगाह बचाकर वह उनके सौंदर्य को निहारा करती थी और उसपर मोहित हो जाती थी। उनकी सीधी नासिका को शोभा देनेवाला प्रशस्त ललाट, गहरे लाल रंग के होंठ और बड़ी-बड़ी तेजस्वी आंखें देखकर उसके मन में आता कि वह सीधी उनके पास जाय और उनके पुष्ट सीने पर अपना मस्तक रखकर उनकी आंखों में आंखें डालकर कहे, “आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। लगता है, निरंतर आपकी ओर ही ताकती रहूं और क्षण-भर के लिए भी आपसे दूर न होऊं।” लेकिन बकुल का यह उत्कट भाव समझने के लिए बापूसाहब कहां सक्षम थे ! इस कारण उसके विचार मन में ही उमड़-धुमड़कर रह जाते थे। कभी-कभी वह उनकी निगाह से डर जाती थी, कारण कि उनके नेत्रों की रचना ठीक आबासाहब के नेत्रों जैसी थी। आबासाहब की तरह उनकी आंखों में भी कठोरता उमड़ती दिखाई देती थी।

वास्तव में बापूसाहब ने बकुल के साथ कभी कठोरतापूर्ण व्यवहार नहीं

किया था और न वे ऐसा बर्ताव कभी करते ही थे, लेकिन यह भी सच है कि वे उससे दिल खोलकर बात नहीं करते थे। बकुल चाहती थी कि वह हमेशा उसके पास रहें, घंटों उससे बातें करें, हँसें, उसे हँसायें और उसके पास आकर उससे कहें, “कितनी सुंदर है मेरी बकुल !” लेकिन इतना तरल प्रेम बकुल को न मिलना था, न मिला। बापूसाहब की उस विमुखता पर उसे हमेशा आश्चर्य हुआ करता था। एक प्रकार की चिन्ता उसके मन को चुभती रहती। वह अपने-आपसे कहती, “उनके इस तरह के रूखे बर्ताव का क्या कारण है ?” क्या वह बापूसाहब को पसंद नहीं है ? लेकिन नहीं, ऐसी बात न थी, क्योंकि उसका सौंदर्य ही कुछ ऐसा था। यद्यपि बापूसाहब उसके साथ अलिप्तता का बर्ताव करते थे, तथापि उनके बर्ताव में नापसंदगी न थी। इसके विपरीत बकुल को किसी बात की कमी न रहे, इसका वे बड़ा ध्यान रखते थे। बकुल के लिए उन्होंने नई कार खरीदी। उसमें वे उसे दूर घुमाने ले जाया करते थे। इन बातों से बकुल का आनंद उसके हृदय में नहीं समाता था। जब वह पति के साथ कार में बैठकर घूमने जाती, तब वह उनसे एक नहीं, दो नहीं, अनेक विषयों पर बातें करने का प्रयत्न करती। बीच-बीच में उनका हाथ अपने हाथ में लेकर प्रेमालाप भी करना चाहती। लेकिन उसकी इन कोशिशों को बापूसाहब की तरफ से विशेष प्रोत्साहन न मिलता। जब वह तनिक गर्दन टेढ़ी करके पूछती, “देखिये, हवा कितनी सुंदर है,” तो बापूसाहब मोटर के चक्के पर अपना हाथ ज्यों-का-त्यों रखे रहते और सामनेवाले कांच में से सड़क की ओर देखते हुए कहते—“हां !” वर्षा की झड़ी लगते ही जैसे मोर अपने पंखों को फैलाकर आनंद से विभोर होकर नृत्य करने लगता है, उसी तरह बापूसाहब के सान्निध्य में बकुल का मन स्वप्नमय कल्पनाओं से नाच उठता, उसके शरीर का एक-एक रोम जाग्रत हो जाता। उनके मुंह से ‘बकुल’ नाम का संबोधन सुनने के लिए उसका मन अधीर हो उठता। पर प्रेम का जितना खिंचाव और जितनी उत्सुकता बकुल को अनुभव होती थी, उतनी उसे बापूसाहब में नहीं दिखाई देती थी।

उनके संयम को देखकर बकुल का मन जैसे मर जाता था। उसके मन में उभरी हुई भावना सूख जाती थी। बापूसाहब के व्यक्तित्व से एकरूप

होकर सुखी जीवन व्यतीत करने के उसके सपने काफूर हो जाते थे। वह अपने मन से पूछा करती, “मेरे हृदय की भूख और पुकार क्या इन्हें कभी नहीं सुनाई देगी? एक मामूली सीमा के परे क्या ये मुझे कभी नहीं पहचानेंगे?” इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए उसने भांति-भांति के प्रयत्न किये। रात को बापूसाहब उसके शयनागार में आते तो वह अपनी मांसल भुजाओं पर धीरे-से उनका सिर रख लिया करती। उनके काले बालों में आहिस्ते-आहिस्ते अपनी कोमल अंगुलियां फिराती। खिड़की से भीतर भांकती चन्द्र-ज्योत्स्ना में पति की चमकती आंखें देखकर मोहित हो जाती, फिर उन नेत्रों पर धीरे-से होठ रखती हुई कहती, “मुझ वचन दीजिये!”

“कैसा?”

“यह कि आप मुझे कभी भी अपने से दूर न करेंगे।”

यह सुनते ही स्मिति की एक रेखा पति के होठों पर खिंच जाती। वे कहते, “बकुल, तुम पगली हो!”

उनके इस नीरस उत्तर से बकुल का हृदय निराश हो जाता। थोड़ी देर रुककर वह फिर पूछती, “सच बताओ, क्या मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती? लगती हूं, तो मुझे आप अपना प्यार क्यों नहीं देते?”

इतना कहते-कहते बकुल की आंखों में आंसू भर आते। पति उन्हें हाथ से पोंछ देते, लेकिन उनके मुंह से एक शब्द भी न निकलता। धीरे-धीरे बकुल का मन एकदम बुझ गया।

“छोड़िये न ? मैं कहती हूँ, छोड़ दीजिये मुझे ! यह कोई समय है मेरे कमरे में आने का ? अगर कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?”

“क्या कहेगा ? सब जानते हैं कि मैं तुम्हारा पति हूँ । बाहर मूसला-धार वर्षा हो रही है, और तुम कहती हो छोड़ दूँ । पगली हो तुम !” कहकर बापूसाहब ने बकुल को कसकर अपनी भुजाओं में भर लिया । जिस प्रकार प्राण जला देनेवाली गरमी के समाप्त होते ही वर्षा की झड़ियों से धरती की भूख तृप्त हो जाती है, बकुल की कुछ वैसी ही हालत हुई । बापूसाहब के गले में अपनी बाहों को लपेटकर, उनके सीने को अपने सिर से आहिस्ते-आहिस्ते सहलाते हुए उसने बड़े ही धीमे स्वर में पूछा, “मैं जाग रही हूँ या स्वप्न देख रही हूँ ?”

अचानक बकुल की आंख खुल गई । उसने खिड़की के बाहर देखा । सुबह के छः बजे थे । बाहर जोरों की वर्षा हो रही थी । सारे वातवरण में जैसे कोहरा-सा छा गया था । हवा में सरदी बढ़ गई थी । बकुल उठकर पलंग पर बैठ गई । वह अकेली थी । नजदीकवाला बापूसाहब का पलंग खाली था । उसकी ओर देखकर वह व्यथित हो उठी । कुछ समय पहले उसे जो सुखद अनुभूति हुई थी, उसकी उसे याद आने लगी । एक ठंडी सांस भरकर उसने देखा कि अभी क्षणभर पहले पति के आलिङ्गन का जो सुख हुआ था, वह एक स्वप्न मात्र था !

जिन स्वप्नों की मनुष्य जाग्रत अवस्था में कामना करता है, किंतु जो कभी साकार नहीं होते, वे कभी-कभी रात को चुपचाप आकर उसे गुदगुदा जाते हैं । बकुल का सुख भी अब रात के उन्हीं क्षणों में सीमित हो गया था । बकुल के बचपन को देखते उसकी सुख की कल्पनाएं बिल्कुल उचित थीं । वह अपने पिता की इकलौती लड़की थी, वह उन्हें प्राणों की तरह प्यारी थी । इतना होने पर भी पिता ने उसे व्यर्थ लाड़ में नहीं बिगड़ने दिया था । उसका लालन-पालन बड़ी सावधानी से हुआ था । वास्तव में

अण्णासाहब पुराने ढंग के व्यक्ति थे, लेकिन उन्हें पुराणपंथी नहीं कहा जा सकता था। वे नियमित रूप से पूजा-पाठ किया करते थे। योगासनों में उनकी बड़ी रुचि थी। गीता तो उनका अत्यन्त प्रिय ग्रंथ था। उनके घर कोई आता, तो बातचीत में वे किसी-न-किसी तरह गीता पर आ जाते और फिर 'निष्काम कर्मयोग' के विषय को लेकर उनकी वाणी किसी महानद की तरह वेग से प्रवाहित होने लगती। अपने इस ज्ञान का लाभ उन्होंने अपनी पुत्री को भी दिया था। पूजा-पाठ के प्रेमी और गीता के भक्त होते हुए भी पिता ने बकुल को पढ़ने के लिए कन्वेंट जैसी शाला में भरती किया था। अण्णासाहब बहुत सम्पन्न व्यक्ति नहीं थे, फिर भी उन्होंने बकुल के जन्मजात गुणों को विकास का अवसर देने के लिए शिक्षा पर होनेवाले भारी व्यय से कभी हाथ न रोका था।

कन्वेंट में बकुल यूरोपियन नन्स की बड़ी प्रिय विद्यार्थिनी थी। उसकी कक्षा की ईसाई, यूरोपियन और एंग्लो-इंडियन लड़कियां उसके रूप को देखकर मन-ही-मन ईर्ष्या करती थीं। कन्वेंट में शिक्षा प्राप्त करने के कारण वह अन्य महाराष्ट्रीय लड़कियों से कुछ भिन्न लगती थी। उसके आचार-विचार में एक विशेष शालीनता थी। उसमें दूरदृष्टि थी, बुद्धि का ओज था। उतनी ही वह निष्कपट थी। उसके रहन-सहन का ढंग आसपास के लोगों में, विशेषकर स्त्रियों में, चर्चा का विषय रहता था।

सुबह पांच बजे अण्णासाहब अपने पूजा-पाठ से निवृत्त होकर बकुल से गीता का एक अध्याय सुना करते थे और उस अध्याय के श्लोकों का बड़े सरल शब्दों में अर्थ समझाया करते थे। इस प्रकार गीता का प्रकाश-दीप उन्होंने उसके हाथ में दे दिया था।

आबासाहब ने उसके गुणों के कारण ही बड़े आनंद से उसे अपनी बहू बनाना स्वीकार किया था। ऐसी सुशिक्षित बकुल के ललाट पर सम्पन्नता की झलक दिखाई देती थी, लेकिन दुर्भाग्य से उस संपन्नता के आगे गार्हस्थ्य सुख के विषय में दो शब्द भी नियति ने नहीं लिखे थे।

बकुल ने उठकर खिड़की के बाहर देखा और वहां खड़े-खड़े ही उसने अपनी ढाई साल की गृहस्थी का विवेचन कर डाला। उसे अपने-आपमें कितना परिवर्तन कर लेना पड़ा है ! बदली हुई परिस्थिति के अनुसार उसके

विचार बदले, रहन-सहन में भी हेरफेर हुआ। उसका सिर हमेशा आंचल से ढका रहने लगा। जब उसे आबासाहब या बापूसाहब से मिलने जाना होता तो पहले उन्हें सूचना भेजकर उनकी अनुमति प्राप्त करनी पड़ती। परदानशीन औरतों की तरह दिन-रात घूँघट डाले रहने की पाबंदी उसके लिए नहीं थी, फिर भी उसे यह स्वीकार कर लेना पड़ा था कि देशमुख की बहू को चार आदमियों के सामने सहसा नहीं जाना चाहिए। इस तरह एक नहीं, अनेक रीति-रिवाजों का पालन उसने बिना किसी शिकायत के शुरू कर दिया था।

इन बातों से बकुल को असुविधा जरूर हुई, पर उसने बुरा न माना। लेकिन उसे दुःख होता था पति के बर्ताव पर और उनके स्वभाव पर। उसे बापू-साहब के साथ की चाह थी। उनके सुखद स्पर्श और प्रेम-भरे शब्दों के लिए वह लालायित रहती थी। वह स्वयं पति को बेहद प्यार करती थी। लेकिन उसका प्रत्युत्तर न मिलने के कारण उसे परायेपन का बोध होने लगता था, मानों उन दोनों के बीच कोई दीवार खड़ी हो। एक साँचे में ढला बर्ताव और एक साँचे में ढली बातें, जैसे किसी नाटक के पात्र अपने-अपने पार्ट रटकर नाटक करते हैं। बकुल के जीवन-रूपी नाटक के रंग दिन-प्रतिदिन फीके पड़ने लगे। सच तो यह था कि बकुल पति का साहचर्य चाहती थी। निरी पत्नी होने के बदले, उसे पति की अत्यंत प्रिय मित्र बनने की चाह थी, लेकिन यही बात उसे पति से नहीं मिल रही थी। इसके विपरीत दिन-ब-दिन वह उनसे डरने लगी थी। उनके अबोल और अलिप्त सहवास के कारण उसके मन में बड़ी घुटन रहती थी। खिड़की के पास खड़े-खड़े बकुल की दृष्टि पति के पलंग पर गई। देखती क्या है कि रात को उनके बिस्तर पर जो चादर बिछाई गई थी वह ज्यों-की-त्यों बिछी थी, उसमें कहीं एक सिकुड़न भी नहीं आई थी। पैताने रखे कम्बल की तह भी नहीं खुली थी।

पानी का जोर पहले से अधिक बढ़ गया था। काले-काले बादल तेजी से भागे जा रहे थे। वृक्षों की डालियां जोर से हिल रही थीं। बिजली की कड़क से सारा वातावरण प्रकंपित हो रहा था। अचानक बकुल को लगा कि पति अपने पलंग पर बैठे हुए हैं। उसने कहा, “वाह क्या खूब !

जरा बाहर देखिये, कैसा मूसलाधार पानी पड़ रहा है। यह क्या, आप सिर्फ एक कुरता ही पहने बैठे हैं। लीजिये, यह स्वेटर पहन लीजिये और यह मफलर कानों पर लपेट लीजिये। लीजिये...अरे लीजिये...पर सच बड़े हठीले हैं आप ! बिल्कुल छोटे बच्चे की तरह हो रहे हैं। ठीक तो है, विवाहित पुरुष जबतक बाप नहीं बन जाते, बच्चे की तरह ही रहते हैं। अच्छा, ऐसी बात है तो बच्चे की तरह रोकर बताइये न !”

बकुल कहने को यह सब कह तो गई; लेकिन तभी स्वप्न टूट गया और अपनी मूर्खता पर वह हँस पड़ी।

पिछले तीन-चार दिनों से आबासाहब का स्वास्थ्य कुछ अधिक खराब हो गया था। मौसम बदल जाने से उनकी दमा की बीमारी ने विशेष जोर पकड़ लिया था। जब उन्हें खांसी का दौर आता तो कम-से-कम आध घंटे तक रुकने का नाम न लेता। इस कारण आबासाहब को बड़ी वेदना हो रही थी। कमजोरी भी बहुत अनुभव होने लगी थी। दो दिन पहले बकुल जाकर उन्हें देख आई थी। उस समय कितने जोर-जोर से उनकी सांस चलती थी ! उनकी आंखों पर शिथिलता छापी हुई थी। वे कराह रहे थे। विवाह के बाद बकुल ने इस कोठी में बहू के रूप में जब प्रवेश किया था, उस समय के आबासाहब में और फैशन के नक्काशीदार शीशम के पलंग पर क्रुश होकर पड़े हुए इस समय के आबासाहब में जमीन-आसमान का अंतर था।

आबासाहब को क्षीण देखकर बकुल को बड़े जोर का धक्का लगा था। सांस लेने में उन्हें जो यातना हो रही थी, उसे देखकर तो वह बिल्कुल घबड़ा गई थी। उनकी परिचर्या के लिए रखी गई नर्स ने उसे घबड़ाया देखकर कहा था, “बीमार के पास ज्यादा देर नहीं ठहरना चाहिए। आप अब चली जायें। बीमार को बात करने की इच्छा होती है। बात करने से कमजोरी आती है। आप बिल्कुल न घबड़ाइये। दमा के कारण उनकी ऐसी दशा हो रही है। ये जल्दी ही ठीक हो जायेंगे।” नर्स के इन शब्दों से बकुल को बड़ा अच्छा लगा था।

आबासाहब का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण पिछले सप्ताह से कोठी में एक अजीब-सी निस्तब्धता व्याप्त थी। सारे काम पूर्ववत् चल रहे थे, पर उनके पीछे उत्साह नाममात्र को भी न था। बापूसाहब के पास मैंगनीज की

खानों के मँनेजर, कारकून, दीवानजी आदि आते-जाते रहते थे। और भी बड़े-बड़े लोग आते थे। चाय या खाने पर अक्सर लोग निमंत्रित किये जाते थे। उनकी मेहमानदारी में बड़ी दौड़-धूप हुआ करती थी, लेकिन आबासाहब की बीमारी के जोर पकड़ने के कारण यह चहल-पहल एकदम खत्म हो गई थी और एक बड़ी अजीब-सी और मन में भांति-भांति के विचार पैदा करनेवाली स्तब्धता निर्मित होगई थी। दिन काफी चढ़ गया था, फिर भी वर्षा का जोर कम होने के बजाय अधिक बढ़ रहा था। इस कारण कोठी के विस्तीर्ण आंगन में सन्नाटा था। बकुल स्नानागार में गई। उसने मुंह धोया और मन का असहनीय सूनापन दूर करने के लिए कोने में रखा रेडियो लगाया। बंबई-केंद्र से कोई तुकाराम महाराज का पद गा रहा था। बकुल की पसंद का ही था वह। अण्णासाहब ने वह पद उसे स्वयं सिखाया था और बहुत बार मधुर स्वर में उससे गवाया भी था। इसलिए इस समय जब कि कोई दूसरा गायक उसी पद को रेडियो में गा रहा था, बकुल दर्पण के सामने खड़ी होकर अपने बालों में कंधी करती हुई स्वयं उस पद को मन-ही-मन गुनगुना रही थी। तभी द्वार में खड़ी गिरजा का दर्पण में प्रतिबिंब पड़ा। बकुल ने पूछा, “क्या है, गिरजा ?”

“आपको नीचे बड़े मालिक याद कर रहे हैं। गनपत संदेसा लेकर आया है।”

यह सुनते ही बकुल का गुनगुनाना एकदम रुक गया। उसने तुरंत रेडियो बंद कर दिया। कंधी किये केशों की लट अपने वक्षस्थल पर लेकर उसने पूछा, “क्यों, बड़े मालिक की तबीयत कैसी है अब ?”

गिरजा सिर्फ गनपत का संदेसा लाई थी। अतएव उसने गनपत को ही ऊपर बुला दिया। बकुल के कमरे के सामने आकर झुककर प्रणाम करता हुआ, वह बोला :

“बड़े मालिक की तबीयत ठीक है, मालकिन ! छोटे मालिक वहीं बैठे हैं, सरकार !”

गनपत के अंतिम वाक्य से बकुल चौंक पड़ी। छोटे मालिक के वहां होते हुए आबासाहब उसे बुलायें, इस बात से उसे आश्चर्य हुआ, साथ ही भिन्न-भिन्न शंकाएं भी उसके मन में उठीं। पिछले दो दिनों से वह आबासाहब के

पास नहीं गई थी, लेकिन उनके कमरे से आने-जानेवाले नौकरों से वह उनके स्वास्थ्य के बारे में रोज पूछताछ कर लिया करती थी। आज सुबह स्नान के बाद उसने आबासाहब के पास जाने का इरादा किया था, परंतु उसके पहले ही गनपत के हाथ संदेसा आगया।

इस संदेसे के बाद बकुल ने जल्दी-जल्दी कपड़े बदले और नाना प्रकार की शंका-कुशंकाएं मन में दबाये उसने आबासाहब के कमरे में प्रवेश किया। नक्काशीदार पलंग पर लेटे हुए आबासाहब की दायाँ ओर कुरसी पर बापू-साहब बैठे थे। बकुल की निगाह पहले उन्हींकी ओर गई। उसे उनका चेहरा सदा की भांति दिखाई दिया। उसपर न भय की छाया थी, न दुख की छटा। आबासाहब आंखें बंद किये पड़े थे। बकुल की आहट पाते ही उन्होंने आंखें खोलीं। उसकी ओर देखा। बकुल को लगा, जैसे उनकी आंखों में प्रेम और ममता के भाव उमड़े हुए हैं। उन्होंने बकुल को अपनी बायीं ओर की कुरसी पर बैठने के लिए कहा। एक क्षण के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। फिर आबासाहब बोले, “बहूरानी, मैंने तुम्हें यही बुला लिया था। जाने क्यों, एकाएक मुझे बड़ा अच्छा लगने लगा। इसलिए थोड़ी देर से बापू से बातें कर रहा था। आज मुझे इतना अच्छा लग रहा है कि सबसे मिलने को जी चाह रहा है।”

लगातार बातें करते रहने से दमा का दौर शुरू न हो जाय, इसलिए आबासाहब आधा मिनट के लिए रुक गये। इस बीच कुर्सी से उठते हुए बापूसाहब बोले, “आबा, मैं चलता हूं। बाहर मिस्टर हैरिस मेरी राह देख रहे हैं।”

“जाओ-जाओ। रामटेक की खदानों के बारे में उन्हें ठीक से समझा देना। उन्हें सब कामों में तुम्हारी मदद करनी चाहिए। बढ़िया किस्म की मशीनें जुटानी होंगी, यह भी उन्हें जता देना।” आबासाहब ने यह सब कहा।

बापूसाहब कमरे से बाहर चले गये। जाते समय उन्होंने बकुल पर एक सामान्य निगाह भी नहीं डाली। जैसे कोई अपरिचित व्यक्ति आबासाहब से मिलने आया हो, इस रोब से वे कमरे से बाहर हो गये।

उनका यह व्यवहार देखकर बकुल को बड़ी निराशा हुई। उसके हृदय में उथल-पुथल मच गई। उसने एक गहरी सांस ली और आबासाहब की

और देखा। तभी उसे अनुभव हुआ, मानों वे उसकी इस नाजुक स्थिति को पहले से ही देख रहे हैं। उसने अपनी दृष्टि नीची कर ली। उसे लगा कि यदि वह उस कातर दृष्टि से आवासाहब की ओर देखेगी तो उसकी आंखें मानों उनसे कह देंगी, “क्यों देख लिया ससुरजी, किस तरह का बरताव है आपके बेटे का मेरे साथ। बताइये, मैं भाग्यशालिनी हूं या...” बकुल के उदास मन को दूसरी दिशा में मोड़ने के लिए आवासाहब बोले, “बेटा, आज मैंने तुम्हें जानबूझकर बुलाया है। मुझे तुमसे बहुत बातें करनी हैं। कितने ही दिनों से यह विचार मेरे मन में चक्कर काट रहा है। बीमारी ने मुझे पूरी तरह धर दबाया है। आज मुझे कितना आनंद आ रहा है। बुझने से पहले दीपक की ज्योति जिस तरह बढ़ जाती है, उसी तरह मेरा मन भी...”

इतना कहते-कहते उनका दमा उखड़ आया। वाक्य अधूरा रह गया— उनकी भयंकर अवस्था देखकर बकुल घबड़ा गई और जोर-से चिल्ला पड़ी, “गिरजा ! गनपत ! कौन है उधर ? नर्स को बुलाओ। डाक्टर को बुलाओ !”

बकुल की पुकार सुनकर नर्स एकदम दौड़ी हुई भीतर आई। दमे के मारे आवासाहब का बुरा हाल हो रहा था। उन्हें असहनीय यातना हो रही थी। बापूसाहब बगलवाले कमरे में मिस्टर हैरिस को रामटेक की खदानों की जानकारी दे रहे थे। बकुल आवासाहब के पलंग पर अधबैठी उनकी पीठ मल रही थी। उसकी आंखों से आंसुओं की धाराएं बह रही थीं, कांपती हुई आवाज में उसने पूछा, “नर्स, हमारे आवासाहब अच्छे हो जायेंगे ?”

एक दिन और एक रात बकुल ने आबासाहब के पास जागकर बिताई । उसे कुछ सूझता ही नहीं था । किसी काम में उसका मन नहीं लगता था । भूख-प्यास बिलकुल भूल गई थी ।

नर्स ने आबासाहब को पिछले दिन दो इंजेक्शन दिये थे, लेकिन उनसे उन्हें कोई आराम न हुआ था । फिर शहर से दो-तीन डाक्टरों को बुलाया गया था । डाक्टरों ने उनकी अच्छी तरह से जांच की थी और लगातार तीन घंटे तक उनके बिस्तर के पास बैठे रहे थे । इलाज चालू था । कभी-कभी वे गंभीर हो उठते थे ।

उनके चेहरे की हालत देखकर बकुल घबड़ा उठती थी । उसकी आंखें आंसुओं से भर आती थीं । नजदीक खड़ी नर्स से वह बार-बार पूछती थी, “सच बताओ, हमारे आबासाहब अच्छे हो जायंगे न ?”

बकुल की करुणाजनक स्थिति देखकर सरकारी अस्पताल के अंग्रेज सिविल सर्जन ने उससे कहा था, “श्रीमती देशमुख, शोक न करो, यह अच्छे हो जायंगे ।”

बकुल ने अधीर होकर कहा, “डाक्टरसाहब, आप पूरा-पूरा प्रयत्न करें । मेरे ससुर को जरूर अच्छा होना चाहिए ।”

बकुल की चिंता को डाक्टर महसूस कर रहे थे । आबासाहब को इंजेक्शन देने से पहले उसकी पीठ धीरे-से थपथपाकर उन्होंने उसे ढाढ़स बंधाने का उपक्रम किया था । वे आबासाहब को बचाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहे थे ।

अंत में उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली । पूरे पांच घंटे के बाद आबासाहब के चेहरे पर ऐसा भाव झलकने लगा, मानो उनकी वेदना कम हो गई हो । उन्हें धीरे-धीरे चैन पड़ने लगा । कमजोरी के मारे उन्होंने आंखें बंद कर ली थीं । उनकी सांस जरूर कुछ तेज चल रही थी, लेकिन भय का वातावरण कम हो गया था । डाक्टरों के चेहरों पर आशा के चिह्न दिखाई

दे रहे थे । सिविल सर्जन ने धीरे-से बकुल से कहा, “आप बड़ी सौभाग्य-शालिनी हैं ।”

बकुल ने विनयपूर्वक कहा, “नहीं डाक्टरसाहब, इसका श्रेय आपको है ।”

गनपत काँफी और बिस्कुट ले आया । काँफी की चुस्कियां लेते हुए सिविल सर्जन ने बकुल से भी पीने का आग्रह किया, पर उसने विनयपूर्वक इंकार कर दिया । यद्यपि डाक्टरों के प्रयत्न सफल हो गये थे, फिर भी बकुल के मन को संतोष न हुआ था । उसका हृदय ज्यों-का-त्यों भयाक्रांत बना हुआ था । नर्स उसे बार-बार हिम्मत बंधाती थी, फिर भी बकुल का मन आश्वस्त न होता था । दिनभर वह बराबर आबासाहब के पास बैठी रही । ताई ने जब खाने का बहुत आग्रह किया तो उनका मान रखने के लिए वह खाने बैठ तो गई, लेकिन भात के एक-दो ग्रास खाकर ही उठ बैठी और ताई से से बोली, “सच कहती हूं, मुझसे खाया नहीं जाता ।”

रात को भी वह वहीं बैठी-बैठी जागती रही । जब दो बजे तो नर्स ने कहा, “आबासाहब की तबीयत अब ठीक रहेगी । आप जाकर सो जाइये । आपकी तबीयत खराब हो गई तो एक और नर्स इस कोठी में आ जायगी ।”

नर्स के मार्मिक विनोदभरे कथन पर बकुल को हँसी आगई । उसने कहा, “नहीं जी, मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा । आपकी बात मानकर अपने कमरे में चली भी जाऊं तो भी नींद तो आने से रही । इससे तो यहीं बैठी रहूं तो अच्छा है ।”

बकुल वहीं बैठी रही और जागती रही । आबासाहब की काया की ओर वह निरपेक्ष भक्त की तरह टकटकी लगाकर देखती थी ।

अगले दिन सुबह आबासाहब के स्वास्थ्य में बहुत-कुछ सुधार हो गया । उन्हें अच्छा लगने लगा । तब बकुल को लगा, मानों उसका जागना सार्थक हो गया । बकुल को अपनेपैताने बैठी देखकर आबासाहब को जिस तरह आश्चर्य हुआ, उसी तरह आनंद भी हुआ । उन्होंने उसे “बेटा” कहकर प्रेम से पुकारा । वह उनके सिरहाने की तरफ जा रही थी कि तभी नर्स ने आबासाहब से कहा, “माफ कीजिये । आप दोनों के बीच में मुझे कुछ बोलना पड़ रहा है । लेकिन आपको इन्हें डाट देना चाहिए ।”

नर्स के इन शब्दों को सुनकर आबासाहब ने एक बार नर्स की ओर और एक बार बकुल की ओर देखा। फिर पूछा, “क्यों, क्या किया हमारी बहुरानी ने ?”

“क्या किया, यह पूछ रहे हैं ? मेरे बार-बार मना करने पर भी रात को ये आपका कमरा छोड़कर बाहर नहीं गई। कुछ खाया भी नहीं और कल की सारी रात तो आपके पैताने बैठी रही हैं।”

बकुल को भय हुआ कि नर्स के इन शब्दों को सुनकर आबासाहब उसपर नाराज होंगे और उसे आड़े हाथ लेंगे, इसलिए उसने गर्दन झुका ली, लेकिन एक-दो मिनट बीतने के बाद भी आबासाहब कुछ नहीं बोले तो बकुल ने उनकी आंख बचाकर उनकी ओर देखा। आबासाहब की आंखों में आंसू छलछला रहे थे। उसके देखते-देखते कई बूंदें नीचे टपक पड़ीं। भर्राई हुई आवाज में बड़े कष्ट से आबासाहब ने कहा, “बेटा बकुल !” वे बहुत-कुछ कहना चाहते थे, लेकिन शब्द होठों से बाहर ही नहीं आ रहे थे। अपने लिए जी-तोड़ काम करनेवाली बहू को देखकर उनका हृदय उसके प्रति-उमड़ आया था। थोड़ी देर में ज्वार शांत होने पर वे बोले, “बेटा, यह अच्छी बात नहीं है।”

बकुल ने मंद स्वर में कहा, “आप चिंता न करें। मैं एक दिन जाग गई तो उससे मेरा कोई भी नुकसान नहीं होने का।”

“नहीं-नहीं, बेटा ! मेरी आज्ञा तुम्हें माननी होगी। अब तुम जाओ। कंधी-चोटी करो। नहाओ। जल्दी से भोजन कर लो। बापू न आया हो तो भी खा-पी लो। फिर थोड़ी देर सो लो। तीन बजे मेरे पास आ जाना। समझीं ? अच्छा, जाओ।”

आबासाहब के इन आत्मीयता-भरे शब्दों को सुनकर बकुल को बड़ा आनंद हुआ। रात्रि-जागरण से आई हुई दुर्बलता एक क्षण में विलुप्त हो गई। फिर बाकी के सब काम उसने उसी आनंदावेश में जल्दी-जल्दी पूरे किये। भोजनोपरांत वह अपने कमरे में आई और बिस्तर पर लेट गई।

आबासाहब ने बकुल को तीन बजे बुलाया था, लेकिन वह दो ही बजे उनके कमरे में जा पहुंची। उसे एक घंटा पहले आई देखकर आबासाहब को आश्चर्य हुआ। वे बोले, “अभी तो दो बजे हैं, बेटा, तीन नहीं।”

“मुझे दोपहर को नींद ही नहीं आती । इसलिए कुछ जल्दी ही चली आई ।” बकुल ने उत्तर दिया । अपनी बहू की अपने प्रति श्रद्धा देखकर आबासाहब को हार्दिक आनंद हुआ । वे बोले, “बेटी, नींद नहीं आती थी तो कम-से-कम बिस्तर पर पड़े-पड़े आराम ही कर लेना था । अच्छा आओ, यहां मेरे पास बैठो !”

बकुल आबासाहब की दाईं ओर रखी कुर्सी पर बैठ गई । कल इसी कुर्सी पर बापूसाहब बैठे थे । उसे पिछले दिन का दृश्य याद हो आया । किस प्रकार उसके पति बिना उसकी ओर एक निगाह डाले भी चले गये थे ! उसे इसका कितना बुरा लगा था ! लेकिन आबासाहब के प्रेम के आगे वह दुख एकदम दूर हो गया । बकुल ने पूछा, “अब आपको अच्छा लगता है न ?”

आबासाहब के होठों पर स्मित की एक हल्की रेखा प्रस्फुटित हो गई । बोले, “अब अच्छा लगना और न लगना, दोनों बराबर हैं, बेटी । बुढ़ापा पानी के बुलबुले की तरह होता है, पेड़ के पके पात की तरह । बुलबुला और पीले पात का क्या भरोसा !”

“लेकिन डाक्टरसाहब तो कह रहे थे कि आप जल्दी ही बिल्कुल अच्छे हो जायेंगे ।”

“रोगी और उसके रिश्तेदारों की इस तरह हिम्मत बंधाना डाक्टरों का फर्ज है, बेटी । दिन-ब-दिन मैं अब इसी तरह छीजता जाऊंगा । आदमी जिंदा रहेगा भी, तो आखिर कितने दिनों तक ? एक दिन उसे भगवान के घर जाना ही होता है । इस नियम का मैं कैसे अपवाद होऊंगा, बहू !”

बोलते-बोलते बीच ही में आबासाहब रुक गये । उन्होंने बकुल की ओर देखा । यह देखकर कि उनकी बात से उसके हृदय में बेचैनी पैदा हो गई है और उसके चेहरे के भाव भय और चिंता में परिवर्तित हो रहे हैं, वे बोले, “बेटी, मुझे तुम-जैसी सुलक्षणी बहू मिली है, इससे बड़ा संतोष और सुख है । अब मुझे किसी बात की चिंता नहीं । मेरा बापू भी अब जवान हो गया है । उसने सब काम संभाल लिया है । खदानों का काम भी अब वह आप देखने लगा है ।”

आबासाहब के एक-एक शब्द से बकुल गद्गद् हो उठी ! इतनी आत्मीयता से, इतने स्नेह से वे उससे कभी नहीं बोले थे । बकुल ने कहा, “काम

अपने-आप देखने लगे हैं, इसका मतलब यह तो नहीं कि आपका साया न रहे। मुझे आपका ही आधार है।”

“मेरा आधार ! नहीं बेटी, मेरा आधार अंत तक साथ नहीं देगा। तुम्हें अपने पति का आधार है—बापू का आधार है। मैं तुमसे जो कहना चाहता हूँ, वह उसी संबंध में है।”

आवासाहब के अंतिम शब्दों से बकुल चौंक पड़ी। उसके पति के विषय में वह उससे क्या कहेंगे, इसका उसे बड़ा कुतूहल हुआ। उसकी जिज्ञासा एकदम पराकाष्ठा को पहुँच गई। दिल धड़कने लगा। एकाग्र-चित्त से वह आवासाहब की बात सुनने को तैयार हो गई। आवासाहब बोले, “बेटी बकुल, मैंने एक बार तुमसे कहा था कि मैं तुमसे बहुत-कुछ कहना चाहता हूँ। वह कहने का मौका आज आगया है। आजतक मैं इस कोठी में था। मेरी धाक थी। बापू मुझसे डरता था। इसलिए मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। मेरी जिदगी का अब आगे कोई भरोसा नहीं रहा है, इसलिए अब सबकुछ तुमसे कह देना ठीक होगा। वैसे कोई बहुत गंभीर बात नहीं है, फिर भी तुम उसे जान लो, तो अच्छा है !

आवासाहब के इन शब्दों से बकुल और भी चकरा गई। उन्होंने कहा, “बकुल, मैं बापू के बारे में चिंतित हूँ। सच पूछा जाय तो मुझे चिंतित नहीं होना चाहिए, क्योंकि दोष लगाने लायक कोई भी अवगुण उसमें नहीं है। सिर्फ-सिर्फ...।”

अपने पति के विषय में उसे जाने क्या सुनना होगा, इसका भय बकुल को होने लगा। जो कुछ आवासाहब कहना चाहते हैं, वह कहने में वे इस तरह असमंजस में पड़ जायँ, यह बकुल के लिए और भी हैरानी की चीज थी। रुककर आवासाहब बोले, “आज मैं सबकुछ साफ-साफ कहे देता हूँ। मैं बापू के लिए उसके गुण-अवगुण के कारण चिंतित नहीं हूँ, बल्कि मुझे अपने कारण ही उसकी चिंता हो रही है। बापू ठीक मुझपर पड़ा है। मेरा स्वभाव, मेरे गुण-दोष, मेरी रुचि-अरुचि सब उसमें भी उतर आये हैं। और इसीलिए मुझे उसके भविष्य की और साथ ही तुम्हारे भविष्य की भी चिंता मालूम होती है। बकुल, मैं पैसठ बरस का हुआ। जीवन में सब तरह के रंग देख चुका। खूब आनंद लूटा।

“लेकिन कुछ बातों में मैं बिल्कुल असफल रहा। इसी कारण आज तक इतना अनुभव लेकर भी लगता है कि मैं जीवन-संग्राम में विजयी नहीं हुआ, पराभूत हो गया। मन को जिस शांति की जरूरत होती है, वह मैं अपनी अतृप्त वासनाओं के कारण कभी अनुभव न कर सका। नतीजा यह हुआ कि मेरा दृढ़ और उत्साही मन पागल-सा हो गया। उसने सारी मर्यादा तोड़ दी और उन्मत्त हो उठा। मुझे कभी शांति अनुभव नहीं हुई और इन दुर्गुणों के कारण मैंने शायद दूसरों को भी शांति प्राप्त नहीं होने दी। अपनी जवानी में मैंने अपने आसपास के लोगों को बेहद हैरान किया। मैं अपना क्रोध कब्जे में नहीं रख सकता था। अपनी वृत्तियों पर मैं बंधन नहीं रख सका। जिस बात की ओर मेरा दिल तीव्रता से दौड़ने लगता, जिसकी प्राप्ति की मुझे धुन लग जाती, फिर वह भली होती या बुरी, न्याय-संगत होती या अन्याय-पूर्ण, उसे प्राप्त किये बिना मेरे हठिले मन को चैन न पड़ता। शौकीन मन की भूख कभी शांत नहीं हुई। तुम्हारी सास को मेरे कारण सुख की अपेक्षा दुःख अधिक भोगना पड़ा। वह बड़ी सीधी और सरल थी। बापू यदि उसपर पड़ा होता तो मुझे भविष्य के लिए तनिक भी चिंता न होती। पर उसे तो मिले मेरे संस्कार। वह सोलहों आने मुझ जैसा ही होगा। इसलिए आजकल मैं भगवान से एक ही प्रार्थना करता हूं और वह यह कि उसका स्वभाव बदल जाय। जिस प्रकार की जिदगी मैंने बिताई, उसके विपरीत, सचाई का जीवन वह बितावे। मेरे दोषों की छाया उसपर न पड़े। इसलिए मैंने आज तक बहुत सावधानी बरती। पढ़ने के लिए मैंने उसे अच्छे-से-अच्छे कालेज में भेजा। इसलिए वह अभी तक तो मेरे दोषों से अछूता दिखाई देता है, परंतु आगे अगर तुम उसे सम्हाल लो तो आज की तरह अच्छा, सद्गुणी और निर्व्यसनी बना रहेगा। बकुल, उसे अब मैंने तुम्हारे सुपुर्द कर दिया है। उसके जीवन को सही दिशा में चलाने का काम तुम्हारा है। उसे सम्हालते हुए, उसके दोषों पर परदा डालते हुए भी तुम्हें उसकी मार्ग-दर्शिका बनना है।”

इतना कहकर आबासाहब ने आंखें बंद कर लीं, मानो गत जीवन का चित्र उनके स्मृति-पटल पर घूम रहा हो। थोड़ी देर बाद आंखें खोलकर उन्होंने बकुल की ओर देखा और कहा, “बात यह है बेटा कि जिस समय

मनुष्य के हाथ में अधिकार और पैसा आ जाता है, उस समय सद्गुणी मनुष्य की भी मति फिर जाने की संभावना रहती है। बेटी, बापू को बुरी सोह-बत और बुरी आदतों से बचाये रखना और देशमुख-खान्दान की प्रतिष्ठा बढ़ाना, यह सब तुम्हारे ही हाथ है। देशमुख-घराने का जो सम्मान है, जो परंपरा है, वह आगे भी चलती रहनी चाहिए। मुझे अपना नाती देखने की बड़ी साध थी, अब भी है। देखें, भगवान मुझे वह सुख देता है या नहीं।”

इसी समय दरवाजे पर टिक-टिक की आवाज हुई। नर्स ने भीतर आकर कहा, “आपकी दवा का समय होगया है। क्या मैं भीतर आ सकती हूँ ?”

“ठहरो, जरा पांच मिनट रुक जाओ !” आबासाहब ने उत्तर दिया। उन्होंने बकुल की ओर देखा। किसी जलाशय में छोटा-सा पत्थर फेंकते ही जिस तरह अनेक गोलाकार तरंगें उठ जाती हैं, वही स्थिति बकुल की हो गई। वह बड़े असमंजस में पड़ी हुई दिखाई दे रही थी। उसके मन में जो तूफान उठ रहा था, उसका आबासाहब को स्पष्ट रूप से पता चल गया। वे बोले, “यह सच है, बेटी कि मैंने तुमपर बड़ी भारी जिम्मेदारी डाल दी है लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम उसे उठा लोगी। तुम्हारी उम्र अभी छोटी है, पर तुम चतुर हो और समझदार हो। इसमें घबराने या असमंजस में पड़ने की कोई बात नहीं है।”

इतना कहकर आबासाहब रुके और तकिया के नीचे हाथ डालकर उन्होंने मखमल की एक डिबिया बाहर निकाली, जिसमें एक अंगूठी थी। उसकी ओर वे क्षण-भर देखते रहे। जब वे बोल रहे थे, बकुल गर्दन झुकाये उनकी बातें सुन रही थी। लेकिन अब उनके हाथ में रक्खी डिबिया की ओर उसने निगाह घुमा ली। सोने के नक्काशीदार जड़ाव में एक मूल्यवान् माणिक शोभा दे रहा था। अंगूठी बकुल की ओर बढ़ाते हुए आबासाहब बोले, “यह अंगूठी अपने पास रक्खो। बड़े भाग्य की है यह ! कह नहीं सकता कि तुम विश्वास करोगी या नहीं, लेकिन इस अंगूठी में जड़ा यह नगीना बड़ा मूल्यवान् है। इसे उजेले की तरफ करके देखो तो इसके भीतर एक सुंदर तेजस्वी तारा चमकता हुआ दिखाई देता है। ऐसा माणिक, जिसके भीतर तारा दीखता है, शायद ही कभी देखने को मिलता है। जाओ, इसे उजेले में देखो।”

बकुल कुर्सी से उठी और खिड़की पर लगे रेशमी परदे को पीछे सरकाकर उसने उस अंगूठी को प्रकाश में लेजाकर देखा। आबासाहब ने कहा था, ठीक उसी तरह उसे उसके भीतर एक सुंदर तारा चमकता दिखाई दिया। बकुल ने आज तक भिन्न-भिन्न प्रकार की अंगूठियों में जड़े मूल्यवान रत्न और माणिक देखे थे, लेकिन ऐसा माणिक सचमुच उसने कभी नहीं देखा था। उस चमकते हुए तारे की ओर देखकर वह आश्चर्यचकित हो गई। वह बार-बार उस अंगूठी को रोशनी में लेजाकर देखने लगी। थोड़ी देर के बाद आबासाहब बोले, “बकुल, यह अंगूठी मैं तुम्हें देता हूँ। तुम इसे ले जाओ। इसके कारण तुम्हारा भाग्य जरूर उदय होगा। यह मेरा आशीर्वाद है। तुम भाग्यशालिनी हो। सुख और आनंद से रहो। जाओ।”

अंगूठी को अंगुली में पहनती हुई बकुल आबासाहब के कमरे से बाहर निकली। तरह-तरह के विचार और भावनाएं उसके मन में उथल-पुथल मचा रही थीं।

आबासाहब ने जो कुछ कहा था, वह गूढ़ था, अंचित्य था। साधारण मनुष्य की कल्पना के परे था। बेचारी बकुल का दिल बड़े जोर से धड़क रहा था। आबासाहब ने उसे जो सूचनाएं दी थीं, उसके कारण उसे बड़ी बेचैनी हो रही थी। लेकिन मखमल की डिवियावाली माणिक की अंगूठी अब उसकी अंगुली में थी। आबासाहब का आशीर्वाद था। अपने कमरे में प्रवेश करते हुए बकुल मन-ही-मन बोली, “क्या मैं सचमुच भाग्यशालिनी हूँ?”

बकुल बरामदे में खड़ी थी। इस समय उसके मन में कौन-कौन विचार उठ रहे थे, इसका स्वयं उसे भी कोई पता न था। इसमें शक नहीं कि कभी-कभी किसी दुःख के कारण मनुष्य का मन रिक्त हो जाता है और वह शून्य दृष्टि से सब ओर देखता है। उस दृष्टि में न अपेक्षा होती है, न कोई उद्देश्य। बकुल ठीक इसी स्थिति में थी। वह सोच रही थी कि काल राक्षस होता है या जादूगर? वह आवासाहब को उठा ले गया था और उनकी मृत्यु से बकुल के मन को जो आघात पहुंचा था, वह बड़ा भयंकर था।

उसकी एक ही आकांक्षा थी, वह यह कि उसके पति उससे आत्मीयता और स्नेह का बर्ताव करें और उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करके गृहस्थी का अमूल्य सुख दें, लेकिन गृहस्थी के जीवन का एक-एक दिन अस्त हो रहा था और पति के रंगढंग का दर्शन करके उसका दिल चूर-चूर होने लगा। उस दिन से बकुल बार-बार अंगूठी की ओर देखती थी और अपने से पूछती थी, “क्या मैं सचमुच भाग्यशालिनी हूँ?”

देशमुख-घराने का एक कर्मवीर पुरुष संसार से चल बसा था। जिस तरह मूर्ति के बिना मंदिर सूना दीखता है, उसी तरह आवासाहब के बिना सारी कोठी उदास और भयानक लगती थी। तीन सप्ताह पहले आवासाहब ने बकुल से बड़े स्नेह और आत्मविश्वास से बातें की थीं। उस क्षण से, यह देखकर कि इस सात तहखानेवाली कोठी के सात तहखानेवाले मन रखनेवालों में कम-से-कम आवासाहब नहीं हैं, बकुल को खुशी हुई थी, संतोष हुआ था। लेकिन यह आनंद और यह संतोष अब मानों विलुप्त हो गया था। अंगूठी देते समय आवासाहब के ये उद्गार कि “तुम भाग्यशालिनी हो” उससे पूछ रहे थे, “कौन कहता है कि तू भाग्यशालिनी है? यदि सचमुच भाग्यशालिनी होती तो आवासाहब इस संसार को छोड़कर क्यों चले जाते?”

लेकिन इस प्रश्न का आवासाहब ने चकित कर देनेवाला उत्तर दिया था। उन्होंने अपने वसीयतनामे में अपनी आधी संपत्ति बकुल के नाम कर

दी थी। बची हुई आधी अपने बेटे के नाम लिख दी थी। बकुल के पिता अण्णासाहब को उसकी संपत्ति का ट्रस्टी बना दिया था। आबासाहब की बीमारी का समाचार पाकर अण्णासाहब वहां आये थे और उन्होंने अपनी बेटी से आबासाहब की न्याय-बुद्धि की सराहना करते हुए कहा था, “बकुल, पुरानी पीढ़ी के लोग बड़े विवेकशील होते हैं। अपनी आधी संपत्ति का उत्तराधिकार देकर आबासाहब ने तुम्हें जिंदगीभर के लिए आधार दे दिया है। निःसंदेह तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, बेटी! अब तो भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि तुम दोनों सुखी रहो और आनंद से अपनी गृहस्थी को सजाओ और चलाओ।”

अण्णासाहब के चले जाने पर बकुल बरामदे में खड़ी हुई उन्हींके शब्दों पर विचार कर रही थी। तभी उसने सुना, कोई कह रहा था, “बकुल, तुम बोलो न, बकुल तुम बोलो न?”

बकुल ने चौंककर पीछे देखा। कोई भी दिखाई न दिया। बस वही अकेली बरामदे में खड़ी थी। बरामदे के बायीं ओर कोने में एक जालीदार पिंजड़े में बैठी मैना कह रही थी, “बकुल, तुम बोलो न, बकुल, तुम बोलो न?”

मैना के शब्दों को सुनकर बकुल को हँसी आ गई। वह उसके पास गई। अपने पाले हुए पशु-पक्षियों में यह मैना उसे बहुत ही प्रिय थी। बकुल को बचपन से ही पशु-पक्षियों के पालने का शौक था। अण्णासाहब ने उसके लिए भिन्न-भिन्न जाति के तोते, कबूतर और खरगोश आदि पाले थे। उनकी सेवा में बकुल अपना बहुत-सा समय बिताती थी। ऐसे समय में यदि कोई अण्णासाहब के पास आता और वह बकुल को पशु-पक्षियों के साथ खेलते देखता, तो उनसे पूछता, “अण्णासाहब, यह क्या है?”

वह उत्तर देते, “यह ‘रानी का बाग’ है।”

बकुल के विवाह के बाद किसी कार्यवश अण्णासाहब नैनीताल गये थे। वहां के किसी आदमी से वह यह मैना ले आये थे और उसे कई बातें सिखा दी थीं। वह अब बहुत अच्छा बोलने लगी थी। यदि कोई बाहरी आदमी बापूसाहब या बकुल से मुलाकात के लिए कोठी में आता तो मैना भट उससे पूछा करती, “आप चाय लेंगे या शरबत?”

धीरे-धीरे मैना बड़ी बातूनी बन गई थी। इस समय अपनी स्वामिनी को चुप देखकर, वह कह उठी थी, “बकुल, तुम बोलो न, बकुल, तुम बोलो न ?”

आबासाहब से आधी संपत्ति का उत्तराधिकार पाकर उसके मन में अनेक शंकाएं उठने लगीं। आबासाहब ने ऐसा क्यों किया ? उसके पति जाने क्या सोचते होंगे ? आदि-आदि।

इन शंकाओं ने उसके मन पर पूरा अधिकार जमा लिया था। आबासाहब का आधार उठ जाने से उसे अब आगे अपने ही सहारे रहना था। इसलिए उसे यह चिन्ता होने लगी थी कि भविष्य में जाने कौन-कौन-सी घटनाएं उसके सामने होंगी और उसे किस प्रकार उनका सामना करना पड़ेगा ? यह सच है कि आबासाहब की मृत्यु के कारण कोठी की रचना में कोई अंतर न पड़ा था, लेकिन सब ओर नीरसता फैल गई थी। घर में जिस तरह पहले एक प्रकार की स्वतंत्रता की तरंग बहा करती थी, वह अब जैसे जम-सी गई थी। आबासाहब की मृत्यु के बाद तेरह दिनों के भीतर बहुत-से रिश्तेदार नागपुर आये थे, परंतु प्रायः सभी बकुल के लिए पराये जैसे थे। घर में ताई थीं, लेकिन वे कुछ दूसरे ही प्रकार की थीं। बकुल को लगता, जैसे समूची कोठी उसे खाने दौड़ रही है। इसी कारण वह अक्सर मौन रहती थी और उसके इस मौन के कारण ही मैना ने उससे बोलने का आग्रह किया था।

लेकिन बकुल की शंकाओं और दुख को वह मैना भला क्या जान सकती थी ? बकुल को रह-रहकर इस बात पर आश्चर्य होता था कि आबासाहब ने अपने बेटे को सम्हालने की जिम्मेदारी उसपर क्यों डाली और बापूसाहब उनके इकलौते पुत्र होते हुए भी उन्होंने अपनी जायदाद का आधा हिस्सा उसके नाम क्यों किया। आखिर बापूसाहब में भी ऐसे कौन-से दुर्गुण उन्होंने देखे थे, जिनके कारण उन्हें उनपर अविश्वास हुआ ? चोटी का तैराक पानी की थाह लेने के इरादे से पानी के भीतर जाय और वह पानी ही उसे ऊपर उठाकर फेंक दे, ठीक यही हालत बकुल की हो गई थी। जिन शंकाओं के वह कारण खोजना चाहती थी, वे शंकाएं ही उसे उत्तर से दूर हटा रही थीं।

बकुल जिस समय मैना के पिंजड़े के पास खड़ी थी, उसी समय एक शानदार सफेद कबूतर बकुल के कंधे पर आकर बैठ गया। बकुल ने उसे हाथ में ले लिया, थोड़ा-सा दुलार से सहलाया और उसकी लाल-लाल आंखों को चूमा। फिर मैना से बोली, “मुझे यह कबूतर बहुत अच्छा लगता है। समझी ? तू अच्छी नहीं है।”

मैना तुरंत बोल उठी, “तू अच्छी नहीं है। तू अच्छी नहीं है।”

“वाह जी वाह, मैं कैसे अच्छी नहीं हूं, यह तूने कैसे कहा ? मैं तो बड़ी भाग्यशालिनी हूं। भाग्यवती हूं। यों कह—बकुल भाग्यवती है !”

मैना ने वे ही शब्द दोहरा दिये।

उन शब्दों को सुनकर बकुल के मन की सारी उदासी जाने कहां विलुप्त हो गई। कुछ ही क्षण बाद पति की आवाज उसके कानों में पड़ी। वह कह रहे थे, “गिरजा, ओ गिरजा, तेरी मालकिन कहां है ?”

उस हिस्से में, जहां बकुल रहती थी, बापूसाहब शायद ही कभी आया करते थे। इस कारण बकुल को आश्चर्य हुआ। उसने जल्दी-से अपने हाथ का कबूतर हवा में उड़ा दिया और आंचल सम्हालकर अपने कमरे की ओर जाने लगी। तभी बापूसाहब स्वयं वहां आ गये। उनके हाथ में कुछ कागज थे। चेहरे पर रोष और चिड़चिड़ाहट की झलक थी। बकुल एकदम सहम गई। बापूसाहब का ध्यान पहले पिंजड़े की मैना की ओर गया। वह चिल्लाने लगी, “बकुल भाग्यवती, बकुल भाग्यवती !”

मैना के उन शब्दों को सुनकर बापूसाहब के क्रोध का पार न रहा। हाथ में रखे कागजों को क्रोधावेश में बकुल के आगे फेंककर बोले, “क्यों न होगी बकुल भाग्यवती ! आधी जायदाद की स्वामिनी जो हो गई है न ? आबासाहब के मन में मेरे खिलाफ जहर घोलकर तुमने और तुम्हारे पिता ने यह खूब चाल खेली ! क्यों ? अच्छी नाक काट दी तुमने अपने पति की। मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुममें इतना स्वार्थ भरा है ! ठीक है !”

कहकर बापूसाहब जोर से पैर पटकते हुए वहां से चले गये। बकुल क्षण-भर के लिए हतप्रभ-सी देखती रही। जिस वृक्ष के आधार से लता अपना जीवन बढ़ाती है, फूलती-फलती है, वही वृक्ष यदि उसे तोड़कर फेंक दे तो उस लता की जो हालत होती है वही बकुल की इस समय हो रही थी। पति द्वारा

लगाये गए आरोप से बकुल को गरम सलाई से दाग देने के बाद होनेवाली वेदना अनुभव हुई थी। उसने कोई षड्यंत्र नहीं रचा था, कोई चाल नहीं खेली थी। आबासाहब के मन में अपने पति के विरुद्ध विष नहीं घोला था। मृत्यु से तीन सप्ताह पूर्व कहे गये आबासाहब के शब्द बकुल को रह-रहकर याद आने लगे। आबासाहब को बेटे के स्वभाव की जो चिंता हो रही थी और जो भय लग रहा था, वह अब उसके सामने साकार हो गया। उसे लगा कि उसकी सारी शक्ति जवाब दे रही है और वह शीघ्र ही नीचे गिर पड़ेगी।

इसी समय पिंजड़े की मैना बोल उठी, “बकुल भाग्यवती, बकुल भाग्यवती !”

लेकिन मैना का यह जयघोष बकुल को कर्णकटु लगा। उसने चिल्लाकर कहा, “चुप हो जा।”

इसके बाद बहुत जोर-से रो पड़ी। आंखों से आंसुओं की धाराएं बहने लगीं। आंसुओं के परदे की ओट में मैना का पिंजड़ा अदृश्य हो गया। हथेलियों में मुंह छिपाकर, सिसकियों के बीच, वह मानों अपने-आपसे बोल उठी, “मेरे सौभाग्य का यही श्रीगणेश है क्या ?”

मुख की तलाश में दिन-पर-दिन गुजरते गये। उनके साथ ही बकुल की निराशा भी बढ़ती गई। उसका तरुण कल्पनाशील मन बुझ गया। प्रेमाद्रं भावनाएं जलकर राख होगईं। जीवन की अभिलाषाओं से प्रफुल्लित उसकी शीतल आंखें कारुण्य की चिंता से काली-सी दीखने लगीं। विवाह के बाद दो वर्षों के भीतर उसे जो अनुभव हुए, वे कितने कटु और कठोर थे ! पति के बारे में उसके मन में जो लालसाएं थीं, वे सब धूल में मिलती जा रही थीं। आरंभ से ही उन्होंने उसके साथ दिल खोलकर कभी बर्ताव नहीं किया था। अब जबकि आबासाहब ने उसे अपनी आधी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी बना दिया, उनका पारा और भी चढ़ गया। उन्हें रह-रहकर इस बात का बड़ा दुःख होता था कि बकुल उनकी जायदाद की बराबर की हकदार होगई है। एक बात और भी थी। बकुल होशियार थी, उसका रहन-सहन और उसकी विचार-धारा ऊंचाई लिये हुए थी। इसलिए सब लोग उसकी बड़ी सराहना करते थे। पति को यह सहन नहीं होता था। उन्हें उसके गुण बड़े ही कष्टदायक प्रतीत होते थे। उन्हें लगता था कि पत्नी को इतना होशियार नहीं होना चाहिए। अगर हो भी तो अपने गुणों का इस प्रकार प्रदर्शन नहीं करना चाहिए कि लोग उनके सामने आकर उनका गान करें। जब कभी कोई उनके पास आकर बकुल की बुद्धि की प्रशंसा करता, तो उन्हें ऐसा लगता मानो बकुल स्वयं ही जानबूझकर उनके सामने अपनी होशियारी की शेखी बघार रही है। अब बापूसाहब को पक्का विश्वास होगया था कि आबासाहब से अपने नाम आधी संपत्ति लिखा लेने में भी बकुल का यही हेतु रहा होगा कि उसका पति उसके सामने सदा नीचा देखे और उसके शासन में रहे। इस दूषित विचार ने उन्हें पत्नी से बहुत दूर कर दिया। उनके मन में बकुल के प्रति जो द्वेष था, वह भयंकर रूप से प्रज्वलित हो उठा। पति प्रेमपूर्वक बर्ताव करें, उनके मन में प्रेम उत्पन्न हो, इसके लिए बकुल ने जितने प्रयत्न किये वे सब अकारथ गये। पति के द्वेष की आग में भस्म हो गये।

परिणाम हुआ कि दोनों पति-पत्नी होते हुए भी एकमन न हो सके।

बापूसाहब की मित्रता दो प्रकार के लोगों से थी। एक थे नागपुर के वे बड़े-बड़े लोग, जिनका बड़प्पन केवल उनके धन के कारण था। इन लोगों से बापूसाहब ने केवल इसलिए मित्रता कर रखी थी कि जिससे उनके नाम का बड़प्पन बना रहे। एक-दूसरे के घर जाकर दावतें खाने और विभिन्न समारोहों में एकत्र होने में ही उन लोगों की यह मित्रता सिद्ध होती थी। जहां दावतों और समारोहों से लौटे कि वे सब एक-दूसरे के बारे में कभी भूलकर भी अच्छा नहीं कहते थे, बल्कि एक-दूसरे की निंदा किया करते थे। उस जमाने में, नागपुर में अंग्रेजों का बड़ा ही ठाट-बाट था। मँगनीज का बहुत-सा रोजगार उन्हींके हाथ में होने के कारण, बापूसाहब का उन लोगों से भी काफी परिचय हो गया था। अंग्रेजों का रौब और रहन-सहन बड़े ऊंचे दर्जे का था, लेकिन ये लोग यही माना करते थे कि अपना काम ठीक से पूरा कर देने के बाद हम हिन्दुस्तान में मौज उड़ाने आये हैं। इस कारण बापूसाहब का उन लोगों से जो संबंध आता था, उसमें अगर धंधे की बात छोड़ दी जाय तो, बाकी की उनकी मित्रता स्त्री-पुरुषों की मिली-जुली दावतों, संगीत और नृत्य तथा मदिरा-पान आदि नाना प्रकार के रंगीन कार्यक्रमों में सम्मिलित होने की थी। इस कारण धंधे में कोई विशेष लाभ होना तो दरकिनारा रहा, बाबूसाहब रंगीन तबीयत के जरूर होते जा रहे थे।

इन मित्रों के अतिरिक्त बापूसाहब का एक दूसरा मित्र-परिवार भी था, जिसके साथ उनका बड़ा ही घनिष्ठता का नाता था। वे लोग बापूसाहब के पैसों पर गुलछरें उड़ाकर अपने बड़प्पन का ढोल पीटा करते थे। वे बापूसाहब की दिल खोलकर तारीफ किया करते, उनकी किसी भी रंगीनी के लिए उनका दिमाग आसमान में चढ़ा देते। वे ऐसा दिखाया करते, मानों स्त्री-बच्चों से भी अधिक उन्हें उनकी फिक्र है। दुनिया-भर की व्यर्थ की बातों से और शहर-भर की गंदी खबरों से वे उनके कान भरा करते। यही इन मित्रों का मुख्य पेशा था। बापूसाहब इन मित्रों से बड़ा प्रेम रखते थे। बकुल को पति के इन मित्रों की पहले कोई जानकारी न थी, क्योंकि स्त्रियों का पुरुषों में जाकर मिलना उस घराने का रिवाज न था, लेकिन धीरे-धीरे बकुल को जब ये सारी बातें मालूम हुईं तो उसके मन को इतनी चोट

लगी कि उसका हृदय विदीर्ण हो गया।

...

...

...

पांच दिन पहले बापूसाहब अपनी खदानों का काम देखने गये थे। जाते समय दो दिन के भीतर लौट आने को कह गये थे, लेकिन तीन दिन बीत जाने पर भी उनके लौटने का कोई पता न था। आबासाहब तो अब थे नहीं। और कौन ऐसा था, जो उनपर अपना नियंत्रण रखता? अब ऐसा होता कि वे काम के बहाने जाते और जल्दी लौटने का नाम ही न लेते। उन्होंने कामठी में एक नया बंगला बनवाना शुरू किया था। कभी उसकी देखरेख का बहाना लगा देते।

वास्तव में, संपत्ति की आधी उत्तराधिकारिणी और बराबर की हकदार होने के नाते पत्नी को भी सारे रोजगार और काम-काज की जानकारी होनी आवश्यक थी और सब बातों में उससे सलाह भी ली जानी चाहिए थी, लेकिन उसे कोई भी जानकारी देने की पति ने कभी कोई जिम्मेदारी न समझी और न कोई सलाह ही उससे कभी ली। पति के बारे में बकुल के कानों में बहुत-सी बातें आने लगी थीं, जिनसे स्पष्ट था कि बापूसाहब खदानों का काम-काज देखने के बहाने अपने कुछ बिगड़े साथियों को लेकर रामटेक जाते हैं और वहां मौज उड़ाते हैं।

बापूसाहब के स्वभाव और व्यवहार में परिवर्तन होते देखकर बकुल की तरह ताई को भी बड़ा धक्का लगा। एक दिन उन्होंने बकुल से कहा, “बकुल, आबासाहब चले गये! और देखो, इस कोठी के दिन भी फिरने शुरू हो गये हैं। तुम्हें बापूसाहब की हरकतों पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए। उसे अभी रोक लिया तो ठीक, वरना आगे...”

वरना आगे क्या होगा, इसकी बहुत-कुछ स्पष्ट कल्पना ताई को हो चुकी थी, क्योंकि आबासाहब के रंगीन जीवन-नाटक के कुछ दृश्य उन्हें देखने को मिल चुके थे। आबासाहब के उस प्रकार के जीवन के कारण बकुल की सास ने अपनी जिंदगी में काफी मनस्ताप भोगा था। उसकी पुनरावृत्ति बकुल के जीवन में न हो, इसलिए ताई ने उसे आगाह कर दिया था।

लेकिन बकुल कर क्या सकती थी? बंदूक की आवाज़ होते ही हिरनी जिस तरह घबरा जाती है, वही हालत बकुल की थी। आबासाहब के शब्द

उसके कानों में गूँजते थे, लेकिन उसे रास्ता नहीं सूझ रहा था। प्रकाश नहीं दीख रहा था। उसने सिसकियों के बीच ताई से कहा, “ताई, मैं क्या करूँ? मेरी अक्ल ही काम नहीं करती। आबासाहब की मृत्यु के बाद से मेरे साथ इनका बर्ताव बड़ा ही निष्ठुर और परायेपन का हो गया है। इनसे एक शब्द कहना मुश्किल है। पिछले चार महीनों से इन्होंने मुझसे बातचीत करना तक छोड़ दिया है। आबासाहब ने अपनी आधी संपत्ति मेरे नाम लिख दी। इसमें मेरा क्या अपराध है? आखिर आबासाहब ने ऐसा बटवारा किया ही क्यों?”

“इसका रहस्य तुम नहीं समझ सकोगी, बकुल ! आबा ने जो किया, बहुत अच्छा किया है। उन्होंने बड़ी दूर-दृष्टि से काम लिया है। पैसा मनुष्य को प्रमादी और उन्मत्त बना देता है। आबा जानते थे कि उनका लड़का बड़ा खर्चीला है। इसीलिए उन्होंने ऐसा किया। इस विषय में तुम्हें अधिक कड़ाई से काम लेना चाहिए। तुम समझदार हो, विचारवान हो। इसलिए कहती हूँ कि बापू के बारे में सावधान रहो।”

“ताई, मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। मेरी कैसे गुजरेगी, भगवान जानें?”

इतना कहते-कहते बकुल रो पड़ी। उसे रोते देखकर, ताई की आंखें भी गीली हो गईं। उन्होंने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बड़े प्यार से कहा, “इस तरह रोओ नहीं, बेटा ! तुम्हारे एक बच्चा होते ही बापू का मन घर-गृहस्थी की तरफ खिंच जायगा। अभी तक तो तुम्हें मां बन जाना चाहिए था।”

बकुल को सुख का एक नया अंकुर दिखाकर ताई अपने कमरे में चली गईं। उनके इन शब्दों के कारण बकुल के विचारों को एक भिन्न प्रकार का मोड़ मिल गया। उसके वैवाहिक जीवन को चार साल बीत चुके थे। उसकी ममेरी बहन वसुधा का उसके बाद विवाह होने पर भी वह मां बन चुकी थी और अब उसे मातृत्व का सुख दूसरी बार भी मिलनेवाला था। लेकिन बकुल की गोद अबतक सूनी थी। उसने काव्यों में पढ़ा था कि गृहस्थी की लता पर शिशु का आगमन फूल की तरह होता है और अपने आसपास की स्त्रियों में उसे ऐसे अनेक सजीव चित्र भी देखने को मिले थे। उसके मन में शक हुआ

कि मेरे अभागे जीवन में मां बनने का सुख कभी साकार होगा या नहीं ? उसके हिस्से में यह सुख अभी तक नहीं आया था । ताई के मातृत्व की बात कहने पर सूखा अंकुर फिर हरा हो गया । उसके बाद वह एक दिन अस्पताल गई और वहां की होशियार मानी जानेवाली डाक्टरनी से उसने अच्छी तरह से अपनी जांच कराई । डाक्टरनी के जांच करते समय बकुल ने दबी जबान से पूछा, “सच बताना डाक्टर, मुझमें कोई दोष तो नहीं है ? क्या मैं अपने जीवन में मां बनने का सुख प्राप्त कर सकूंगी ?”

उसके गाल को थपथपाते हुए डाक्टर ने कहा, “व्यर्थ की चिन्ता न करो । तुममें कोई दोष नहीं है । ईश्वर तुम जैसी रूपवती लड़की के प्रति कभी अन्याय नहीं करेगा ।”

“बहुत-बहुत धन्यवाद डाक्टर ।” कहकर बकुल खुशी-खुशी घर लौटी । डाक्टर ने बकुल के लिए सुख का एक नया क्षेत्र खोल दिया और उस क्षेत्र में विचरण करते हुए बकुल को असाधारण आनंद प्राप्त होने लगा । वह उस आनंद का सुंदर जाल बुनने लगी ।

—मैं जब मां बन जाऊंगी—मेरी गोद में जब एक नन्हा-सा बच्चा खेलने लगेगा, तब मेरा जीवन कितना समृद्ध, कितना सुखदाई हो जायगा । मुझसे दूर होते जा रहे मेरे पति सुंदर नन्हे बालक के कारण मेरे नजदीक आयेंगे और फिर मेरे सुखी जीवन का आरंभ हो जायगा । हमारी सुखी गृहस्थी देखकर आबासाहब की आत्मा को शांति मिलेगी । अण्णा का आशीर्वाद सच होगा और वे हर्षविभोर होकर सबसे कहेंगे, “मेरी बकुल कैसी भाग्यशालिनी है ! कैसे सुख से रह रही है !”

आशा मनुष्य की आंखों पर चढ़ा एक हरा चश्मा है, जिसे लगाकर दुःख और कष्टों से संतप्त जगत भी शीतल और आह्लादकारी दिखाई देता है। जो व्यक्ति ऐसा चश्मा लगाये रहता है, वह अपने-आपसे बार-बार कहता है, “मनुष्य का जीवन इस तरह हरा-भरा और आह्लादमय होना चाहिए। कम-से-कम मेरा जीवन तो ऐसा ही हो।” लेकिन जहां वह चश्मा आंखों पर से उतरा कि मनुष्य को यह समझते देर नहीं लगती कि यह जग दुःख और मुसीबतों से भरा हुआ है।

बकुल के जीवन की ओर आशा से देखनेवालों को भी यही दिखाई देता था। जैसे-जैसे दिन बीतते जाते थे वैसे-वैसे बकुल को अपने आसपास का वातावरण और परिस्थिति असह्य होने लगी थी। आजकल उसे बार-बार अपने पिता अण्णासाहब की याद आती थी। उसने निश्चय किया कि अण्णासाहब के पास जाऊं और उनसे अपना दुःख कहकर जी को हल्का करूं। इसलिए आज सुबह वह अपने पिता के घर आई। उस समय सात-आठ बजे थे। सूर्य की किरणें सर्वत्र फैली हुई थीं। अण्णासाहब के बैठक-खाने की खिड़की के निकट का गुलाब सफेद फूलों से लदा था। बकुल ही ने तो कहीं से लाकर इस गुलाब की कलम लगाई थी। जब उसका विवाह हुआ था, उस समय इस गुलाब पर एक कली देखने को मिली थी। अब चार वर्ष की अवधि में यह गुलाब बाल-बच्चोंवाली स्त्री की तरह दीख रहा था।

उस गुलाब की ओर देखकर बकुल सोचने लगी—मेरे हाथ का लगा गुलाब फूलों से किस तरह लद गया है। पर मेरी गृहस्थी की लता पर कोई फूल क्यों नहीं खिलता? तभी उसे डाक्टर के शब्द याद हो आये—ईश्वर तुम जैसी रूपवती लड़की के प्रति कभी अन्याय नहीं करेगा।

एक दीर्घ सांस बकुल के मुंह से निकली। अण्णासाहब के कमरे से चंदन और अगरबत्ती की मंद सुगंध हवा की लहरियों पर फैल रही थी। पूजाघर में पूजा कर चुकने के बाद अण्णासाहब प्राणायाम कर रहे थे। उनकी

पूजा में बाधा उपस्थित करना उचित न मालूम होने के कारण बकुल चुपचाप वहीं खड़ी रही। थोड़ी ही देर में अण्णासाहब पूजाघर से बाहर निकले। यह देखकर कि उनकी बेटी गुलाब के गमले के पास खड़ी फूलों का निरीक्षण कर रही है, उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्हें मजाक करने की सनक आई और जरा डाटकर उन्होंने पूछा, “गुलाब के फूल कौन तोड़ रहा है?” बकुल एकदम चौंक पड़ी। उसने पीछे मुड़कर देखा। दरवाजे की देहलीज़ पर पूजा के पवित्र वस्त्र पहने हुए पिता खड़े थे। उन्हें देखकर बकुल आनंद-विभोर हो उठी। उनके भव्य और उज्ज्वल मस्तक पर, भुजदंडों पर और हाथों पर भस्म के पट्टे थे।

“अरे, मेरी बकुल है क्या?” अण्णासाहब हँसते हुए बोले।

“अण्णा, मैं तो डर गई। मुझे लगा कि क्या आपने भी मुझसे कहा कि जा यहां से?” कहने को बकुल इतना कह तो गई, पर उसे लगा कि पहले से ही उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। वह अण्णासाहब के पीछे-पीछे भीतर गई। अपनी इकलौती लड़की को, नौकर के साथ बिना पहले खबर भेजे अकस्मात आई देखकर, उन्हें आश्चर्य तो हुआ, लेकिन उसकी अपेक्षा आनंद अधिक हुआ। परंतु बकुल बहुत दुर्बल-सी दीख रही थी। उसके चेहरे की लाली फीकी पड़ गई थी। चेहरा मुरझा-सा गया था। मानसिक कष्ट के कारण उसकी आंखों में एक प्रकार की उदासी छायी हुई थी। आंखों के नीचे अस्पष्ट-से काले वलय दीख रहे थे। यह सब देखकर अण्णासाहब का हृदय एकदम व्याकुल हो उठा। वे बोले, “बेटी, तुम्हें क्या हो गया है?”

क्षण-भर के लिए बकुल मौन रही। फिर पिता के कंधे पर अपनी गर्दन रखे सिसकियों के बीच वह बोली, “अण्णा, आप मुझे भाग्यशालिनी कहते थे न? लेकिन मुझ जैसी हतभागिन इस दुनिया में शायद ही कोई होगी!”

बकुल के इन शब्दों को सुनकर अण्णासाहब स्तंभित रह गये। बोले, “बेटी, क्या हो गया है तुम्हें, जो पागल की तरह बात कर रही हो!”

“पागल की तरह?” बकुल बोली, “हां, आप ठीक ही कहते हैं। लोग मुझे पागल न कहेंगे तो और क्या कहेंगे? बड़े घराने की बहू इस

तरह रोये, अपने-आपको अभागिनी कहे, तो यह पागलपन ही तो है ! अण्णा, आप कहेंगे, मुझे क्या कमी है ? रहने को विशाल कोठी है, सेवा में नौकर-चाकर हैं, धूमने के लिए एक-से-एक बढ़िया मोटरें हैं, सुंदर पति है और ऊपर से आबासाहब की दी हुई लाखों की सम्पत्ति है ! यह सब होते हुए भी मुझे रोना क्यों आता है ? इसलिए कि बड़े घर की बहू होने से मुझे बिल्कुल सुख नहीं मिला । मेरी लाखों की सम्पत्ति बिल्कुल व्यर्थ है । अण्णा, आपकी बेटी आज अपने जीवन के खोये हुए सुख की तलाश में भटकती आपके पास आई है । अण्णा, बताइये, क्या करूं मैं ?”

भूकम्प के धक्के से जैसे घर की दीवारें हिलने लगती हैं, उसी तरह बकुल का शरीर अण्णासाहब की भुजाओं में जोर-जोर से कांप रहा था और आंसुओं की बाढ़ को रोके रखना उसके लिए असंभव हो गया था । बेटी के आंसुओं से, उसके प्रखर दुख से, विह्वल होकर उन्होंने कहा, “लेकिन बेटी, क्या इस तरह हिम्मत छोड़ दी जाती है ? क्या हुआ, बताओ न ? क्या बात है ?”

“अण्णा, अब तो यह पूछिये कि होने को अब और क्या बाकी रह गया है ? अण्णा, मैं जीना नहीं चाहती । इस प्रकार का जीवन किस काम का ?” बकुल की सिसकियां रुक नहीं रही थीं, जिससे उसके मुंह से शब्द भी ठीक-ठीक नहीं निकल रहे थे । थोड़ी देर रुककर वह बोली, “अण्णा, मेरी गृहस्थी के सुख में आग लग गई है । आजतक एक-एक दिन मैं आशा पर जी रही थी, लेकिन कल जो आंखों से देखा, जो अनुभव हुआ, उस समय लगा, मेरी आंखें क्यों न फूट गई ?”

सच, कल बकुल ने जो देखा वह इतना भयंकर था ! पति के प्रति निष्ठा रखनेवाली कोई भी स्त्री यदि वह देखती तो उसके मन के राई-राई के बराबर टुकड़े हो जाते और उसकी जगह यदि दूसरी कोई अति भावना-प्रधान होती, तो शायद आत्म-हत्या कर लेती । कल त्रिपुरी पूर्णिमा थी । बकुल को संतान प्राप्त हो, इसलिए ताई ने रामटेक के राम की मनौती मानी थी । ताई और बकुल दोनों रामटेक गईं । बकुल की गृहस्थी हँसती-खेलती और बच्चों से भरी-पूरी हो, उसका जीवन सुखमय हो, इसलिए ताई बकुल से, विशाल रामसागर में एक लाख बत्तियों के दीये छोड़ने की मनौती कराने-

वाली थीं। वे उसके साथ इसीलिए रामटेक आई थीं। वहां उनके स्नानादि होने तक सांभ हो चुकी थी। पूर्णिमा के चन्द्रमा का फीका दूधिया प्रकाश धीरे-धीरे रुपहला और किंचित पीला-सा होने लगा था। इस शीतल प्रकाश में रामसागर अधिक खिला दीख रहा था। नौकरों की सहायता से बकुल ने लाख बत्तियों के असंख्य दीये तैयार करवा लिये थे और उन्हें जलाकर उसने रामसागर में छोड़ दिया था।

रामसागर का दृश्य बड़ा सुंदर लग रहा था। चांद की ज्योत्स्ना से उस विशाल सरोवर का जल चमक रहा था। उसमें भक्ति-भाव से बकुल द्वारा छोड़े गये दीप-ज्योतियों के दोने, धीरे-धीरे तालाब के मध्य-भाग में और आसपास थिरक रहे थे। थोड़े ही समय में सारा सागर मंद प्रकाश से प्रकाशित हो उठा था। उस रम्य दृश्य को देखते हुए बकुल अपने-आपसे बोली, “काश मेरे अन्धकारमय जीवन में इसी तरह की कोई ज्योति प्रकाशित हो जाय ! मुझे कितना संतोष हो जायगा !”

पूर्णिमा की चांदनी में रामटेक के राम-मंदिर को अवर्णनीय शोभा प्राप्त हो गई थी। ताई और बकुल का भावुक मन बहुत ही पुलकित हो रहा था। वे अपने-आप में इतनी खो गई थीं कि उन्हें एक-दूसरे का स्मरण ही न रहा। ताई मन-ही-मन कह रही थीं—क्या बापू भी आबासाहब की तरह निकलेगा ? देशमुख-घराने को ऐसे बर्ताव की बीमारी कहां से लग गई ? क्या धन का उन्माद मनुष्य को ऐसा करने के लिए बाध्य कर देता है। हे प्रभो, यह सोने जैसी लड़की कहीं मिट्टी न हो जाय ! मेरी बकुल की ज्योति सतत जलती रखिये।”

संयोग से बकुल के मन में भी ठीक इसी प्रकार के विचार आ रहे थे। वह मन-ही-मन कह रही थी, “इस विशाल रामसागर के रुपहले जल में ये लाख ज्योतियां कितनी सुंदर दीख रही हैं ? स्त्री-पुरुष के जीवन की ज्योतियां भी इसी तरह जलती रहनी चाहिए। ज्योति जलती रहने से नहीं ऊबती, क्योंकि जलती रहना ही उसका धर्म है। लेकिन उसे आंधी का भय लगा रहे, यह कितना दुर्भाग्य है ? मेरा जीवन आंधी में जलनेवाले दीप की तरह हो गया है। मेरे पति ने मेरे आसपास जो तूफान खड़ा कर दिया है, उसमें मेरी जीवन-ज्योति कहीं बुझ तो नहीं जायगी ?

आंधी के जोर से बड़े-बड़े पेड़ भी जड़ से उखड़कर धराशायी हो जाते हैं, तब ज्योति की क्या बिसात है ? लेकिन नहीं, आंधी का मुकाबला करके, उससे आखिर तक लड़कर, उस ज्योति को प्रज्ज्वलित रखने का मैं प्रयत्न करूंगी। हे प्रभो, आप मुझे शक्ति दें।”

उस चांदनी रात में रामसागर की ओर देखते हुए ताई और बकुल मन-ही-मन भगवान राम की भक्ति में निमग्न हो गई थीं। उन्हें समय का ध्यान ही न रहा था। लेकिन हवा की सरदी जब बदन को चुभने लगी, तो ताई ने बकुल से कहा, “बकुल, रात बहुत हो गई है ? अब हमें नागपुर लौट चलना चाहिए।” वे रामसागर के किनारे से उठीं और मोटर में जा बैठीं। नौकरोں ने पूजन का सामान बटोरकर मोटर में रख दिया।

बापूसाहब दो दिन पहले ही खदान पर चले गये थे। खदान के इंजीनियर को एक जगह बढ़िया मैंगनीज का पता चला था और सुरंग लगाकर उसे खोदने की जोरों से कोशिश हो रही थी। इस खुदाई के कारण बढ़िया किस्म का मैंगनीज प्राप्त होनेवाला था, जिससे लाखों की आमदनी की आशा थी। पिछले कुछ महीनों से मैंगनीज के भाव भी बढ़ गये थे। इसीलिए बापूसाहब व्यस्त थे कि जितनी जल्दी हो सके, उस मैंगनीज को खोद लिया जाय।

बकुल की मोटर जबलपुर रोड पर आई। वहां से सिर्फ दो-तीन मील की दूरी पर बापूसाहब की खदान थी। इसलिए बकुल ने अपने दीवानजी से कहा, “हम लोग खदान के इतने पास आ गये हैं, तो चलो, वहां चलें। रात को वहीं रह जायंगे और सुबह खदान देखकर नागपुर चलेंगे।” बकुल के इस विचार का पहले ताई ने विरोध किया। ड्राइवर और दीवानजी भी हिचकिचाने कहने लगे, “रास्ता ठीक नहीं है। भीतर बहुत दूर तक पैदल चलना पड़ेगा।” आदि-आदि, लेकिन बकुल के हठ के आगे सबको झुकना पड़ा। बापूसाहब बार-बार खदान पर जाते हैं, वहां बहुत दिनों तक रहा करते हैं, वहां दरअसल उन्हें क्या काम रहता है, उनके रहने और खाने-पीने का वहां कैसा प्रबंध है, यह देखने के लिए बकुल आतुर हो उठी थी। उसकी इस आतुरता का एक और भी कारण था। उसने अनेक बार बापूसाहब से खदान देखने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, लेकिन बापूसाहब ने इन्कार कर दिया

था। उसे वहां आने की उन्होंने अनुमति नहीं दी थी। इस कारण अनायास जो मौका आज आगया था, उसे हाथ से निकल जाने देने के लिए वह तैयार न थी।

पन्द्रह-बीस मिनट के अंदर ही उनकी मोटर खदान के नज़दीक आ पहुंची। रास्ता काफी खराब था। ऊपर से हवा की सरदी। ताई इस सरदी से अकड़-सी गई थीं। आसपास थोड़ा जंगल था। कहीं-कहीं खेतों में फसलें खड़ी थीं। मोटर धीरे-धीरे रास्ता तय करती चली जा रही थी। इसी समय एक जलते हुए दीपक का प्रकाश सामने दिखाई दिया। ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी। खदान की हद शुरू होगई थी। सामने एक फाटक था। उस फाटक का चौकीदार ड्राइवर को रोक रहा था। ड्राइवर और दीवानजी उससे फाटक खोलने के लिए कह रहे थे, लेकिन वह उसे खोलने को तैयार न था।

अंत में बकुल मोटर से बाहर आई और उसने चौकीदार से डाटकर कहा, “मैं मालकिन हूं। मैं हुक्म देती हूं कि दरवाज़ा खोल दो।”

“बाईसाहब !” बकुल के चरण छूकर चौकीदार बोला, “आप मुझे माफ करें। मैं प्रार्थना करता हूं कि मालिक की इजाज़त के बगैर आप मुझसे दरवाज़ा खोलने के लिए न कहें, क्योंकि यदि ऐसा होगया तो...”

“तो क्या होगा ?”

“मालिक मेरी जान ले लेंगे। गरीब पर दया कीजिये। आप चाहें, तो मैं अभी दौड़कर जाता हूं और मालिक से इजाज़त लिये आता हूँ।”

बकुल को मालूम था कि चौकीदार यदि बापूसाहब से इजाज़त लेने जायगा तो उसे इजाज़त कभी न दी जायगी। इसलिए उसने कहा, “लेकिन मालिक तो सो गये होंगे ?”

“नहीं बाईसाहब, अभी जाग रहे हैं।”

“क्या कर रहे हैं ?”

चौकीदार क्षण-भर के लिए मौन रहा। वह द्विविधा में था कि जो वह कहना चाहता था उसे कहे या न कहे। वह गर्दन झुकाकर बोला, “बहुत से मेहमान इकट्ठे हुये हैं। किसी औरत का नाच-गाना...” बकुल को चौकीदार के आगे के शब्द सुनाई न पड़े।

आकाश में बादल का नामोनिशान न होते हुए भी बकुल को लगा, जैसे उसपर बिजली गिर पड़ी हो। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। गला खुश्क हो गया और उसे ऐसा लगा मानों उसके बदन की सारी ताकत ने जवाब दे दिया है। क्या मैंने यह सब अपने पति के बारे में सुना है? यदि पहले कोई कहता कि उसके पति को नाच-गाने का शौक लग गया है तो शायद उसपर विश्वास ही न करती, लेकिन सामने खड़े आदमी के शब्दों पर अब अविश्वास की गुंजाइश कहां थी !

उस मनःस्थिति में बकुल को आबासाहब के शब्द याद हो आये, जो उन्होंने अपने बेटे के बारे में कहे थे। क्षणभर के लिए उसे ऐसा आभास हुआ मानों आबासाहब ही चांदनी में गुप्त रूप से उसके पास आकर उसके कान में यह सब कह रहे हैं। इसी समय चौकीदार बकुल के पैर छूकर बोला, “गरीब पर दया कीजिये, मालकिन ! कम-से-कम इस समय तो आप वहां न जायें।”

एक विलक्षण शक्ति बकुल के रोम-रोम में लहरा गई। उसने अपने मन में कहा, “चाहे कुछ भी हो, मैं वहां अवश्य जाऊंगी। मैं अपने पति को अपना घर छोड़ और कहीं भी न फंसने दूंगी।”

ताई और दीवानजी के रोकते-रोकते बकुल पगडंडी से आगे चल पड़ी। दीवानजी को भी उसके साथ जाना पड़ा। फाटक से थोड़ी दूर पहुंचते ही संगीत और हास्य के मिश्रित स्वर बकुल के कान में पड़ने लगे। चांदनी रात में दूसरों पर जादू कर देनेवाले संगीत के वे स्वर बकुल के बदन में जैसे आग लगा रहे थे। कड़ाके की ठंड में भी बकुल को ऐसा लग रहा था मानो वह जल रही है। वह खदान के नज़दीक के बंगले के बरामदे में पहुंची। उसने धीरे-से परदा हटाकर भीतर झांककर देखा। भीतर के कमरे में जो चित्र रंगा जा रहा था, उसे देखकर किसी भी पति-निष्ठ स्त्री की क्रोधाग्नि भभके बिना नहीं रह सकती थी। तकिये से टिके बैठे और सफेद चद्दरों से आच्छादित गद्दों पर अध-लेटे हुए बापूसाहब के मित्र शराब के नशे में चूर हो रहे थे, लेकिन फिर भी और पीये जा रहे थे और बेहोश हो रहे थे। हास्य की भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियां कमरे में गूंज रही थीं। तबले के ठेके पर पुतरिया-सी सजी हुई एक स्त्री नाज़ोअदा से गा रही थी और अपने साथ-साथ

दूसरों को भी बेहोश कर रही थी। बापूसाहब उससे बिल्कुल सटे बैठे हुए थे। प्याले की शराब को आकंठ पीते हुए बीच-बीच में चिल्ला रहे थे—
 “बहुत अच्छा ! क्या कहने ! वाह-वाह ! क्या खूब !...”

उस दृश्य को देखना बकुल को असहनीय होगया। वह और भी थोड़ी देर यदि वहां रुकती तो शायद जोर से रो उठती। वह भट से आवेश में लौट पड़ी।

समुद्र की ओर बहती जानेवाली नदी को कितने ही छोटे-बड़े गढ़ों, शिलाखंडों, उपत्यकाओं और कंदराओं का सामना करना पड़ता है। कुछ स्थानों पर वह नदी अपनी सारी शक्ति बटोरकर इन बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लेती है और कई बार उनके सामने झुककर, स्वयं अपना प्रवाह मोड़कर, अपने लिए नया रास्ता खोज लेती है।

मानव-जीवन ठीक इसी तरह है। उसे सुख के दिन आसानी से नहीं मिलते। इसके विपरीत मार्ग में जो बाधाएं और संकट उपस्थित होते हैं, उनका मुकाबला करना पड़ता है और फिर जो सुख पल्ले पड़ जाय, उसी पर संतोष कर लेना पड़ता है।

बकुल ने अपने जीवन के सामने नदी का ही आदर्श रखा था। अण्णासाहब ने बड़े प्रेम से उपदेश देते समय बकुल से कहा था, “स्त्री नदी की तरह होती है। जहां तक सुख का सवाल है, स्त्री का जीवन हमेशा भाग्यशाली कभी नहीं हुआ करता। लेकिन यदि सुख प्राप्त कर लेना है तो आनेवाले संकटों का सामना करने, निराश न होने और हिम्मत न हारने से ही वह मिल सकता है।”

थोड़ी ही देर में बकुल के बंगले में आने का पता बापूसाहब को चल गया। वे क्रोध से उन्मत्त होगये। अपने-आप पर उनका अधिकार न रहा। उस जोश में उन्होंने बड़ा सितम ढाया। पिता-तुल्य दीवानजी पर उन्होंने हाथ उठा दिया और बेचारे चौकीदार को तो बकुल के सामने ही कोड़ों से मार-मारकर अधमरा कर दिया। बकुल से बार-बार यह प्रश्न पूछकर कि “मेरी इजाजत बगैर तुम खदान पर क्यों आईं” बुरी तरह आतंकित कर दिया और ड्राइवर को हुक्म दिया कि वह उसे मोटर में बैठाकर तुरंत नागपुर ले जाय।

अण्णासाहब को सारी बातें सुनाकर अंत में बकुल ने कहा, “अब आप ही बताइये अण्णा, मैं क्या करूं?”

अण्णासाहब के सामने सबसे बड़ा सवाल यह था कि अपनी इकलौती बेटी को वह किस तरह सांत्वना दें और किस तरह उसके दुःख को हल्का करें ? उन्होंने उसे हिम्मत बंधाने के लिए अनेक बातें कहीं और अंत में बोले, “बेटी, स्त्री का जीवन नदी की तरह होता है। उसे चट्टानों, उपत्यकाओं और कंदराओं के बीच से गुजरना पड़ता है। कभी-कभी वह मार्ग की बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लेती है, कभी-कभी हार खानी पड़ती है। तुम्हें भी गृहस्थी में झुककर चलना होगा। तुम्हें चाहिए कि जैसे बने, बापू-साहब को सम्हाल लो।”

“लेकिन, अण्णा, मेरा यह पक्का विश्वास हो गया है कि अब उन्हें संभालना असंभव है।”

“छिः-छिः, तुम्हें इस तरह निराश नहीं होना चाहिए, बेटी। मैं स्वयं बापूसाहब को समझाऊंगा। तुम यह पता लगाओ कि उनके मित्र कौन-कौन हैं। मुझे ताज्जुब है कि मैनेजर ने ये बातें अब तक मुझसे क्यों नहीं कहीं ?”

“आपके कान में ये बातें कैसे पहुंचेंगी अण्णा ? पहले के मैनेजर नौकरी छोड़कर चले गये हैं और उनकी जगह अनंत दीक्षित नाम के कोई नये मैनेजर आ गये हैं, ऐसा मैंने सुना है।”

“तो इससे क्या होता है ? बापूसाहब के इस प्रकार के बर्ताव के बारे में उन्हें मुझे बताना चाहिए था, यह उनका फर्ज था।”

“यदि मैनेजर उनसे मिला हुआ हो तो यह कैसे संभव है ? नौकरों को क्या ? यदि उन्हें स्वयं ही मजा करने को मिले तो वे क्यों उसमें बाधक बनना चाहेंगे ?”

“अच्छा, कोई हर्ज नहीं। तुम चिन्ता न करो। मैं इसका इंतजाम किये देता हूं। पर बेटी, इस बात पर मन को इतना हैरान करने से कोई लाभ नहीं। गृहस्थी धूप-छांह का खेल है। ऐसा तो चलता ही रहेगा।”

अण्णासाहब के शब्दों से बकुल को कुछ-कुछ सांत्वना मिली। अपने सामने नदी का आदर्श रखकर उसने सुख की आशा त्याग दी और गतिमान परिस्थिति से आत्मसात होने का वह प्रयत्न करने लगी।

धीरे-धीरे एक वर्ष निकल गया। पति के अविवेकी और अनिर्बंध जीवन से ऊबकर प्राण त्यागने की बातें करनेवाली बकुल आज कन्हान नदी के किनारे-

वाले अपने कामठी के नवनिर्मित बंगले में कुछ संतोष का जीवन बिता रही थी। जीवित रहने के लिए मजबूर थी वह। आखिर जिंदगी-भर रोया भी तो नहीं जा सकता ! आग पर हमेशा चलते रहने का अभ्यास करनेवाले को अंत में आंच महसूस नहीं होती। बकुल को दुःख सहन करने का अभ्यास हो गया था। उसने यह जान लिया था कि पति उसकी सामर्थ्य के बाहर है। उनसे गृहस्थी के सुख की आशा करना व्यर्थ है। एक वयोवृद्ध और अनुभवी के नाते अण्णासाहब ने उन्हें समझाने में कुछ भी उठा न रखा था, लेकिन अंत में देखा गया कि उसका प्रभाव अच्छा होने के बजाय उलटा ही हो रहा है। उन्होंने अण्णासाहब के प्रति मनमुटाव का भाव बना रखा था। नतीजा यह कि वे अपने-आपको अण्णासाहब की हवा ही न लगने देते थे। उन्होंने अपनी अलग दुनिया बना ली थी। उस दुनिया में केवल मौज को ही स्थान था।

नागपुर की कोठी से कामठी का बंगला अधिक विशाल था। वहां का वातावरण खुला हुआ और उल्लासमय था। नदी के किनारे हरे-हरे पेड़ों की छाया में और आवादी से दूर होने के कारण उस स्थान की अपनी निराली शान थी।

बकुल उस बंगले की वाई ओर के भाग में रहा करती थी। जब वह सामनेवाले कमरे में होती तो सामने का बाग उसके दिल पर जादू कर दिया करता था। भांति-भांति की क्यारियों में देशी और विलायती पौधों पर खिले रंगबिरंगे फूल देखकर ऐसा आभास होता, मानों वह कोई बहुत ही मूल्यवान निधि हो। बंगले के सामने कमानादार बरसाती थी। उसके निकटवर्ती फव्वारे से उड़नेवाले जल पर जब सूर्य की किरणें पड़तीं तो उनमें से इंद्रधनुष के रंग बिखर जाते। जिस तरह कोई पालकी पर चंवर डुलाये, उसी तरह वायु-लहरियों की ताल पर 'रायल पाम' के पत्ते झूमा करते। बकुल के शयनागार की खिड़की के नज़दीक रजनीगंधा का पौधा लगा था। उसकी मंद सुगंध से बकुल का मन खिल उठता था।

बंगले के पीछे एक बरामदा था। वहां से दिखाई देनेवाला प्राकृतिक सौंदर्य अद्वितीय था। बरामदे के सामने के हिस्से में संतरे के पेड़ थे, जिनकी वाढ़ अभी पूरी न होने से नदी का दूसरा किनारा स्पष्ट दिखाई देता था। कन्हान नदी के प्रवाह में बीच-बीच में रेत के पठार दीख पड़ते थे।

कामठी में बाहर के लोगों से बकुल का विशेष परिचय नहीं हुआ। बंगले के आसपास मकान ही न थे। हां, तीन-चार फर्लांग की दूरी पर फौजी अफसरों के कुछ बंगले थे। उन बंगलों के लोगों से जरूर उसका थोड़ा-बहुत परिचय हो गया था। कामठी में उन दिनों अंग्रेज फौजी अफसर रहा करते थे। उनमें से मेजर हिड्ले की लड़की केथरिन और मेजर वेन की पत्नी इसाबेल से बकुल की बड़ी घनिष्ठता हो गई थी। बकुल कान्वेंट में पढ़ी होने से अंग्रेजी बड़ी सफाई से बोलती थी। फ्रेंच भाषा का भी उसे ज्ञान था। अंग्रेजी की उसने बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी थीं। इसलिए अंग्रेजों से परिचय करने और उसे बढ़ाने में उसे कोई कठिनाई न हुई। अंग्रेज स्त्री-पुरुष बकुल से मिलने के लिए दो-चार बार उसके बंगले पर आ चुके थे।

उन्हें बकुल का रूप और स्वभाव बहुत अच्छा लगता था। वे उसे 'भारत की रूपरानी' कहकर उसकी सराहना करते थे।

बकुल सचमुच रूपरानी थी। उसकी बड़ी-बड़ी काली-कजरारी स्वप्निल आंखों में जादू था। इसाबेल ने तो बकुल के दो-चार चित्र भी खींच लिये थे। उनका आग्रह था कि बकुल उनके बंगले पर आये और उनके क्लब की सदस्य बने।

लेकिन उसका कहीं आना-जाना उसके पति को पसंद नहीं होगा, यह वह जानती थी और इसलिए वह उन लोगों के यहां नहीं जाती थी। वह यह भी जानती थी कि इन अंग्रेज लोगों का जीवन मौज उड़ाने, एक-दूसरे के घर आने-जाने, क्लब में टेनिस और विलियर्ड खेलने और सुबह घुड़सवारी करने में बीतता है।

बकुल जैसी तरुणी अकेली घर में बैठकर दिन किस तरह बिताती है, यह उनके लिए आश्चर्य की बात थी। इसलिए और भी वे लोग उससे अपने यहां आने का आग्रह करते थे। केथरिन बकुल की ही उम्र की एक सुंदर लड़की थी। उसके बाल काले सुनहले, किन्तु घुंघराले थे। नासिका बिल्कुल सीधी। आंखों की नीली पुतलियां बड़ी ही चंचल और पानीदार। हँसते समय जब उसके होठ एक-दूसरे से अलग होते तो छोटे-छोटे दांतों की सुंदर पंक्ति उसके रूप में चार चांद लगा देती। जब वह खुलकर हँसती तो उसके गालों में गड्ढा पड़ जाता था।

बकुल के घर आती तो उससे कहती, “यदि नाराज न हों तो एक बात कहें ?”

“हां, कहो।”

“आप बिल्कुल बूढ़ी नानी जैसी हैं।”

“बूढ़ी नानी जैसी ? सो कैसे ?”

“अजी, चौबीसों घंटे आप घर में घुसी रहती हैं, नानी की तरह। तब आपको जवान कैसे कहा जाय ? हम लोगों में तो बूढ़े भी जवानों को लज्जित कर देते हैं। यदि आप चाहें तो मैं आपको टेनिस खेलना सिखा दूंगी। घोड़े पर चढ़ना सिखा दूंगी। बोलिये, क्या आप सीखना चाहती हैं ?”

बकुल के शौकीन और तरुण मन को केथरिन का यह निमंत्रण बड़ा आकर्षक लगा। लेकिन उसे स्वीकार करने की हिम्मत उसमें अभी तक नहीं आ पाई थी। इसमें शक नहीं कि उसने मन में निश्चय कर लिया था कि अब में रोऊंगी नहीं और न अपने भाग्य को दोष देती हुई अपना जीवन बिताऊंगी। केथरिन और इसाबेल से अधिक घनिष्ठता बढ़ाऊंगी, उनके साथ रहकर नई-नई कलाएं सीखूंगी और स्वयं अपनी उन्नति करूंगी। तात्पर्य यह कि किसी-न-किसी नई बात में अपनेको खो देने का उसने विचार कर लिया था।

नागपुर के कान्वेंट में जो फ्रेंच नन उसे पढ़ाया करती थी, वही अब कामठी के कान्वेंट में आ गई थी। उसने कामठी में चित्रकला की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोला था। इसाबेल उस शाला में जाकर महज शौक के लिए तैल-चित्र बनाने की शिक्षा प्राप्त करने लगी।

बकुल की बचपन से ही चित्रकारी, संगीत और कसीदा काढ़ने की ओर रुचि थी। इन कलाओं में उन्नति करके यश प्राप्त करने का स्वप्न उसने अपने मन में संजोया था। लेकिन नागपुर में रहते हुए देशमुख की बहू के बाहर कहीं जाने का रिवाज न होने के कारण बकुल को मौका ही नहीं मिला था। परंतु अब बकुल ने इन कलाओं को सीखने का निश्चय कर लिया था। इसीलिए हमेशा के लिए कामठी के बंगले में रहने की तैयारी भी उसने धीरे-धीरे शुरू कर दी थी। नागपुर के उस कुंद वातावरण में पुनः जाकर रहना अब उसके लिए संभव न था। नागपुर और कामठी के बीच सिर्फ १०-१२

मील का फासला होने से बकुल का हफ्ते में कम-से-कम एक चक्कर नागपुर का ज़रूर लग जाता था। त्योहार और धार्मिक उत्सव कोठी में ही मनाये जाते थे। इसके अलावा बार-बार ताई से मिलने जाना भी बकुल के लिए आवश्यक था। अण्णासाहब का स्वास्थ्य बीच-बीच में ठीक न रहने से बकुल जब नागपुर जाती तो उनसे भी मिल आया करती थी।

बकुल को बचपन में सिनेमा देखने का शौक पड़ गया था। उन दिनों कामठी में सिनेमाघर न थे। इसलिए जब नागपुर में कोई अच्छी फिल्म आती तो उसे देखने के लिए भी वह वहां जाया करती थी।

ऐसे कुछ कामों के लिए जब वह नागपुर आती थी तो कोठी में एकाध दिन रह आया करती थी। बापूसाहब अक्सर खदान पर ही जाकर रहा करते थे। इसलिए कामठी के बंगले में बकुल को अकेले ही रहना पड़ता था। लेकिन इस एकाकीपन में भी उसने अपने आसपास एक प्रकार का स्वराज्य निर्मित कर लिया था। उस स्वराज्य में बकुल का समय आनंद में बीतने लगा था। प्रकृति, पुष्प-वृक्ष और पशु-पक्षी उसके साथी थे। पढ़ने का शौक तो उसे पहले से ही था और अब कामठी आने के बाद वह और अधिक बढ़ गया था। उसने चुनी हुई पुस्तकों की एक लाइब्रेरी ही बना ली थी। इसाबेल भी उसे अंग्रेज़ी की नई-नई पुस्तकें और उपन्यास पढ़ने को ला दिया करती थी।

बकुल के इस नवजीवन में एक दूसरी नवीन घटना का समावेश होगया था। उसके जीवन-नाटक में उस घटना का बड़ा भारी महत्व था।

दो महीने पहले की बात है। कामठी के बंगले में रहने के लिए आये बकुल को कुछ ही दिन हुए थे। उस दिन बकुल शाम को अपने बाग की हरी दूब पर टहल रही थी। पति दोपहर को किसी काम के निमित्त नागपुर गये थे। इस कारण बंगले में सन्नाटा था। इसी समय मोटर-साइकिल से कोई व्यक्ति बंगले में आया। बकुल ने अनुमान किया कि शायद कोई बापूसाहब से मिलने आया होगा।

इसी समय नौकर संदेश लाया, “सरकार, आपसे कोई मिलने आये हैं। उन्होंने यह कार्ड दिया है।”

बकुल ने कार्ड हाथ में ले लिया। वह सुंदर अक्षरों में छपा था।

उसपर लिखा था—अनन्त दीक्षित, मैनेजर, देशमुख माइनिंग कैंप, रामटेक ।

बकुल ने ये अक्षर पढ़े । उसके चेहरे के भाव एकदम बदल गये । उसे वह पिछला कटु प्रसंग याद हो आया । खदान का बंगला, उसमें हो रहा नाच-गाना, गाने के साथ बापूसाहब और उनके मित्रों का चल रहा शराब का दौर—इस सारे कार्य-क्रम का इंतजाम करनेवाला खदान का मैनेजर अनन्त दीक्षित ।

दीक्षित के बारे में बकुल का मत दूषित हो गया था । इसलिए उसने किंचित भुंभलाहट से नौकर से पूछा, “क्यों आये हैं वे साहब ?”

“मैं नहीं जानता, हुजूर ! कहते हैं, मिलना है ।”

“उनसे जाकर पूछो कि मुझसे मिलना है या साहब से ?”

बकुल का हुक्म पाते ही नौकर वापस चला गया । त्रिपुरी पूर्णिमा को उसने जो दृश्य देखा था, उसके कारण उसके मन में भयंकर क्रोध पैदा हो गया था । उसका यह विचार बन गया था कि खदान के बंगले में जो मह-फिलें हुआ करती हैं, उनका इंतजाम करने में बापूसाहब को यह मैनेजर भी मदद देता होगा । उसे यह भी लगा था कि यह मैनेजर स्वयं भी एक रंगीन व्यक्ति होगा । खदान के मजदूरों पर मालिक और वहां के अधिकारियों द्वारा होनेवाले अन्यायों और अत्याचारों के जो समाचार उसे मिलते रहते थे, उनमें भी इसी व्यक्ति का प्रमुख हाथ रहता होगा । इस प्रकार कितने ही दूषित मत अनन्त दीक्षित के बारे में बकुल ने बना लिये थे । नौकर फिर वापस आया । बोला, “हुजूर, साहब आपही से मिलना चाहते हैं ।”

बकुल क्षण-भर के लिए सोच में पड़ गई कि क्या उत्तर दे । तभी एक साथ उसके मनमें विचार आया कि उसे बुलाकर आड़े हाथों लेना चाहिए ।

वह नौकर से बोली, “उन्हें यहां भेज दो और माधवीसींग से यहां कुर्सियां रखने को कह दो ।”

माधवीसींग ने बेत की चार कुर्सियां और एक मेज लाकर वहां रख दी । एक कुर्सी पर बकुल स्वेटर बुनती हुई बैठ गई । अनन्त दीक्षित आये । बकुल उनकी ओर पीठ करके बैठी हुई थी ।

अनन्त दीक्षित ने इससे पहले बकुल को नहीं देखा था । इसलिए उसके

बारे में उन्होंने अपनी एक अलग ही धारणा बना रखी थी। उनका ख्याल था कि सौ० बकुलाबाई देशमुख पुरानी रीति-रिवाज की कर्मनिष्ठ आचार-विचारों की और अपने श्रीमंती ठाठ-बाट से ग्रस्त शानदार महिला होंगी, लेकिन उसके पृष्ठभाग को देखते ही दीक्षित को अचरज हुआ। वह उन्हें आधुनिक वेश-भूषा से सुसज्जित बीस-बाईस वर्ष की एक सुंदर तरुणी दिखाई दी।

अनंत दीक्षित के 'नमस्कार' कहते ही बकुल ने पीछे मुड़कर देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विस्मय से कहनेवाली थी कि क्या आपही अनंत दीक्षित हैं, लेकिन बात मुंह से नहीं निकली। दीक्षित का जो चित्र उसने अपने मन में बना रखा था, उससे वह सर्वथा भिन्न थे। वह ऊंचे और गठीले बदन के व्यक्ति थे। उनकी आंखों की पुतलियों का रंग किंचित मटमैला था, लेकिन उनकी आंखों से निष्पाप-वृत्ति के भाव टपक रहे थे। होठों की रचना सुडौल तो थी ही, निरंतर खिलता रहनेवाला प्रसन्न भाव भी उनमें से झांक रहा था। वे एक कीमती रेशमी सूट पहने हुए थे, जो उनकी देह पर फब रहा था।

बकुल को याद आया कि इस व्यक्ति से उस दिन सिनेमाघर में भेंट हुई थी। दीक्षित को भी इसका ध्यान हो आया। सिनेमाघर में एक अंग्रेजी फिल्म लगी थी। उसमें ग्रेटा गार्बो का अभिनय बड़ा ही सुंदर था। थियेटर में बड़ी भीड़ थी। सारी सीटें घिर चुकी थीं। बड़ी मुश्किल से बकुल और वसुधा को टिकट मिले थे। बत्तियां गुल हो चुकी थीं। सिनेमाघर के आदमी ने अंधेरे में टार्च की रोशनी से दो खाली कुर्सियां उन्हें दिखा दीं। वे उनपर बैठ गईं। फिल्म शुरू हो रही थी। तभी एक व्यक्ति आकर बोला, "देवी-जी, माफ कीजिये ! मैं यहां पहले से बैठा हूं। उस तरफ जो दो कुर्सियां खाली हैं, शायद वे आपकी हों।"

उस व्यक्ति की बात सुनकर बकुल बोली, "क्षमा कीजिये, साहब। यहां के आदमी ने हमें तो यही कुर्सियां बताई थीं। खैर, कोई बात नहीं ! चलो, वसुधा।"

वे दोनों उठीं। लेकिन उठते-उठते वसुधा ने धीरे-से कहा, "लगता है, कुछ लोग शिष्टाचार नहीं जानते।"

इस प्रसंग की याद जिस तरह बकुल को आई, उसी तरह अनंत दीक्षित को भी आई। इसीलिए वे कुछ भेंपे भी। उस दिन उन्होंने एक तरह से बकुल का अपमान कर दिया था। उनके चेहरे पर कुछ परेशानी के भाव झलक उठे थे।

बकुल ने उन्हें देखते ही मन-ही-मन कहा, “आदमी तो बड़ा भला मालूम होता है। रहन-सहन भी कुल मिलाकर उच्च वर्ग का लगता है। चेहरे से विद्वान जान पड़ता है। ताज्जुब है कि ऐसा आदमी उसके पति की रंगीनियों में शामिल होता है !”

अपने भावों को दबाकर बकुल ने पूछा, “कहिये, मुझसे आपका क्या काम है ?”

‘काम तो कोई खास नहीं है। इस तरफ आया था। सोचा, आपसे भी मिलता चलूं !’

“मुझसे ? मुझसे मिलने को भला आपका जो क्यों हो आया ?”

बकुल के इस प्रश्न से दीक्षित क्षण-भर के लिए बड़े असमंजस में पड़ गये। बकुल उनसे इस प्रकार क्यों बोली रही है, यह रहस्य उनकी समझ में नहीं आ रहा था। असमंजस को तोड़ती हुई बकुल बोली, “दीक्षितसाहब, एक बात तो बताइये। आज आपको मेरी इतनी चिंता मालूम हो रही है कि आप यहां आए, लेकिन खदान पर आपके मालिक जब नाना प्रकार की रंगीनियों में फंसे रहते हैं, तब आपकी नींद कहां चली जाती है ? या मैनेजर के नाते आप इन सब महफिलों का प्रबंध किया करते हैं ?”

बकुल का यह आरोप सुनकर अनंत दीक्षित को थोड़ी चिढ़ हुई, लेकिन उसकी रंचमात्र भी झलक अपने चेहरे पर उन्होंने प्रकट न होने दी। बोले, “मिसेज देशमुख, आप मुझे गलत समझ रही हैं। नौकरी पर आये मुझे अभी कुछ ही दिन हुए हैं। यहां तो पहले से ही देशमुखसाहब और उनके दोस्तों के मौज के कार्यक्रम चल रहे हैं। मेरा ख्याल था कि बड़े लोगों में ऐसे जलसे मनाने की शायद प्रथा ही होती होगी।”

दीक्षित की इस बात से बकुल का समाधान होना तो दूर, उसका क्रोध और भी भड़क गया। यह आरोप लगाकर कि बड़े लोगों में ऐसे जलसे मनाने की प्रथा ही होती होगी, यह आदमी उसके पति के साथ गुलछरें

उड़ाता है ! उसका मन दीक्षित के प्रति और भी कठोर हो गया। वह बोली, “देखिये, दुनिया कितनी अजीब है ! अमीरों के दुर्गुणों की प्रशंसा करने से भी वह बाज़ नहीं आती। लेकिन दीक्षितसाहब, आप यह भूल गये कि अमीर हो या गरीब, उनकी स्त्रियों की भावनाएं, उनके मन के उद्गार, भिन्न नहीं हुआ करते। रंगीनियों में डूबे किसी लखपति की पत्नी के क्या भावनाएं न होती होंगी ? क्या उसके पास हृदय न होता होगा ? यह देखकर कि अपना पति व्यभिचारी हो रहा है, क्या उसके दिल के टुकड़े-टुकड़े न हो जाते होंगे ? या कि आप लोगों का ख्याल है कि अमीर की औरतें सिर्फ सोने-चांदी और हीरे-जवाहरातों की गुड़ियां होती हैं ?”

बोलते-बोलते बकुल भावनाओं से इतनी विह्वल हो गई कि उसकी आंखों में आंसू छलछला आये। पर उसी क्षण बकुल को अपनी इस दुर्बलता पर खेद हुआ। दीक्षित के सामने इतना अधीर होना उसके स्वाभिमानी मन को नहीं भाया।

अनंत दीक्षित तो यह देखकर स्तंभित हो गये। उन्हें अनुभव हुआ कि अनजाने ही सही, पर बकुल के प्रति अन्याय हुआ है। अपराधी मन से उसे समझाने के लिए वे कहने लगे, “मिसेज देशमुख, माफ करें। कुछ गलत-फहमी हो रही है।”

लेकिन बकुल ने उनकी बात नहीं सुनी। उसके हृदय में दुख का आवेग बहुत बढ़ गया था। यह सोचकर कि और कोई अशोभनीय बात उसके मुंह से न निकल जाय, वह कुर्सी से उठी और बंगले के भीतर चली गई।

बकुल के पिछले दो दिन बहुत ही अस्वस्थ अवस्था में बीते। तीसरे दिन शाम को वह केथरिन के घर गई। मेजर हिड्ले के बंगले के सामने-वाले मैदान में स्वयं मेजर साहब, केथरिन, इसाबेल और उनके कुछ मित्र पोलो खेल रहे थे। बेलर जाति के काले-स्याह घोड़े विजली की गति से दौड़ रहे थे। घोड़े पर सवार प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में पोलो खेलने की एक-एक स्टिक थी। खिलाड़ी के इशारे पर घोड़े बड़े अनुशासन के साथ, किंतु बड़ी चतुराई से दौड़ रहे थे। इन सब खिलाड़ियों में इसाबेल और केथरिन विशेष सिद्धहस्त दिखाई दे रही थीं।

सूर्यास्त होते ही खेल बंद हो गया। केथरिन ने अपना घोड़ा बकुल के पास लाकर खड़ा कर दिया और चट नीचे उतरकर वह उसके पास जाकर बैठ गई। वह पसीने से तरबतर हो गई थी। उसके चेहरे की गुलाबी छटा अब और भी अधिक निखर आई थी। उसकी नीलवर्ण आंखें मानसिक संतोष से चमक रही थीं और अधूरे कटे हुए सुनहले बाल उसके मुंह की शोभा को और भी अधिक बढ़ा रहे थे। थोड़े ही समय बाद इसाबेल भी अपना घोड़ा लेकर वहां आ पहुंची और बोली, “बकुल, आओ, जरा घोड़े पर बैठकर देखो। बैठने पर तुम्हें पता चलेगा कि घुड़सवारी का क्या आनंद है ?”

बकुल के दिल में आया कि इसाबेल का आग्रह स्वीकार कर ले, लेकिन फिर यह सोचकर कि पति से पूछे बिना वैसा करना उचित न होगा, वह चुप रही। लेकिन सच यह है कि जीवन का आनंद लूटनेवाले इन लोगों के प्रति उसे ईर्ष्या हुए बिना न रही।

धीरे-धीरे सब खिलाड़ी आकर एक जगह इकट्ठे हो गये। हरएक पसीने से नहा रहा था। मेजर हिड्ले की आज्ञा से नौकर बर्फ में रखी बियर की चार बोतलें ले आया और हरएक के सामने रखे हुए कांच के खाली गिलास में उसने वह पेय ढाल दिया। बकुल को छोड़कर बाकी सब लोग

बियर पीने लगे। इसी समय केथरिन ने बकुल से भी थोड़ी बियर पीने का आग्रह किया, लेकिन शर्बत छोड़कर बकुल ने और किसी भी प्रकार का पेय पीने से इंकार कर दिया।

बकुल का यह समय बड़े आनंद में बीता था। उसके मन में काफी ताजगी आ गई थी। लेकिन जब वह अपने बंगले पर जाने के लिए रवाना हुई तो उसे फिर एकाकीपन अनुभव होने लगा। उसके बंगले के बाईं ओर से नदी की ओर जानेवाली सड़क पर उसने ड्राइवर से गाड़ी रोक देने के लिए कहा।

जहां मोटर रुकी थी, वहां से कोई एक फर्लांग की दूरी पर नदी की धारा मंद गति से बह रही थी। बकुल धीरे-धीरे नदी के किनारे तक पैदल चली गई। नौड़ों को लौट रहे पक्षियों के दल आकाश में तेजी से उड़ रहे थे। किनारे पर खड़े इमली के बड़े-बड़े पेड़ों की काली-काली छाया नदी के पानी में पड़ रही थी। चारों ओर शांत वातावरण छाया हुआ था। बकुल को वह बहुत ही उदास प्रतीत हुआ। नदी के प्रवाह की ओर टकटकी लगाकर देखते हुए अंत में उसने एक दीर्घ श्वास ली और घर लौटने की जल्दी न होने के कारण, वह बांध पर की एक शिला पर बैठ गई। आसपास दृष्टि दौड़ाते हुए उसे दोपहर को अनंत दीक्षित द्वारा भेजे गये पत्र की याद हो आई। सच पूछा जाय तो उसने स्वप्न में भी न सोचा था कि वे उसे पत्र लिखेंगे। लेकिन उन्होंने उसे पत्र भेजा था। लिखा था—

“जान पड़ता है कि मेरे बारे में आपको बहुत गलतफहमी हो गई है। कुछ दिन पहले जो घटना घटी, उसका मुझे बड़ा खेद हो रहा है। मैं आपकी भावनाओं को जरा भी चोट पहुंचाना नहीं चाहता था। मुझे माफ कर दीजिये। आपकी गलतफहमी को दूर करने के लिए अगर मुझे एक मौका और दे सकें तो बड़ा अच्छा होगा।”

अनंत दीक्षित के इस पत्र को बकुल कई बार पढ़ चुकी थी। उनके प्रांत कलुषित हुआ उसका मन कहता था, “वे बापूसाहब के पिटू हैं, ढोंगी हैं। मुझे उनकी जरा भी परवा न करनी चाहिए।” लेकिन उसके दूसरे मन को खेद होता था। वह कहता था, “पहली ही मुलाकात में तूने अनंत दीक्षित को भला-बुरा कहा और उन्हें दोष दिया, यह ठीक नहीं हुआ। क्या इस तरह

लोगों को दोष देकर तेरे जीवन की समस्याएं हल हो जायंगी ? पति में जो दुर्गुण हैं, उसका अपराध दूसरों के सिर मढ़ने से क्या लाभ ?”

इस तरह अनेक विचार उसके मन में उठ रहे थे, तभी उसे सड़क पर किसीकी पदचाप सुनाई दी । बकुल ने पीछे मुड़कर देखा । अनंत दीक्षित थे !

दोनों एक-दूसरे को देखकर सहम गये । दीक्षित बोले, “आप ? मैंने कभी न सोचा था कि आप इधर घूमने आई होंगी ।”

बकुल ने कुछ हड़बड़ाकर गर्दन झुका ली । वह मौन रही । दीक्षित को लगा कि शायद उसका इस तरफ घूमने आना बकुल को सूचित नहीं हुआ । इसलिए उन्होंने कहा, “माफ कीजिये मिसेज देशमुख, यदि मेरा यहां आना और रुकना आपको पसंद न हो, तो मैं तुरंत लौट जाता हूं । लेकिन... अब चूंकि अनायास मुलाकात हो ही गई है, इसलिए जाने से पहले उस दिन की घटना के लिए मैं खेद प्रदर्शन करना चाहता हूं । और... और, आप मुझे माफ कर देंगी, ऐसी आशा भी है ।”

अनंत दीक्षित की आवाज और शब्दों में बड़ी विनय थी, बड़ा आकर्षण था । यद्यपि वे बापूसाहब की खदान के मैनेजर थे, फिर भी बकुल को वह पराये मालूम हों, यह स्वाभाविक ही था । बकुल का मन हुआ कि कह दे कि दीक्षित साहब, जो बात हो गई सो हो गई । अब दोनों को चाहिए कि उसपर हमेशा के लिए परदा डाल दें, जिससे किसीको किसीसे माफी मांगने या खेद प्रदर्शित करने की जरूरत न रहे, लेकिन ये शब्द उसके मुंह से बाहर न निकले । उसकी चुप्पी देखकर अनंत दीक्षित ने पूछा, “क्या मैं यहां बैठ सकता हूं ? कोई हर्ज तो नहीं ?”

उनके इस प्रश्न से बकुल को कुछ संकोच-सा हुआ । उसने गरदन उठाकर उनकी ओर देखा । उनसे बातें करूं या न करूं, ये किस किस के व्यक्ति हैं, इसका अंदाज करने के लिए उसने उनके चेहरे की ओर स्थिर दृष्टि से देखा ।

उधर दीक्षित बकुल की ओर बड़ी सहानुभूति और स्नेह से देख रहे थे । उनकी दृष्टि में झलकते भावों से उनकी सज्जनता और निष्कलंकता प्रकट हो रही थी । बकुल को उनकी यह दृष्टि डूबते को तिनके का सहारा जैसी

लगी। उसकी हिम्मत बंधी। उसके मन पर उनके प्रति शंका का जो भार था, वह क्षणभर में दूर हो गया। अचानक संकेत से उसने उत्तर दे दिया, “जी-हां, आप बैठिये, शौक से बैठिये।”

लेकिन उसी समय उसे विचार हुआ कि यह मनुष्य भले ही बड़ा स्नेह-शील दीखता हो, फिर भी मेरा और उसका क्या संबंध? उसे भी मेरे साथ इतनी घनष्टिता से व्यवहार करने की क्या आवश्यकता है? उसे मेरे प्रति सहानुभूति और दया क्यों रखनी चाहिए? मेरा पति भले ही मुझसे प्रेम न करता हो, पर इसके लिए एक पराये को चिंता प्रदर्शित करने का क्या अधिकार है?

इसी तरह के और भी कुछ विचार बकुल के मन में उठे। इसी समय दीक्षित बकुल से पांच-सात हाथ दूर पर पड़े पत्थर पर बैठ गये। उन्होंने बकुल की ओर ध्यान से देखा।

बकुल की उस समय की किंचित उदास मूर्ति मन में एक प्रकार का आदर और अपनत्व पैदा कर देनेवाली थी। उसकी बड़ी-बड़ी काली-काली आंखों में उदासी ने एक अलग ही सौंदर्य धारण कर लिया था। लेकिन उसकी घनी, कमानदार, सुडौल भौंहें और ऊंचा ललाट उस स्थिति में भी उसके दृढ़ स्वभाव का परिचय दे रहे थे।

दीक्षित सोच रहे थे—अपने जीवन में बकुल जैसी रूपवती और स्नेह-शील पत्नी पाने पर भी बापूसाहब को उसके प्रति कोई आकर्षण न मालूम हो, यह कितने दुर्भाग्य की बात है? बाहर की कृत्रिम सौंदर्य से सजी हुई स्त्रियों पर वे इतने आसक्त क्यों हैं? क्या हृदय को गुदगुदा देनेवाली बकुल की दृष्टि का उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता? क्या इसके भावों को देखकर उनका हृदय नहीं पसीज उठता? इसके जीवन के दुख को क्या वे कभी जान नहीं सकेंगे?

अनंत दीक्षित एक पराये व्यक्ति थे। उन्होंने बकुल को केवल दो बार देखा था, लेकिन उन मुलाकातों में ही उनके मन में उसके प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी।

उसकी उदास मूर्ति को देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। वे बोले, “मिसेज देशमुख, परसों मेरे कारण आपको दुःख हुआ, इसका मुझे खेद है।

सच पूछा जाय तो उस दिन खदान पर जो घटना हुई थी, उसके लिए खेद प्रदर्शित करने को ही मैं आपके पास आया था, क्योंकि अण्णासाहब ने मुझसे कहा था कि खदान पर जो भी घटनाएं होती हैं, उन सबकी थोड़ी-बहुत जिम्मेदारी मेरी है। शायद आपका भी यही ख्याल है। एक प्रकार से आप सबका यह सोचना स्वाभाविक भी है, लेकिन...लेकिन...”

दीक्षित थोड़ी देर रुके। उन्होंने बकुल की ओर देखा। वह उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। यह देखकर दीक्षित को अच्छा लगा और वे आगे कहने लगे, “सच मानिये, मैंने इस मामले में वापूसाहब को कोई बढ़ावा नहीं दिया। इतना जरूर है कि उन्होंने जो-जो हुक्म दिये, उन्हें मैं पूरा करता रहा हूं। उनके और मेरे बीच मालिक और नौकर का संबंध होने के कारण ऐसा करने के सिवा और चारा भी क्या है। परंतु इतने पर भी यदि आपका यह ख्याल हो कि मेरे कारण ही आपके सुख पर पानी फिर रहा है तो मैं इसी क्षण अपनी नौकरी से इस्तीफा देने के लिए तैयार हूं। आपके स्त्री-हृदय को और आपकी भावनाओं को मैं पूर्णरूप से अनुभव करता हूं।”

बकुल ने अनंत दीक्षित की ओर देखा। उनके शब्दों में विश्वास और स्वाभिमान की झलक थी। उनमें उसे ऐसा एक भी भाव दिखाई न दिया, जिससे जान पड़ता कि उनके मन में कुछ और है और बाहर से वे कुछ और दिखा रहे हैं। उसने अपने-आपसे पूछा, “क्या यह व्यक्ति सचमुच खरा है?”

दीक्षित कह रहे थे, “आज तक मैंने वापूसाहब के घर-गिरिस्ती के जीवन के बारे में कोई जिज्ञासा या दिलचस्पी नहीं दिखाई। मैंनेजर का काम जितनी सचाई और ईमानदारी से कर सकता हूं, उतना करने का प्रयत्न करता रहा। लेकिन मेरे कारण आपका जीवन दुखी हो तो मुझे यहां नहीं रहना चाहिए।”

अनंत दीक्षित के इन शब्दों से बकुल की हृदय-तंत्री के तार भंकृत हो उठे। कुछ ही क्षण पहले उनके प्रति जो परायेपन के भाव थे, वे जाने कहां विलुप्त हो गये। अपनत्व और स्नेह उसके हृदय में उमड़ने लगा। वह गद्-गद् हो गई और अवरुद्ध स्वर में बोली, “ऐसा जान पड़ता है कि मेरी उस दिन की बात का आपके मन पर गहरा असर हुआ है। आप मुझे माफ करें।

अण्णा से मैंने ऐसा कहा जरूर था कि बाबूसाहब की बुराइयों की जिम्मेदारी आप पर है, लेकिन, लेकिन....”

बकुल के लिए आगे बात करना असंभव हो गया। उसका मन बोझिल हो गया। उसके हाथ कांपने लगे। सजल नेत्रों से अनंत दीक्षित की ओर देखते हुए उसने कहा, “दीक्षित साहब, जब स्त्री देखती है कि उसके जीवन में उसके पति का आधार टूट गया है तो वह घबड़ा जाती है। जब उसपर अन्याय होता है तो उसकी जिम्मेदारी वह दूसरे पर लादने की कोशिश करती है। उसी तरह मैंने आपको दोषी ठहराया। लेकिन मैं यह नहीं जानती थी कि बात वैसी नहीं है। मुझे माफ कीजिये।”

बकुल की आंखों से आंसू बहने लगे। उसकी विह्वलता से दीक्षित का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि उसका किस तरह समाधान करे, उसे किस तरह सांत्वना दें। बकुल आगे बोली, “मैं नहीं चाहती कि आप नौकरी छोड़ दें। स्त्री की गृहस्थी का सुख किसी पराये पर अलंबित नहीं होता। जीवन-रथ को खींचनेवाले पति पत्नी पर ही वह निर्भर करता है। इसके लिए आपको दोष क्यों दिया जाय? मैं ही अभागिन हूं। लेकिन खैर, यह सब छोड़िये। उस दिन यदि मैंने आपसे कुछ कह-सुन दिया हो तो आप बुरा न मानें।”

दीक्षित ने तत्काल उत्तर दिया, “जी नहीं, कोई बात नहीं है। मैंने नौकरी छोड़ देने की जो बात कही है, वह उस दिन की आपकी बातों के कारण नहीं, बल्कि आपके प्रति....”

दीक्षित क्षण-भर के लिए रुके। उनके सामने यह प्रश्न था कि बकुल के प्रति जो श्रद्धा पैदा हुई है, उसे किन शब्दों में प्रकट करें। बकुल ने आंखें बंद कर ली थीं और उसके कान दीक्षित की बातें सुन रहे थे। दीक्षित बोले, “आपके प्रति मेरे मन में आदर है। अण्णासाहब ने आपसे कुछ बातें कही ही हैं। आपको मेरी मदद की जरूरत हो तो मैं आपके लिए सबकुछ करने को तैयार हूं।”

दीक्षित ने ये बातें इस तरह कहीं कि बकुल को कोई संकोच न हो। बकुल ने उनकी मन-ही-मन बड़ी सराहना की—देखो तो, मेरी भावना की यह मनुष्य कितनी कद्र करता है! पर अपनी भावनाओं को छिपाते हुए उसने

कहा, “दीक्षित महोदय, खदान के मजदूरों में आजकल कभी-कभी बड़ा असंतोष फैल जाता है। वे लोग मालिक की और वहां के अफसरों की बहुत शिकायत किया करते हैं। इसलिए आपको उस तरफ पूरा ध्यान देना चाहिए। उन्हीं लोगों की जान पर हम लाखों रुपये कमा रहे हैं। इसलिए यदि हम उनकी चिन्ता नहीं करेंगे तो हमारा काम न चलेगा। मैंने सुना है कि पिछली बारिश में बहुत-से लोग हैजे के शिकार हो गये। उनके बाल-बच्चों की सहायत करना हमारा कर्तव्य है। आप वहां हैं ही। इस विषय में जितना कर सकें, कीजिये।”

दीक्षित से वैसा करने का आश्वासन पाकर बकुल कार की ओर बढ़ी और देखते-देखते दोनों एक-दूसरे से बिदा हो गये। बकुल घर आई। उस समय उसे ऐसा लग रहा था, उसका दिल बहुत ही हल्का हो गया है। उसने स्वप्न में भी न सोचा था कि दीक्षित के प्रति उसके दूषित भाव इतनी जल्दी नष्ट हो जायेंगे। अब उसका मन उनके बारे में साफ हो गया था। अपना दुःख उनसे कहूं, उनसे मदद लूं, यह बात उसके मन में उठने लगी थी। उस दिन से जब कभी बापूसाहब के प्रति उसके मनमें कटुता आती थी तो दीक्षित की याद हो आती थी। उससे उसे बड़ी सांत्वना मिलती थी। पर सच यह है कि दीक्षित के प्रति उसे इतना अपनापन अनुभव हो, यह बात उसे कभी-कभी अप्रिय भी लगती थी और तब वह अपने मन से उन भावनाओं को निकाल देने की कोशिश करती थी। वह सोचती—हम लोगों की नहीं पटती, इसलिए किसीकी दया या सहानुभूति मुझे क्यों अंगीकार करनी चाहिए? नहीं-नहीं, किसीको भी मुझपर दया करने की जरूरत नहीं है। मेरे भाग्य में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक बढ़ा है तो उसे सहन करने के लिए मुझे समर्थ होना चाहिए। मुझे अपने नवजीवन का निर्माण अपनी ही हिम्मत पर करना चाहिए।

मनुष्य के इरादों को विफल कर देने में विधाता को न जाने क्या मजा आता है ? जीवन में कुछ अवसर ऐसे आ जाते हैं जब विधाता के विधान पर मनुष्य स्तंभित होकर देखता रह जाता है। बकुल के विषय में गत सप्ताह यही हो गया था। उसने निश्चय कर लिया था कि दीक्षित की सहानुभूति और स्नेह के प्रति उदासीन रहेगी। इसी बीच कामठी के क्लब का वार्षिकोत्सव होने के कारण वहां भोज और अंग्रेजी नृत्य के कार्य-क्रम होनेवाले थे। बापूसाहब अक्सर ऐसे कार्य-क्रमों में बकुल को साथ नहीं ले जाते थे। बकुल भी कभी इसकी आशा नहीं करती थी, लेकिन उस दिन उन्होंने उसे साथ चलने का आग्रह किया। इससे बकुल को बड़ा आनंद हुआ और उसी आनंद में डूबी वह क्लब में गई।

बापूसाहब का बहुत-से अंग्रेजों से घनिष्ठ परिचय था। वे उनमें बहुत ही घुल-मिल गये थे। उनके तौर-तरीकों से भी वह भली-भांति परिचित हो चुके थे। उन्होंने देखा था कि अंग्रेज लोग स्त्रियों को विशेष महत्व देते हैं, उनका बड़ा आदर करते हैं। इस कारण बकुल की ओर देखने का उनका दृष्टि-कोण भी थोड़ा उदार होने लगा था। मेजर हिड्ले, केथरिन और इसाबेल उनसे बार-बार आग्रह किया करते थे कि बकुल को साथ लाओ। लेकिन बकुल को क्लब में और वहां होनेवाली दावतों और नृत्यों के कार्य-क्रमों में रुचि नहीं थी। एक बार इसाबेल बकुल को बलात खींचकर ले गई थी, लेकिन उस समय कुछ चुने हुए लोगों को छोड़कर वहां और कोई न था। परंतु आज क्लब का वातावरण बहुत बदला हुआ था। उसका भीतरी विशाल हॉल लोगों की हूँसी से गूंज रहा था। अंग्रेज फौजी अफसर, उनकी स्त्रियां और पुत्रियां, मंगनीज के कुछ अंग्रेज व्यवसायी और नगर के कुछ सम्पन्न लोगों से क्लब का हॉल भरा हुआ था। उसमें प्रवेश करते ही बकुल कुछ चकरा गई। इसी समय केथरिन और इसाबेल की निगाह उसपर पड़ी। वे फौरन उसके पास आ गईं और उसके हाथ-में-हाथ डालकर बोलीं,

“हमारा अहोभाग्य, जो आप यहां पधारीं !”

बकुल ने अपनी आंतरिक बेचैनी को दबाते हुए विनोद में कहा, “यह आपने खूब कहा ! मेरा आना आपका अहोभाग्य ! मैं कोई देवी हूं !”

“बेशक, आज आप सचमुच देवी लग रही हैं। गजब की सुंदर दीख रही हैं !” इसाबेल बकुल का हाथ दबाती हुई बोली।

वास्तव में बकुल आज बड़ी सुंदर लग रही थी। उसने कीमती जय-पुरिया ढंग की जार्जेट की साड़ी पहन रखी थी, जिसपर वारीक बुंदियों की नक्काशी हो रही थी। बदन में उसी रंग का, किन्तु चंदेरी ठपकेवाला जम्पर था। लंबे काले-काले चमकदार केशों के जूड़े पर उसने साल-कट-सरई के फूलों की वेणी सजा ली थी। गुलाब के फूल की तरह वह बड़ी ही सुघड़ लग रही थी। बकुल के सौंदर्य की ओर आंग्ल पुरुषों की दृष्टि तो आकर्षित हो ही गई थी, लेकिन फ्रॉक पहने हुए आंग्ल महिलाएं भी उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती हुई एक-दूसरे से कह रही थीं, “वाह कितनी सुंदर स्त्री है यह !”

बकुल से परिचय करने और उसके रूप को और अधिक निकट से देखने के लिए सारी में उससे पास आ गई थीं। कोई उसके मूल्यवान हीरों के आभूषणों की प्रशंसा करती तो किसी-किसीको उसकी जार्जेट की साड़ी बहुत ही लुभावनी लगती थी। साड़ी में लगी इंदौरी जरी की चौड़ी किनारी अपनी बहार दिखा रही थी।

थोड़ी ही देर में हॉल के भीतर नाच का बैंड बजने लगा। उसकी स्वर-लहरी पर स्त्री-पुरुष नृत्य करने लगे। कुछ लोग एक तरफ रखी कुर्सियों पर बैठकर शराब पीने में मस्त हो गये। बकुल नृत्य में सम्मिलित नहीं हुई। केथरिन ने उससे नृत्य में शामिल होने का बहुत आग्रह किया, लेकिन उसने इंकार कर दिया। वह दर्शक के रूप में बैठी रही। वापूसाहब उसे अकेली छोड़कर दूसरी ही टोली के बीच जा बैठे। उस टोली में कंपनी के जनरल मैनेजर मिस्टर फॉन्टेन, उनकी पत्नी प्यूडिथ और उनकी कन्या रोज प्रमुख थे। रोज और वापूसाहब में बड़ी घनिष्ठता दिखाई दे रही थी। उस टोली के सभी लोग नशे में चूर थे। रोज के हाथ में मदिरा का प्याला खाली नहीं हो पाता था। उसके प्रति वापूसाहब का व्यवहार बकुल को बड़ा

विचित्र-सा लगा। वह बार-बार उनकी ओर देखती थी, लेकिन बापूसाहब को मानों उसका ध्यान ही न था। सचाई यह है कि बकुल को रोज बिल्कुल ही अच्छी नहीं लगी। इसका लंबा घेरेदार फाक कीमती होते हुए भी नाटकीय मालूम होता था। गालों पर पाउडर की तह थी और होठों में लगा रंग जरूरत से ज्यादा भड़कीला था। उसकी भाव-भंगिमा और अंगविशेष उन्मत्तता से पूर्ण थे।

बकुल चकित थी कि अपनी स्त्री को साथ लाकर भी बापूसाहब इस छिछोरी लड़की से इतनी चुहल करने की हिम्मत कैसे कर रहे हैं! रोज बीच-बीच में बकुल की ओर देखती जाती थी, लेकिन बकुल उसकी निगाह बचा जाती थी। पुरुषों को सहज ही मोहित कर लेने की कला में रोज सिद्ध-हस्त है, यह साफ दिखाई दे रहा था।

बकुल के मन में सहसा एक प्रश्न उठा। क्या इस कला के अभाव में ही पति उससे खिंचे हुए रहते हैं? उसके साथ परायेपन का बरताव करते हैं? क्या वे अपेक्षा रखते हैं कि उनकी पत्नी भी उनके साथ रोज के जैसा छिछोरापन करे? इस तरह के और भी कुछ सवाल बकुल के मन में उठे। इन प्रश्नों से बकुल बड़ी भयभीत-सी हो गई, चौंक पड़ी। फिर जैसे निश्चयपूर्वक अपने-आपसे बोली, “छिः, इस तरह का छिछोरापन मैं इस जिंदगी में कभी नहीं कर सकती।”

बकुल को रह-रहकर लगता कि व्यर्थ ही आज मैं क्लब में आई। इसा-बेल, केथरिन तथा अन्य स्त्रियां नाच-गान में बिल्कुल खो गई थीं। बकुल को अकेले कुरसी पर बैठे रहना भारी लगने लगा। अतः वह उठी और क्लब के पुस्तकालय में आई। वहां आकर उसने चैन की सांस ली। वहां बैठने से उसे रोज और बापूसाहब के बीच का प्रेमाभिनय दिखाई नहीं देता था। अपने मन को दूसरी ओर लगाने के लिए वह पुस्तकालय के ग्रंथों की सूची पढ़ने लगी। पुस्तकें उसे हमेशा प्रिय सहेलियां मालूम होती थीं। वह उन्हें देखने में लग गई। अचानक उसे किसीकी पदचाप सुनाई पड़ी। उसने पीछे मुड़कर देखा। अनंत दीक्षित खड़े कह रहे थे, “ओहो! आप? आज आप भी यहां आई हैं?”

बकुल ने सोचा भी नहीं था कि दीक्षित वहां होंगे। अकस्मात् उन्हें

सामने पाकर वह किंचित आश्चर्यचकित होगई। रोज के साथ पति के व्यवहार को प्रत्यक्ष देखने से उसे जो दुःख हुआ था उससे चेहरे पर अब भी निराशा छाई थी। उसने धीमी आवाज में उत्तर दिया, “जीहां, मैं आ तो गई, लेकिन मुझे लग रहा है कि व्यर्थ ही आई !”

बकुल से अनपेक्षित रूप से भेंट हो जाने के कारण दीक्षित ने मन-ही-मन अपरिमित आनंद अनुभव किया। जब वह क्लब आ रहे थे, तब बापू-साहब के बंगले के नजदीक से गुजरते समय उनकी दृष्टि उस बंगले की ओर गई थी। उसी क्षण उन्हें बकुल की वेदना का स्मरण हो आया था और उन्होंने मन में कहा था, “आज बापूसाहब क्लब में जायेंगे और बेचारी बकुल बंगले में अकेली रहेगी।” पर चारा क्या था ! वे क्लब में आये। संयोग से उनके पैर क्लब के पुस्तकालय की ओर मुड़ गये। बकुल के चेहरे पर निराशा की छाया देखकर उन्हें चोट लगी, पर आश्चर्य नहीं हुआ। क्लब में जो चल रहा था, उससे बकुल को खुशी कैसे हो सकती थी ! उन्हें बापूसाहब की लंपटता पर बड़ा क्रोध आया।

दीक्षित ने क्षण-भर के लिए बकुल की ओर निहारा। उनकी निगाह में वही तरलता थी। यह देखकर कि इस अभागिन के प्रति कम-से-कम एक व्यक्ति की तो अगाध ममता है, बकुल का जी भर आया। दीक्षित कह रहे थे, “मिसेज देशमुख, ऐसा क्यों कहती हैं कि आप व्यर्थ आईं ? मैं बिल से यह चाह रहा था कि आप आवें। आपको यहां देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई है !”

दीक्षित का प्रत्येक शब्द बकुल के हृदय में सीधा प्रवेश कर रहा था। इस भावना से कि वे मेरे ही बारे में हमेशा विचार करते हैं, उन्हें हमेशा मेरी चिंता रहती है, बकुल की पूर्व निश्चित उदासीनता जाने कहां गायब हो गई। उसका मन फिर दीक्षित की ओर आकर्षित हो गया।

दीक्षित कह रहे थे, “मिसेज देशमुख, मुझे हृदय से लगता है कि आप प्रसन्न चित्त से हँसते-हँसते अपना जीवन बितायें। आप हमेशा उदास रहें, इससे मुझे बड़ी चोट लगती है। आपपर जो बीत रही है, वह आपके लिए एक कसौटी है। इस कसौटी पर खरा उतरने के लिए कठोर साधना की आवश्यकता है, और वह आप कर ही रही हैं। मैं चाहता हूँ कि आपको

हमेशा प्रसन्न-मुख देखूं। लेकिन आज के इस वातावरण में आप इस तरह अकेली....”

वे अपनी बात पूरी भी न कर पाये कि बकुल ने एकदम उनकी ओर देखा। दोनों की निगाहें टकरा गईं और उन्हें लगा, जैसे वे एक-दूसरे को अपनी ओर खींच रही हों। दोनों की भावनाओं का वेग बढ़ गया। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें लगा कि कहीं हम भावनाओं के भंवर में तो नहीं फंसे जा रहे हैं! कहीं मर्यादा का अतिक्रमण तो नहीं हो रहा है! हठात दीक्षित वहां से हटकर भीड़ में शामिल हो गये। बकुल भी आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गई। रात के ग्यारह बज रहे थे। बापूसाहब की महफिल पर गहरा रंग चढ़ गया था। सब शराब के नशे में चूर थे। रोज शराब के प्याले-पर-प्याले चढ़ाये जा रही थी। बापूसाहब उसका हाथ अपने हाथ में लिये उसके पीछे खड़े थे। दीक्षित महफिल में चक्कर काट रहे थे, लेकिन उनका सारा ध्यान बकुल की ओर था। वह नज़र बकुल को धीरे-धीरे दे रही थी। बकुल का मन भी भीतर-ही-भीतर उमड़ रहा था। कुछ समय तक भावनाओं का यह ज्वार चलता रहा। अंत में भावनाओं को नया मोड़ देने के लिए वह क्लब के बगल के बरामदे में गई। बापूसाहब का उसकी ओर ध्यान कहां से जाता? उस क्षण उनकी एक ही दुनिया थी और वह थी रोज उसके आस-पास चक्कर काटने में वे सबकुछ भूल गये थे। स्त्री-सहवास का चस्का एक बार लग जाने पर मनुष्य सारी दुनिया को ही भूल जाता है। जबतक उस स्त्री को पूरी तरह अपने कब्जे में नहीं कर लेता तबतक उसे चैन नहीं पड़ता। बापूसाहब भी कुछ ऐसी ही अवस्था में रोज के पीछे पड़े थे।

एक बात और भी थी। बापूसाहब पर धन का उन्माद दिन-ब-दिन अधिकाधिक चढ़ने लगा था। धन के कारण उनमें हुकूमत और ताना-शाही की वृत्ति बढ़ रही थी, नाच-रंग में फंसे रहने की लालसा अधिक लहलहाने लगी थी। उनके इस प्रकार के वर्तव से कोई अनुचित बात हो रही है, अथवा किसीके मन को चोट पहुंच रही है, इसकी उन्हें तनिक भी परवा न थी, मानो जीवन में स्वयं का भोग-विलास ही उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। उनके इस भोग-विलास के परिणामस्वरूप कुछ लोगों की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई थी। उन लोगों की पत्नियों के हृदय चूर-चूर हो गये थे। लेकिन

फिर भी इसका कोई असर बापूसाहब के मन पर न पड़ा था और न आगे कभी पड़ने की संभावना थी। बाहर वरामदे में आकर बकुल को लगा कि यदि मैं हॉल में अधिक देर तक बैठी रहती तो सबकी निगाहें मुझसे कहतीं, “देख ले तेरा पति तुझसे कैसा बरताव कर रहा है ? उसे तेरी ज़रा भी परवा नहीं है !”

क्लब के भीतर के उस कृत्रिम वातावरण की अपेक्षा बाहर का वातावरण कहीं अधिक रमणीय और सुखदायक था। प्रकृति की सात्विक पवित्रता चारों ओर उन्मुक्त भाव से बिखरी हुई थी। पत्तों और फूलों की सुकुमार हलचल भीतर चल रहे नाटकीय हास्य-विनोद की अपेक्षा मन को अधिक लुभानेवाली थी। चन्द्रमा की सौम्य किरणें, क्लब की जगमगाती बत्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक आह्लादकारिणी थीं ! उस शीतल प्रकाश में, सामने से बहता कन्हान नदी का प्रवाह सुशोभित हो रहा था—मनोवेधक भी दीख रहा था। वह प्रवाह सृष्टि में जीवन के अस्तित्व की साक्षी दे रहा था। नील गगन में अंशुव्य तारे झिलमिला रहे थे। प्राकृतिक सौन्दर्य में खो जाना बकुल को सदा बड़ा अच्छा लगता था। लेकिन आज उसे वह उस तरह का नहीं लगा। इसके विपरीत, आज के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर उसे आभास हुआ, मानो तारे उसके दुर्भाग्य पर हँस रहे हैं, नदी का प्रवाह उसे अकेली छोड़कर उसके जीवन के सुख का सारा भण्डार चुराकर लिये जा रहा है और भींगुरों की झनकार उसे धिक्कार रही है। दुःख से व्यथित होकर बकुल मानो प्रकृति को लक्ष्य करके बोली, “मैं इतना दुर्भाग्य सिर पर लेकर क्यों पैदा हुई हूँ ? क्या इस दुर्भाग्य का कभी अंत न होगा ? हे प्रकृति देवी, मैं तुम्हारी सृष्टि का ही तो एक जीव हूँ। फिर मेरे ही सुख का तुमने इस तरह दुर्भाग्यपूर्ण निपटारा क्यों कर दिया है ?”

बकुल की आंखों में आंसू भर आये। कितनी ही देर तक उसी स्थिति में वह खंभे से सिर टिकाये खड़ी रही। उसकी स्थिति शाखा से टूटकर गिरे हुए पत्ते की तरह हो गई थी। उसे लग रहा था, उसके लिए दुनिया में कहीं कोई ठौर नहीं, कोई आधार नहीं। लेकिन इस अवस्था में एक व्यक्ति ज़रूर दिन-रात उसके आसपास मंडरा रहा था। बकुल के मन में जब खींचतान होने लगती थी, तो उस समय मानो कोई अदृश्य शक्ति उस

व्यक्ति को इसका पता दे देती थी। तब वह व्यक्ति उसके मन पर लदे दुःख और पराजय के बोझ को हटका करने के लिए समय-समय पर दौड़कर उसके पास आ जाता था। इस समय भी दीक्षित उसके पीछे इसी तरह आकर खड़े होगये थे। बकुल सिसक रही थी। उसको सांत्वना किस तरह दी जाय, अनंत दीक्षित के लिए यह एक समस्या होगई थी। उनके मन में बकुल के प्रति स्नेह की तीव्र भावना तरंगित हो रही थी। बकुल के नेत्रों से गिरनेवाला प्रत्येक आंसू उनकी मृदु भावनाओं को जाग्रत कर रहा था, चुनौती दे रहा था।

बकुल की इस दुःखी और कष्टमय मूर्ति ने दीक्षित के हृदय को हिला दिया। बकुल सुखी कैसे हो, यह चिंता उन्हें हैरान करने लगी। वास्तव में देखा जाय तो बकुल और दीक्षित के जीवन में दो ध्रुवों का अंतर था, जमीन आसमान का फर्क था। बकुल एक लखपती की पत्नी थी। देशमुख-घराने की खानदानी मालकिन थी। और दीक्षित ? वे एक मामूली मैनेजर थे। फिर भी वे बकुल को सुखी करने के लिए जी-तोड़ परिश्रम कर रहे थे।

वैसे इस तरह एकांत में उन्हें बकुल के पास आने की हिम्मत न पड़ती, लेकिन बापूसाहब ने उन्हें उसे बंगले पर पहुंचा देने की आज्ञा दी थी और इसीलिए वे उसे अपने साथ ले जाने के लिए बरामदे में आये थे। लेकिन खंभे से सिर टिकाये रो रही बकुल को देखकर वे कितनी ही देर तक मौन खड़े रहे। क्लव में आने से पहले बकुल ने अपने वस्त्रों में चमेली का इत्र लगाया था, जिसकी सुगंध इस समय दीक्षित को तीव्रता से अनुभव हो रही थी। उन्हें लगा, पत्थर के खंभे से टिका हुआ बकुल का मस्तक उठाकर अपने कंधे पर टिका लूं और धीरे-धीरे सहला दूं। इस विचार के मन में आते ही वे आगे बढ़े और उसे सांत्वना देने के लिए उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया, लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने अपनी भावनाओं की बाढ़ पर बांध लगा दिया। सोचा, महज स्नेह अथवा सहानुभूति की भावना से प्रवृत्त होकर बकुल के प्रति अपना स्नेह दिखाना उचित होगा ? यह सोचते-सोचते उन्होंने धीरे-से पुकारा, “मिसेज देशमुख !”

सुनते ही बकुल ने चौंककर देखा। उसके पीछे दीक्षित कब से खड़े हुए हैं, इसका उसे पता तक न चला। लेकिन इस कल्पना से कि उसके दुःख

में वह अकेली ही नहीं है, बल्कि उसके लिए हमेशा चिंतित रहनेवाले दीक्षित भी खड़े हैं, उसे अच्छा लगा। वह धीरे-से बोली, “आप मेरे लिए इतने चिंतित क्यों होते हैं, दीक्षित साहब ? सचमुच में बड़ी अभागिन हूं। अपना दुःख मुझे स्वयं ही सहन करना चाहिए, आप जाइये, वरना साहब मुझे खोजने आ जायेंगे।”

दीक्षित ने उसे बापूसाहब का संदेसा बता दिया। उस संदेसे को सुनकर बकुल के हृदय को पुनः एक चोट लगी। पति को मेरा अपमान क्यों करना चाहिए, बहुत सोचने पर भी उसे इसका उत्तर न मिला। वह झल्ला उठी और दीक्षित से एक शब्द भी न बोलकर बंगले पर लौट आई।

इस प्रसंग के बाद योगायोग से बकुल और दीक्षित एक-दूसरे के स्नेह में अधिकाधिक उलझते गये।

बकुल के जीवन-रूपी उद्यान में अनंत के प्रति स्नेह की हरियाली उग रही थी। वह हरियाली क्यों उग रही थी, कैसे उग रही थी, स्वयं बकुल ही इसे नहीं समझ पा रही थी। लेकिन इस हरियाली को दीक्षित के स्नेहरूपी हिम-बिंदु आर्द्रता दे रहे थे। कभी-कभी ये हिम-बिंदु हीरों और माणिकों की तरह चमक उठते थे और बकुल के मन को मोहित करके, उसे अपने स्नेह में लपेट लेते थे। कितना जबरदस्त आकर्षण था उस हरियाली के हिम-बिंदुओं की आर्द्रता में ! बात-की-बात में, जाने-अनजाने, बकुल और दीक्षित परस्पर एक-दूसरे के स्नेह-जाल में फंसते जा रहे थे। कह नहीं सकते, कौन-सी दैवी शक्ति उन दोनों को इतनी तेजी से एक-दूसरे के निकट खींचकर ला रही थी ! एक वर्ष के भीतर एक के बाद एक, कुछ ऐसी घटनाएं घटती गईं कि बकुल और दीक्षित दोनों के मनों में, वे जान पावें इससे पहले ही, स्नेह की एक सुकुमार माला गुंथ गई। बकुल के मन में कई बार आता कि यह माला कंटीली है और इसे गले में धारण न कर तोड़ फेंकना चाहिए, लेकिन इस कंटीली माला की स्निग्ध भावना और कोमल सुगंध उसके मन पर विजय प्राप्त कर लेती और उलटे, होता यह कि उस माला में स्वयं बकुल ही एक के बाद एक स्नेह का फूल गुंथती जाती।

पिछले छः महीनों में इसी प्रकार के कुछ विचित्र अवसर उपस्थित होते गये थे, जिनके कारण वे दोनों एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गये थे।

उस दिन बकुल नागपुर अण्णासाहब के घर जा रही थी। अण्णासाहब ने उसे किसी त्योहार के निमित्त बुलाया था। बरसाती में मोटर खड़ी होते ही बकुल की नौकरानी ने साथ जानेवाला सामान रख दिया था। बकुल उसमें बैठ ही रही थी कि बापूसाहब खदान से लौट आये। दीक्षित भी उनके साथ थे। बापूसाहब ने कार से उतरते ही पत्नी से पूछा, “क्यों, कहां जा रही हो ?”

“नागपुर। सुबह अण्णासाहब का बुलावा आया था।”

“जरूर हो आओ ?” कहकर बापूसाहब दीक्षित की ओर मुड़कर बोले, “अनंत, बाईसाहब नागपुर जा रही हैं। आप भी इन्हींके साथ चले जाइये। वहां पहुंचते ही कमिश्नरसाहब से मिल लीजिये और अपना काम पूरा कर डालिये। इस समय मैंगनीज का अच्छा भाव मिल रहा है। इसलिए इस सुनहरे अवसर को हाथ से जाने देना उचित नहीं। नया एक्स-पोर्ट लाइसेन्स हमें मिल ही जाना चाहिए। आप अपनी तरफ से भरसक कोशिश कीजिये। नई वस्टर्न कंपनी अच्छा भाव देकर माल लेने को तैयार है।”

उन्होंने अनंत को और भी कुछ सूचनाएं दीं। बकुल मोटर के बाहर खड़ी थी। दीक्षित भी नज़दीक ही खड़े थे। उन्होंने बकुल के लिए मोटर का दरवाज़ा खोला। भीतर बैठते समय बकुल का मन खिल उठा। “कैसा विचित्र संयोग है ! मैं जा ही रही थी कि ये यहां पहुंच गये। नागपुर में काम निकल आया ! फिर स्वयं पति ने ही उन्हें मेरी मोटर से जाने को कह दिया। कैसे योगायोग जुड़ रहे हैं !”

मोटर रवाना हुई। उसने बंगले के सामनेवाली दो फर्लांग की कच्ची सड़क पार की और फिर अच्छी सड़क मिलते ही वह तेज़ी से दौड़ने लगी। फौजी अफसरों के बंगले और बहुत-सी आबादी पीछे छूट गई। चर्च और ईसाइयों का कब्रिस्तान भी पीछे रह गये। सड़क के दोनों ओर इमली के घने पेड़ थे। उनके बीच से गुज़रते समय ठंडी हवा के झोंके मोटर के भीतर प्रवेश कर रहे थे। बकुल को बड़ा अच्छा लग रहा था। मार्च महीने के अंतिम दिन होने से आसपास का भूभाग गर्म होने लगा था। दीक्षित ड्राइवर के पास बैठे थे। इसलिए उनके चेहरे पर सामने से आ रही धूप पड़ रही थी। उससे बचने के लिए उन्होंने मोटर में लगी धूप-रक्षक ‘शेड’ नीचे झुका ली। बकुल का ध्यान उनकी ही ओर था। वह उनकी प्रत्येक चेष्टा को देख रही थी।

मोटर में बैठने के बाद से दीक्षित ने बकुल से कोई बात नहीं की थी। शायद वे सोच रहे थे कि क्या बोलूं और क्या न बोलूं ? बकुल से थोड़ा भी बोलने पर उनका मन स्निग्ध हो उठता था। पर अब वह अनुभव कर रहे थे कि उन्हें अपने व्यवहार को एक सीमा के भीतर ही रखना चाहिए।

बकुल जानती थी कि दीक्षित अपने मन को किस तरह बंधन में रखते हैं। इसलिए जब वह मोटर से बाहर देखने लगे तो वह ताड़ गई कि वह क्या चाह रहे हैं। उसका मन एकदम प्रफुल्लित हो उठा। लेकिन अपने मन को यह चेतावनी देकर कि चाहे कुछ भी हो, तुझे उनके बारे में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए, उसने पढ़ने के लिए एक पुस्तक खोली। इसी समय बड़े जोर की आवाज़ हुई और मोटर एक ओर को कुछ झुक गई।

“क्या हो गया ?” बकुल ने घबड़ाकर ड्राइवर से पूछा।

“हुजूर, मोटर शायद पंचर हो गई है।”

ड्राइवर की यह बात सुनते ही दीक्षित ने एकदम उत्तर दिया, “जीहां, पीछे का टायर पंचर हो गया है।”

किंचित रोष से बकुल ने ड्राइवर से कहा, “क्यों, क्या टायर इतने पुराने हो गये हैं कि ग्राड़ी के कहीं बाहर जाते ही पंचर हो जाते हैं ?”

ड्राइवर ने डरते-डरते कहा, “ऐसी कोई बात नहीं है, सरकार। टायर तो इतने पुराने नहीं हैं। लेकिन इस सड़क से बैल-गाड़ियों के अधिक चलने के कारण बैलों के टूटे नालों से टायर खराब हो जाते हैं।”

दीक्षित मोटर से उतरे। ड्राइवर के पास बैठा हुआ चपरासी भी नीचे उतर पड़ा। बकुल जब कभी कहीं जाती है, एक चपरासी और मंजुला नौकरानी उसके साथ रहा करते हैं। आज भी दोनों साथ थे। मोटर के पंचर होते समय जो आवाज़ हुई, उसे सुनकर मंजुला तो घबड़ा उठी और अंग समेटकर चुपचाप बैठ गई। उसकी यह घबराहट देखकर भुंभलाई और चिढ़ी हुई स्थिति में भी बकुल को हँसी आ गई। इसी समय दीक्षित मोटर की खिड़की के पास आकर बकुल से बोले, “अब आपको थोड़ी तकलीफ उठानी होगी। सामने वह पेड़ है। अच्छी घनी छाया है। आप यदि कृपा कर थोड़ी देर वहां बैठ जायें तो ड्राइवर तुरंत दूसरा चाक बदल देगा।”

बकुल ने दीक्षित की ओर देखा। उन दोनों की आंखें एक क्षण के लिए आपस में मिल गईं। एकदम मोटर से बाहर आकर बकुल ने मनमें कहा, “कितनी सभ्यता से बातें करते हैं ये ? सीधा यह न कहकर कि मोटर से उतरिये, उन्होंने कितने अच्छे ढंग से यही बात कही।”

आसपास जोर की धूप फैली थी। गरमी की तीव्रता के कारण दूर

सड़क पर मृगजल का दृश्य दिखाई दे रहा था। मोटर से बाहर आकर बकुल उस दृश्य को देखने लगी। दीक्षित काम में व्यस्त ड्राइवर की ओर देख रहे थे।

“कितनी तेज़ धूप है ? है न ?”—बकुल न कहा।

“जीहां, इन चार दिनों के भीतर तो गर्मी और भी बढ़ गई है। हमारे आ जाने से आपको निकलने में थोड़ी देर होगई। एक तो पहले ही तकलीफ हुई, और अब ऊपर से यह पंचर...”

बकुल बीच में ही बोल उठी, “तकलीफ की बात छोड़िये। लेकिन इस पंचर के कारण नागपुर पहुंचने में देर हो जायगी। अण्णासाहब प्रतीक्षा करते रहेंगे।”

“अण्णासाहब की तबीयत अब कैसी है ?”

“ठीक है।” बकुल ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

बातें करते हुए दोनों सड़क के किनारे के एक बड़े पेड़ की छाया में आकर खड़े हो गये। पेड़ की एक शाखा को पकड़कर दीक्षित खड़े होगये और बकुल तने से टिककर बैठ गई। वह मन-ही-मन कह रही थी, “मैं जितना ही इस व्यक्ति को टालने का प्रयत्न करती हूं, उतना ही यह किसी-न-किसी वहाने मेरे पास आ जाता है ! क्या विधाता की ही यह इच्छा है कि हम दोनों में स्नेह बढ़ता रहे ? अथवा मेरे नीरस जीवन में स्नेह की आर्द्रता लाने के लिए यह सब हो रहा है ?”

बकुल मौन थी। उसकी वह स्तब्धता दीक्षित को खटकने लगी। वे धीरे-से बोले, “आप किन विचारों में खो गई हैं ?”

“विचारों में ? नहीं तो। मेरे जीवन में विचारों के लिए स्थान ही कहां है ? विचार किसका करूंगी ?”

बकुल की बात बहुत सीधी-सादी थी। लेकिन उन शब्दों के पीछे छिपा हुआ शल्य दीक्षित के चुभे बिना न रहा। उन्हें लगा, उससे कुछ ऐसी बातें करूं कि जिससे वह हिम्मत न हारे और उसे अच्छा लगे, लेकिन मन के इस मोह को रोककर वे बोले, “आप खदान पर पधारनेवाली थीं न ? मैं आपकी प्रतीक्षा करता रहा।”

दीक्षित उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, इन शब्दों से बकुल को सुख

मिला। लेकिन क्यों, इसे उसका हृदय ही जानता था। बकुल के हाथ की पुस्तक की ओर संकेत करके दीक्षित ने पूछा, “आपको पढ़ने का बड़ा शौक मालूम होता है?”

“जीहां, पुस्तकों का साथ मुझे बहुत प्रिय है। बढ़िया-बढ़िया पुस्तकें पढ़ने में मेरा मन खूब रमा रहता है।”

“जीहां, यह तो है ही! एकाकी रहनेवाले को पुस्तकें पढ़ने का शौक हो तो उसे एकाकीपन महसूस नहीं होता। मेरा भी बहुत-सा समय पढ़ने में ही बीतता है। पुस्तकें ही तो मेरा खदान के बंगले पर अकेले रहना संभव बनाती हैं।”

बकुल के मन में आया कि पूछे कि आप अकेले क्यों रहते हैं? विवाह करके नया जीवन क्यों नहीं शुरू करते? उसने विनोद में कहा, “खदान पर अकेले रहने की यह सजा आपको किसने दी? विवाह करके जीवन-संगिनी ले आयें तो अकेलेपन का सवाल ही खड़ा न होगा।”

उसकी बात का मर्म दीक्षित की समझ में आगया। वे किंचित हँस पड़े। फिर गंभीर होकर बोले, “क्या आपको सचमुच यह लगता है कि विवाह कर लेने से मनुष्य का एकाकीपन जाता रहता है?”

दीक्षित की बात का व्यंग्य बकुल फौरन समझ गई। विवाह होने के बाद भी जीवन में उसे सच्चा साथी कहाँ मिला था? क्या वह स्वयं एकाकिनी नहीं थी? बकुल को अपने असफल विवाहित जीवन की बड़ी तीव्रता से अनुभूति हुई। फिर भी वह मन पक्का करके बोली, “जिनके विवाह सफल होते हैं, उन्हें निश्चित ही सच्चा साथी मिल जाता है। आप जैसे विद्वान् को इस वीरान में एक जीवन-संगिनी अवश्य ले आनी चाहिए।”

विवाह के इस विषय पर अधिक रंग चढ़ता, लेकिन दीक्षित की आंखों के सामने से एक छोटा-सा दृश्य सिनेमा के चित्रों की भांति घूम गया। रे० तिलक^१ जिस समय ईसाई हुए, दीक्षित के माता-पिता ने भी उनके साथ हिन्दूधर्म छोड़कर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। उन्होंने यह धर्मांतर क्यों

^१ रे० श्रीनारायण वामन तिलक—मराठी भाषा के एक आधुनिक कवि, जिनका देहांत हो गया।

किया, इसका कारण ठीक से दीक्षित की समझ में नहीं आया था। छः वर्ष पूर्व कालेज में पढ़ते समय दीक्षित का एक लड़की से परिचय होगया। धीरे-धीरे यह परिचय प्रेम में बदल गया। दीक्षित ने निश्चय किया था कि अगर विवाह करूंगा तो इसी लड़की से करूंगा। वैसे देखा जाय तो उन जैसे बुद्धिमान और सुंदर पुरुष को अपनी कन्या देने में लड़की के माता-पिता को आनंद ही होता, लेकिन दीक्षित के माता-पिता के ईसाई होने के कारण लड़की के माता-पिता ने उन्हें अपनी लड़की देने से इंकार कर दिया। दीक्षित की उस लड़की से विवाह करने की तीव्र इच्छा थी। इसलिए वे अपने माता-पिता से लड़कर पुनः हिन्दूधर्म में प्रविष्ट होगये और उन्होंने उस लड़की के माता-पिता से फिर उस लड़की की मांग की, लेकिन उन्हें यह मालूम हुआ कि थोड़े ही दिन पहले उस लड़की का ब्याह हो चुका है। इस समाचार से दीक्षित को बड़ा धक्का लगा। प्रेम कभी भुलाया नहीं जा सकता, यह वे पूरी तरह से जान गये। प्रेम की विफलता के कारण वे अपने एक मित्र के साथ इंग्लैंड चले गये और वहां उन्होंने 'रायल स्कूल ऑव माइंस' नामक संस्था में मैंगनीज तथा भूगर्भविज्ञान का मन लगाकर अध्ययन किया और उसमें अच्छी सफलता प्राप्त की। हिन्दुस्तान लौटने पर कुछ दिन वे वालाघाट में अंग्रेजों की एक मैंगनीज की खदान पर नौकर रहे। वहां रहते समय बापूसाहब का उनसे परिचय होगया और बापूसाहब के विशेष आग्रह करने पर उन्होंने रामटेक की खदान पर मैनेजर का काम करना स्वीकार कर लिया। हिन्दुस्तान लौटने के बाद, तीन साल तक वे काम में बहुत व्यस्त रहे। उन्हें बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ी और सारा समय बेहद परेशानी में बीता, इसलिए इस अवधि में विवाह करने के विचार ने उनके मन को स्पर्श ही न किया। उन्होंने अपना यह जीवन-इतिहास बकुल को संक्षेप में कह सुनाया। उसे सुनकर बकुल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके मन में आया—जो तरुणी इनके जीवन में आई, क्या वह इन्हें भूल सकी होगी? इन जैसे सुंदर और बुद्धिमान युवक को प्रेमपाश में फांसनेवाली वह प्रेयसी जाने कैसी होगी?

बकुल ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "आपकी वह मित्र बहुत सुंदर थी?"

"सुंदर?" दीक्षित क्षण-भर के लिए मौन हो गये। उन्होंने बकुल की

और देखा और बोले, “जी नहीं, आपकी तरह वह सुंदर नहीं थी।”

अनंत की उस दृष्टि से और उनके शब्दों से बकुल कुछ लजा गई। भीतर जैसे कोई बोल उठा—तू दीक्षित को इतनी सुंदर लगती है, लेकिन तेरे पति की नज़रों में तेरे रूप की क्या कीमत है? ऐसी और भी बातें बकुल को याद हो आईं। एक प्रकार का विषाद उसके मुखमंडल पर छा गया, लेकिन दीक्षित की दृष्टि और उनके शब्दों का स्मरण होते ही उसकी अभिजात स्त्रीसुलभ भावनाएं लहलहा उठीं। वह आनंद-मग्न हो गई। लेकिन तुरंत ही सावधान होकर उसने अनंत से पूछा, “आपको कौन-सी पुस्तकें पढ़ने का शौक है?”

दीक्षित ने मेरी कारेली, शेक्सपियर, हार्डी, टाल्सटाय इत्यादि लेखकों के नाम लिये और उनकी पुस्तकों की संक्षेप में जानकारी दी। उन्होंने पूछा, “मेरी कारेली की ‘इन्सोसेंट’ आपने पढ़ी है?”

“जी नहीं, बहुत दिनों से मैंने कोई नई पुस्तक खरीदी ही नहीं। क्या वह बहुत बढ़िया पुस्तक है?”

“जीहां, बहुत सुंदर है। मैं आपके लिए वह पुस्तक जरूर ला दूंगा। अभी तक मुझे पता ही नहीं था कि आपको पढ़ने का इतना शौक है।”

“मेरे पास तो एक छोटा-सा पुस्तकालय ही बन गया है।”

“अच्छा, आप खदान पर कब पधारेंगी? उस समय मैं आपको अपना पुस्तकालय दिखाऊंगा।”

“वहां आने की मेरी बड़ी इच्छा है। पर क्या कहूं!”

बकुल की बात का क्या रुख था, यह दीक्षित ताड़ गये। वे बोले, “मिसेज़ देशमुख, क्या मैं आपसे एक सवाल पूछ सकता हूं?”

अनंत के इस प्रश्न से बकुल चकरा गई। लेकिन तुरंत ही सुस्थिर होकर बोली, “पूछिये न?”

“आपने बापूसाहब को इतनी आजादी क्यों दे रखी है? उनपर आप कुछ अधिक नियंत्रण क्यों नहीं रखती? उस दिन का उनका क्लब का व्यवहार, रोज़ जैसी दिखावटी और छिछले स्वभाव की तरुणियां और पुरुष आजकल बापूसाहब के पैसों पर मौज उड़ा रहे हैं! मुझे बापूसाहब की खिदमत में रहना पड़ता है, इसलिए यह सब देखने के लिए मैं मजबूर हूं।

लेकिन आपपर होनेवाला यह अन्याय तो बरदास्त से बाहर है। बापूसाहब पर आप जरा अंकुश रखिये।”

इतना कहकर दीक्षित कुछ देर के लिए चुप हो गये। वे देख रहे थे कि उनकी बातों का बकुल पर कुछ असर पड़ा या नहीं। बकुल मस्तक झुकाये उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। वे आगे बोले, “बापूसाहब आगे इस तरह व्यवहार न करें, इसलिए उनके रास्ते में रोक लगाने की अत्यंत आवश्यकता है। मिसेज देशमुख, मैं आपको क्या बताऊं, आप तो पहले ही दुखी हैं। सारी बातें सुनेंगी तो आपको बड़ा सदमा पहुंचेगा। सच पूछा जाय तो मुझे अपने मालिक के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं करनी चाहिए। लेकिन आजकल खदान पर बापूसाहब के प्रति लोगों और मजदूरों के मन में कोई विशेष आदर नहीं रहा है। वे उनपर इतने नाराज हैं कि कुछ न...”

बोलते-बोलते दीक्षित बीच ही में रुक गये। लेकिन उनके शब्दों से बकुल का हृदय भय से कांप उठा। उनकी ओर देखते हुए वह कांपते स्वर में बोली, “आप यह क्या कह रहे हैं, दीक्षित साहब? उनकी जान को तो कोई खतरा नहीं है?”

“जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। आप बिल्कुल निश्चित रहें। लेकिन बापूसाहब के स्वच्छन्द व्यवहार पर रोक लगानी होगी। खदान की कुछ लड़कियां बापूसाहब के मान को धक्का पहुंचा रही हैं।”

“बस, बस!” बकुल उन्हें रोकते हुए बोली, “कृपया ऐसी कोई बात मुझे न सुनायें। यह मैं क्या सुन रही हूं? मैं क्या करूं दीक्षितसाहब?” कहते-कहते बकुल विह्वल हो गई।

बकुल की विह्वलता देखकर दीक्षित का हृदय विचलित हो गया। उन्होंने सोचा था कि अपने पति के दुराचारपूर्ण व्यवहार की बात पर स्त्री-स्वभाव के अनुसार वह नाराज होगी और पति को काबू में करने का कोई उपाय सोचेगी, लेकिन बकुल का जीवन सामान्य स्त्रियों की तरह न था। बापूसाहब की अर्द्धांगिनि होकर भी उनपर उसका अधिकार न था। उनके जीवन में उसके लिए आदर का स्थान न था। अपनी इस अवस्था पर वह आंसू ही बहा सकती थी। सजल नेत्रों से उसने दीक्षित से कहा, “बताइये, मैं क्या करूं? न जाने भगवान कब मेरा दुर्भाग्य दूर करेगा?”

बकुल को सांत्वना देने के लिए दीक्षित ने बड़े ही मंद स्वर में कहा, "मिसेज़ देशमुख, आखिर कितनी दुखी रहेंगी आप ? दुखी होने से कहीं जीवन की समस्या हल हुआ करती हैं ? उससे तो मनुष्य निराश हो जाता है ।"

दीक्षित के इन शब्दों से बकुल को कुछ सांत्वना मिली । दीक्षित के प्रति उसके हृदय में जो आदर और स्नेह था, वह द्विगुणित हो गया । उसके जीवन में दीक्षित के स्नेह की हरियाली और अधिक सुखदाई हो उठी ।

“स्नोई, स्नोई, ठहर। उधर मत जा, इधर आ !”

अनंत दीक्षित जिस टेकड़ी के शिखर पर खड़े थे वहीं उनका अल्से-शियन स्नोई कुत्ता भी खड़ा था। इसी समय टेकड़ी के नीचे गांव का एक पालतू कुत्ता दौड़ता हुआ जा रहा था। उसे देखते ही स्नोई तीर की तरह उसकी ओर लपका। लेकिन अपने स्वामी की आवाज सुनते ही एक आज्ञाकारी की भांति जहां-का-तहां ठिठक गया। फिर तुरंत दीक्षित के पास लौट आया और ‘कू-कू’ करता हुआ, अपनी भबरीदार दुम को तनिक झुकाकर, इस तरह से खड़ा हो गया मानों अपने नाराज स्वामी को मना रहा हो। दीक्षित ने स्नोई को जब वह छोटा था तब से पाला था। उसे अच्छी आदतें सिखाई थीं। आज्ञा-पालन की शिक्षा दी थी। स्वामी की प्रत्येक आज्ञा को मानने में वह बड़ा जागरूक रहता था। दीक्षित भी उसे बेहद प्यार करते थे। कितनी ही बार उसकी चतुराई मनुष्य को भी लज्जित कर देनेवाली होती थी। दीक्षित खदान के बंगले में अकेले रहा करते थे। इसलिए स्नोई उनका सही माने में सच्चा मित्र बन गया था। दीक्षित की मनःस्थिति को वह तुरंत भांप जाता था। जब वे क्रोध में होते तो स्नोई नम्रता से मस्तक झुकाकर उनके पैरों के पास चुपचाप खड़ा हो जाता। इस समय भी वह इसी तरह खड़ा था। लेकिन दीक्षित उसपर जरा भी गुस्सा नहीं हुए थे। उन्होंने झुककर उसके बदन पर प्यार से हाथ फिराते हुए कहा, “अरे, मैं नाराज नहीं हूं तुझसे। चल, अब हम नीचे उतरें।”

उनके शब्दों का अर्थ स्नोई समझ गया। टेकड़ी से नीचे उतरने से पहले उसने मालिक का बायां हाथ चाटा और फिर उनके साथ चलने लगा। टेकड़ी का ढलान जरा कठिन होने से दीक्षित पैर जमा-जमाकर नीचे उतर रहे थे। मैंगनीज की खदानवाला वह पर्वतीय भाग सतह से करीब दोसौ फुट ऊंचा था। वहां मैंगनीज का एक बड़ा खोंडरा था, जिसमें खुदाई हो रही थी।

उस काम में कोई हज़ार-बारहसौ मज़दूर लगे थे। कुछ मज़दूर तो पिछले दिन सुरंग से खोदे गए मैंगनीज को सब्बलों से खोद-खोदकर बाहर निकाल रहे थे। कुछ उसके बड़े-बड़े टुकड़ों को फोड़-फोड़कर छोटे कर रहे थे। मैंगनीज से पत्थर के टुकड़े पृथक् करने का काम स्त्रियां कर रही थीं, जिनमें कुछ जवान थीं। मैंगनीज से भरे घमेले सिर पर ढोकर वे 'इनक्लाइन्'⁹ पर रखे चार पहियोंवाले ठेलनुमा 'टबों' में भर रही थीं और वे भरे हुए टब मशीन के द्वारा लोहे की पातों पर से नीचे उतर रहे थे। दूसरे खाली टब ऊपर चढ़ रहे थे। जो टब नीचे जाते, वे टेकड़ी की तलहटी में करीब दो फर्लांग की दूरी पर बने 'साइडिंग' पर पहुँचते थे। वहाँपर मज़दूर उन्हें खाली करते थे। इस काम की देखरेख करनेवाला ओवरसियर या उसके मातहत कर्मचारी मैंगनीज की जांच करके देखते थे कि उसमें पत्थर या मिट्टी तो नहीं मिली है।

जिस स्थान पर मैंगनीज खोदकर निकाला जा रहा था, उस स्थान पर दीक्षित खड़े हुए चारों ओर नज़र दौड़ाकर काम देख रहे थे। यह देखकर कि मैनेजर साहब नज़दीक खड़े हुए हैं, मज़दूरों में सनसनी फैल गई और वे चुपचाप तत्परता से काम करने लगे। काम की देख-रेख करनेवाले नत्थूराम की बक-बक और उसके मुंह से होनेवाली गालियों की बौछार एकदम रुक गई। वह भट-से दौड़कर दीक्षित के पास आया और मज़दूरों की नाना प्रकार की शिकायतें करने लगा। दीक्षित ने शांति से उसकी सब बातें सुनीं, लेकिन उसे किसी प्रकार का प्रोत्साहन न देकर उससे पूछा, "नत्थूराम, आज कितने सुरंग लगा रहे हो?"

"हुज़ूर, आज सौ सुरंग लगाने को ओवरसियर साहब कह रहे थे, लेकिन विस्फोटक पाउडर की कमी हो जाने से सिर्फ पचास ही लग सकेंगे।" दीक्षित जानते थे कि पाउडर और सुरंग लगाने की बतियां स्टॉक में नहीं हैं। उन्होंने यह सामान नागपुर से बहुत जल्द मंगवाया था और उसीकी वे इस समय प्रतीक्षा कर रहे थे। नत्थूराम से बातें करते-करते उन्होंने

⁹ पहाड़ से मैंगनीज को नीचे उतारने के लिए बनाया गया विशेष तौर पर ढलवां मार्ग।

मंगनीज का एक छोटा काला पत्थर हाथ में लिया और उसे जांचकर देखा। उनकी इस हरकत को और उनके पीछे-पीछे चक्कर काटनेवाले उनके स्नोई को वहां के मजदूर और विशेषकर मजदूरनियां बड़े कुतूहल से देख रहे थे।

दीक्षित रोज सुबह-शाम कम-से-कम दो-तीन घंटे खदान के काम की देख-रेख किया करते और ठेकेदार, ओवरसियर तथा मजदूरों के काम पर कड़ी निगाह रक्खा करते थे। इस समय काम देखते हुए वे नत्थूराम के साथ इन्कलाइन से नीचे उतरे। ओवरसियर को कुछ जरूरी और महत्वपूर्ण सूचनाएं दीं। फिर कोई बारह बजे अपने बंगले पर जाने के लिए रवाना हुए। मजदूरों के भी खाने का समय हो गया था। कुछ लड़के नजदीक की भोंपड़ियों से मजदूरों का खाना लेकर आ चुके थे। मजदूर अपना-अपना खाना लेकर बैठ गये और सूखी रोटी चटनी के साथ खाकर अपने उदर की ज्वाला शांत करने लगे। मजदूरों का वह रूखा-सूखा खाना देखकर दीक्षित को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें स्मरण हुआ कि जब वे बंगले पहुंचेंगे तो चमकीली प्लेटें और चम्मच उनके आगे रखे जायेंगे। खानसामा अदब से परोसेगा और एक लड़का उनके पीछे खड़ा होकर पंखा भलता रहेगा। लेकिन यह कैसी विषमता है कि लगातार आठ-दस घंटे कड़ा परिश्रम करने-वाले इन मजदूरों को पेट-भर खाना भी नसीब न हो !

देश की विषमता के विचार ने दीक्षित के मन को विचलित कर दिया। एक तरफ मजदूरों के पसीने से लाखों की कमाई करनेवाले बापू-साहब जैसे धनिक को वे देख रहे थे तो दूसरी तरफ गरीबी में निरंतर पड़े हुए कंगाल उन्हें दिखाई पड़ रहे थे। घने वृक्षों की छाया के बीच दीक्षित का बंगला स्थित था। सोचते-विचारते वे उसमें आये और कपड़े बदलने के लिए अपने कमरे में चल दिये। स्नोई लंबी जीभ निकालकर हांफता हुआ उनकी खाने की मेज़ के पास जाकर बैठ गया। खानसामा द्वारा पकाये गये खाने की सोंधी सुगंध कमरे में छा रही थी।

दीक्षित रोज़ की तरह अपने पैरों के पास बैठे हुए स्नोई के सामने बीच-बीच में कुछ टुकड़े बड़े प्यार से फेंकते जाते थे, जिन्हें वह खा लिया करता था। इस समय भी वह यही कर रहे थे। खाना खा चुकने पर उन्होंने हाथ धोये। उसके बाद खानसामा स्नोई के लिए उसका खाना ले आया। स्नोई

उसपर टूट पड़ा। दीक्षित उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। लेकिन उनके मन में दूसरे ही विचार कुहराम मचा रहे थे। बकुल, बापूसाहब और वह स्वयं—इन तीन व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष के विचार उनके मन में आ रहे थे। तीन वर्ष पहले वे बापूसाहब के यहां नौकर हुए थे। तबसे एक नहीं, अनेक घटनाएं उनके जीवन में घटी थीं। उन घटनाओं की उनके मन पर जो गहरी प्रतिक्रिया हुई थी, इस समय वे उसीकी समीक्षा कर रहे थे। इंग्लैंड के रायल स्कूल ऑफ माइनिंग से ए० एम० आई० आर० ए० एस० एम० की परीक्षा देकर लौटने के बाद उन्होंने कुछ महीने बालाघाट की सी० पी० एम० ए० नाम की एक माइनिंग कंपनी में बिताये थे। वहां के काम में उन्होंने व्यावहारिक रूप से खान-संबंधी काफी अनुभव प्राप्त कर लिया था। वहीं बापूसाहब से उनका परिचय हुआ। बापूसाहब उनके काम से खुश होगये और उन्हें अपनी रामटेक की खदान का मैनेजर नियुक्त कर दिया।

इस नौकरी में उन्होंने अपना खून-पसीना एक कर दिया। शहर के कोलाहलपूर्ण वातावरण में रहना पसंद न होने के कारण वे खदान पर बने बंगले में रहा करते थे। उन्हें इसी बंगले में रहना अच्छा लगता था। उनका सारा समय खदान के अनाड़ी और उजड़ड लोगों के बीच बीतता। वे स्वयं देखा करते थे कि बढ़िया जाति का मैंगनीज खोदा जाता है या नहीं और उसमें जो गुण होने चाहिए वे होते हैं या नहीं। उसी तरह भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार मैंगनीज की रीफ कहां मिलेगी, इसका भी वे अध्ययन किया करते थे। इसके लिए उन्हें बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ता था। पहले, दूसरे और तीसरे दरजे में मिलनेवाली मैंगनीज का प्रथक्करण भी वे बड़े मनोयोग से किया करते थे। इसके अतिरिक्त, खदान में काम करनेवाले मजदूरों के आपसी झगड़े सुलझाते थे और उनकी कठिनाइयां दूर किया करते थे। गोंड और भील मजदूरों के बीच रहते हुए भी वे अपना स्वभाव बड़ा शांत रखते थे। इसलिए उनके प्रति मजदूरों के मन में अपनत्व की भावना थी और उनपर उनकी धाक भी थी। यही नहीं, बल्कि वर्षा में मजदूरों की आबादी में मलेरिया आदि रोग फैलने लगते तो उनकी दवा-दारू का अच्छे-से-अच्छा प्रबंध करने की वे कोशिश करते थे। इन्हीं सब बातों ने उन्हें

सबका प्रिय बना दिया था। लेकिन बापूसाहब कभी-कभी खदान पर स्वयं रहने आ जाया करते और खलबली मचा देते। इस वजह से दीक्षित द्वारा पैदा किया गया अनुशासन एकदम भंग हो जाया करता था। मजदूरों के मामले जब बापूसाहब के पास पहुंचते तो वे क्रोधावेश में उनको पीट डालते, सजाएं दे डालते अथवा उनकी मजदूरी रोक देने का हुक्म दे देते। बापूसाहब के इस उन्मत्त स्वभाव के कारण दीक्षित के मन में नौकरी छोड़कर चले जाने का विचार आने लगा था। लेकिन वर्ष-पर-वर्ष निकल जाने पर भी वे वहीं नौकरी कर रहे थे। अनेक प्रसंगों और कठिनाइयों का उन्होंने सामना किया था और उचित उपाय खोजकर समस्याएं हल की थीं। लेकिन बापूसाहब की तानाशाही और क्रूर व्यवहार के कारण कुछ प्रसंगों में राह निकालना जब असंभव हो जाता तब दीक्षित के मन में नौकरी से इस्तीफा देने का विचार चक्कर काटने लगता। पर ऐसे समय बकुल की मूर्ति उनके सामने आ जाती। उस समय उनके मन में और भी संघर्ष मच जाया करता।

...

...

...

संपत्ति के मामले को लेकर अण्णासाहब और बापूसाहब के बीच मन-मुटाव बढ़ने लगा था। अण्णासाहब बकुल की संपत्ति के ट्रस्टी थे और बकुल बापूसाहब की आधी आमदनी की हकदार थी। ऐसी हालत में पैसे के बारे में जब कोई भी व्यवहार करना होता तो बापूसाहब को अण्णासाहब की सलाह लेने के लिए बाध्य होना पड़ता था। लेकिन बापूसाहब ने अपनी यह धारणा बना ली थी कि ऐसी कोई सलाह अण्णासाहब से लेना अपने आपको एक प्रकार से नीचा दिखाना है। वे भीतर-ही-भीतर अण्णासाहब से नाराज रहने लगे थे और इस नाराजी में ही उन्होंने बकुल को बार-बार अण्णासाहब के घर जाने की मनाही कर दी थी, क्योंकि उन्हें यह भय लगने लगा था कि अण्णासाहब बकुल को कुछ पट्टी पढ़ा देंगे और पैसे के मामले में उसे सतर्क कर देंगे ! बापूसाहब की इस आज्ञा के कारण बकुल का पिता के घर आना-जाना कम हो गया था, लेकिन इससे उसके मन की घुटन बढ़ गई थी। उसकी दयनीय दशा देखकर दीक्षित को उसके प्रति और भी सहानुभूति होने लगी थी। यह अनुभूति होते ही कि बकुल को

उनकी सहानुभूति की आवश्यकता है, उन्होंने नौकरी छोड़ देने का विचार त्याग दिया था। उस दिन क्लब के पुस्तकालय में बकुल की आंखों से टप-टप गिरते आंसू देखकर अनंत का हृदय दग्ध हो उठा था और उन्होंने निश्चय कर लिया था कि कुछ भी हो, वे बकुल के निकट रहेंगे और आड़े समय में उसे सहायता देते रहेंगे।

“बापूसाहब तो रोज़ के हाथ का खिलौना हो गये हैं !” यह वाक्य दीक्षित ने अपने-आपसे कई बार कहा होगा, लेकिन उस वाक्य के पीछे छिपा हुआ विषाद और रोष किसी भी तरह कम नहीं हो रहा था। वह कम हो जाय, यह शायद संभव भी नहीं था। पन्द्रह मिनट पहले ही उन्हें जो घटना देखने को मिली थी, वही इस विषाद का कारण थी। दो दिन पहले बापूसाहब खदान पर आये थे। उन्हें नागपुर के खदान-आफिस के मैनेजर से किसी महत्वपूर्ण काम के संबंध में बातें करनी थीं। इसलिए वे अपने साथ दीक्षित को लेकर नागपुर के लिए रवाना हुए थे। रामटेक से कोई दसक मील की दूरी पर उनकी कार पहुँची होगी कि उन्हें रोज़ और उसके पिता नागपुर जाते हुए दिखाई दिये।

बापूसाहब को कार में देखते ही रोज़ ने अपनी कार रोक ली और बड़े मीठे शब्दों से बापूसाहब पर मोहनी फूँककर उन्हें कामठी तक अपनी कार में बिठा लिया। रोज़ के हर शब्द को बापूसाहब सिर आंखों लेते थे। उसके साथ से वे कभी ऊबते नहीं थे। बापूसाहब के इस स्वभाव पर दीक्षित को आश्चर्य होता था। कार में अकेले नागपुर आते हुए दीक्षित बार-बार स्वतः ही कह रहे थे, “बापूसाहब तो रोज़ के हाथ का खिलौना हो गये हैं !”

दीक्षित के शब्दों में बहुत-कुछ वास्तविकता थी। बापूसाहब को बकुल का सहवास बड़ा कष्ट-प्रद लगा करता था। अतः वे रोज़ के साथ के लिए बराबर आतुर रहते थे। दीक्षित को इसपर बड़ा आश्चर्य होता था। बकुल से बापूसाहब इतना विरक्त क्यों हो गये हैं, यह बात प्रारंभ में दीक्षित की समझ में नहीं आती थी। वे सोचते थे कि शायद बकुल के तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण वे उससे दूर रहते हैं और उसके साथ एकरस नहीं हो पाते। बापूसाहब सुशिक्षित थे, इसमें संदेह नहीं, लेकिन बाद में दीक्षित ने देखा कि उनकी मनोवृत्ति उच्च स्तर की नहीं है। इसी कारण बकुल जैसी भावना-प्रधान और बुद्धिप्रधान स्त्री से वे एकरूप नहीं हो सकते थे। उनके स्वभाव

में जिस तरह अहंभाव स्पष्ट रूप से भांक रहा था, उसी तरह दुराग्रह और 'टूट जाऊंगा पर भुकूंगा नहीं' वाली हेकड़ी भी काफी मात्रा में मौजूद थी। बकुल जैसी स्वाभिमानिनी और बुद्धिमान पत्नी से वे द्वेष ही अधिक किया करते थे। धीरे-धीरे उसके प्रति उनका स्नेह-स्रोत एकदम सूख गया। वे रोज़ से जितना दिल खोलकर मिलते थे, उतना यदि वे बकुल के साथ करते तो उसके जीवन की रिक्तता बहुत-कुछ कम हो जाती। स्नेह की शीतल छाया के लिए छटपटाने वाला बकुल का दुःखी मन बहुत सुखी हो जाता।

दीक्षित इन्हीं विचारों में इस समय खो गये। अचानक उनके मन में बकुल से मिलने की अभिलाषा जाग उठी। मोटर कामठी पहुंची। दीक्षित बापूसाहब की प्रतीक्षा करने के लिए बंगले पर ही उतरे। चूंकि रास्ते में बापूसाहब को रोज़ मिल गई थी, इसलिए वे जल्द लौट आयेंगे, यह आशा उन्हें नहीं रही थी। यह देखते ही कि मैनेजर साहब आये हैं, नौकर उन्हें बैठकखाने में ले गये। लेकिन थोड़ी देर अकेले बैठने पर वे ऊब-से उठे। अतः यह सोचकर कि जरा बाग में जाकर टहल आऊं, वे बैठकखाने से उठकर बाहर आये। फिर उन्होंने सोचा कि यदि बकुल बंगले में हो, तो उससे मिल लूं। उन्होंने एक नौकर से पूछा, "मालकिन घर में हैं क्या?"

"नहीं हुजूर, थोड़ी देर पहले वे मंदिर चली गई हैं।"

नौकर के इस उत्तर ने दीक्षित को थोड़ा निराश कर दिया। उस दिन कामठी से नागपुर जाते समय उन दोनों ने एक ही मोटर में साथ-साथ सफर किया था। रास्ते में दोनों में खूब बातें हुई थीं, लेकिन उसके बाद से बकुल दीक्षित से मिलना टालने लगी थी। बरामदे की सीढ़ियां उतर बाग में प्रवेश करते हुए उन्होंने अपने-आपसे पूछा, "क्या बकुल ने पूजा-पाठ करना आरंभ कर दिया है?"

दीक्षित को मालूम था कि बकुल के संतान हो, इसलिए ताई नागपुर की कोठी में खूब पूजा-पाठ कर रही हैं और उन्होंने बकुल से भी बहुत-से व्रत, पूजाएं और दान आदि करने को कहा है। जब मनुष्य विपत्तियों और दुखों से घिर जाता है, तब ईश्वर के चरणों में बैठकर उसकी प्रार्थना करता है और उसीमें अपना मन लगाये रहता है। इसके सिवा कठिनाइयों से बचने का चारा ही क्या रहता है? सच बात यह थी कि बकुल महसूस करने

लगी थी कि आज उसकी गोद में यदि एक नन्हा-सा शिशु खेलता होता, तो उसका दुःख बहुत-कुछ कम हो जाता। अपनी इस साध को फलीभूत करने के लिए उसने अपने मन को ईश्वर के ध्यान में लगा दिया था। सुबह वह जप-पूजन आदि करती और शाम को देव-दर्शन के लिए मंदिर जाती। यह उसका नित्य का क्रम ही बन गया था और इसीलिए वह इस समय मंदिर गई थी।

बाग की लताओं और पेड़ों पर खिले फूलों की ओर देखते हुए दीक्षित सूर्यास्त के मनोरम दृश्य को निहारने लगे। वृक्षों की चोटियों पर सुनहरी किरणें नृत्य कर रही थीं, वायु के झोंकों से पत्तों में से संगीत फूट रहा था। आम के पेड़ पर नन्हें-नन्हें पक्षियों के दल कलरव कर रहे थे। निकटवर्ती फव्वारे से पानी ऊपर की ओर उछल रहा था। उससे सारे वातावरण की शोभा कई गुनी हो गई थी। उसे देखकर दीक्षित का मन बहुत ही प्रफुल्लित हो उठा। वे घूमते हुए बाग की बाड़ तक, जो उसकी सरहद पर लगी हुई थी, पहुंच गये।

बाड़ के उस पार दस-पंद्रह फुट नीचे कन्हान नदी का प्रवाह कलकल-निनाद कर रहा था। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों का प्रतिबिंब नदी की जलधारा से अठखेलियां कर रहा था।

नदी के उस पार मजदूरों की झोंपड़ियां थीं। उनमें इस समय चूल्हे जल रहे थे और उनसे उठनेवाला धुआं आकाश के विस्तीर्ण संपुट में खोने लगा था। अनंत को लगा, बड़े-बड़े राजमहलों और बंगलों में रहनेवाले लक्ष-पतियों और करोड़पतियों की अपेक्षा इन झोंपड़ियों में रहनेवाले लोग ही अधिक सुखी होंगे। दिन-भर कठिन परिश्रम करने के बाद सायंकाल के रम्य वातावरण में इनका पारिवारिक मेला लगता होगा और वे असीम आनंद लूटते होंगे। लेकिन इस प्रशस्त बंगले में देखो, पति का मुंह एक ओर है तो पत्नी का दूसरी ओर। इन विचारों से उनका मन क्षुब्ध हो उठा। इसी समय उनका ध्यान मंदिर की ओर गया। दीक्षित ने मन-ही-मन सोचा, “केवल सुख की खोज में बकुल उस मंदिर के भगवान के सामने हाथ जोड़े खड़ी होगी। उस मंदिर का गीता का उपदेश देनेवाला निर्विकार भगवान उसे शायद कर्मफल त्यागने और सुख और दुःख को एक-सा समझने का उपदेश दे रहा होगा।”

बकुल वास्तव में निर्विकार मन से मंदिर के भगवान के पास खड़ी थी। उसने आंखें बंद कर ली थीं और हाथ जोड़कर कह रही थी, “हे कृपानिधान, जीवन की इस आंधी में क्या मैं अपनी प्राण-ज्योति स्थिर रख सकूंगी ? यह सब तुम्हारे आशीर्वाद पर अवलंबित है। आंधी से इस ज्योति के दीप को बचानेवाले, संभालनेवाले और उसे निरंतर जलते रहने की शक्ति देनेवाले मेरे एकमात्र आधार तुम्हीं हो। तुमने यदि मुझे सहारा न दिया तो इस भयानक आंधी में मेरा यह प्राण-दीप बुझ जायगा।” इतना कहकर उसने सजल नयनों से भगवान के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और उनको मजबूती से पकड़कर अपने आंसुओं से उनकी पूजा करने लगी। थोड़ी देर बाद वह अपनी नौकरानी के साथ मंदिर से बाहर आई। उसी समय दीक्षित तरंगों की बहार देखने के विचार से एक छोटा-सा पत्थर हाथ में उठाकर उसे प्रवाह में फेंकने को उद्यत हुए। अचानक उन्हें बकुल नौकरानी के साथ बंगले की ओर लौटती हुई दिखाई दी। बहुत दिनों से उन्होंने बकुल को नहीं देखा था। इसलिए वे एकाग्र दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। बकुल नदी के किनारे की बालू में से एक-एक कदम आगे बढ़ाती हुई बंगले की ओर आ रही थी। क्षण-भर के लिए बीच में रुककर वह क्षितिज पर सूर्यास्त का मनोरम दृश्य देखने लगी। फिर आगे बढ़ी और पानी के प्रवाह के निकट आते ही पुनः रुक गई। उसने चप्पल उतार दिये। नौकरानी ने उन्हें उठाकर अपने हाथ में ले लिया। बकुल ने अपने दोनों हाथों से साड़ी पैरों पर से थोड़ी ऊपर उठा ली और फिर धीरे-से पानी में प्रवेश किया। कितनी मोहक लग रही थी बकुल उस समय ! पानी में डूबनेवाले और पुनः ऊपर आकर आगे बढ़नेवाले उसके गोरे-गोरे सुकुमार पैर रुपहली मछलियों की तरह शोभा दे रहे थे। बीच में एक जगह थोड़ा गहरा पानी था। लेकिन बकुल को उस गहराई की कल्पना न होने से उसने एक कदम आगे पैर बढ़ाया, तो वह घुटने तक गहरे पानी में चली गई। तब उसने अपनी साड़ी काफी ऊपर उठा ली। बकुल के रोम-रोम से झलकनेवाला सौंदर्य दीक्षित को कभी-कभी देखने को मिल जाया करता था। लेकिन सायंकाल के सुनहरे मंद प्रकाश में, सफेद साड़ी पहनकर प्रवाह में से बंगले की ओर लौट रही बकुल उन्हें बेहद सुंदर लगी। प्रकृति के प्रति बकुल के मन

में बड़ा आकर्षण था। उसके सान्निध्य में उसने अपने दुःख और निराशाओं को अनेक बार पराभूत किया था। नदी का शीतल जल-प्रवाह उस समय उसे बड़ा सुख दे रहा था। सायंकाल का रमणीय वातावरण उसके रोम-रोम को पुलकित कर रहा था। इस आंतरिक उल्लास के कारण उसके मुख-मंडल पर हास्य की जो रेखाएं खिंच गई थीं, उनसे वह और भी अधिक आकर्षक लग रही थी।

दीक्षित को लगा, नदी के प्रवाह की ओर जाने के लिए जो फाटक है, वहां जाऊं और बंगल की ओर आनेवाली बकुल के सामने खड़ा हो जाऊं। पर सोचने पर उन्हें ऐसा करना ठीक न लगा। वे जानते थे कि बकुल उनसे मिलना टाल रही है। पहले एक बार किसी काम के निमित्त वे बंगले पर आये थे और उन्होंने उससे मिलना चाहा था, लेकिन बकुल ने यह कहलवाकर कि “मैं नहीं मिल सकती” उन्हें निराश कर दिया था। इस कारण बकुल के पास जाने के उठते विचार को उन्होंने दबा दिया। इसी समय बाग का फाटक खुला। बकुल अपनी नौकरानी के साथ भीतर आई और उससे बोली, “तू बंगले में जा और देवघर में दीप जला दे। मैं बाग में थोड़ा टहलकर आती हूँ।”

“लेकिन सरकार, आपकी साड़ी गीली हो गई है। क्या कपड़े नहीं बदलेंगी?”

“नहीं, साड़ी ज्यादा गीली नहीं हुई है। निचला पल्ला ही थोड़ा गीला-सा लग रहा है। हां, और देख, अगर साहब आ जायें तो मुझे फौरन खबर देना। समझी?”

नौकरानी के जाते ही बकुल मंद गति से ऊपर चढ़कर आ रही थी। दीक्षित एक ओर खड़े हुए थे। बकुल यदि ऊपर चढ़कर जहां वे खड़े थे उस तरफ मुड़ती, तो उसी उमय उन दोनों की भेंट हो जाती। दीक्षित को अपने-आप बकुल के पास जाने में संकोच हो रहा था। इसलिए वे जहां-कै-तहां खड़े रहे। पर जो होनहार होता है होकर ही रहता है। जिस ओर दीक्षित खड़े हुए थे, बकुल उसी ओर से ऊपर आई। उन दोनों के बीच का अंतर कम हो गया। दीक्षित पर निगाह पड़ते ही वह चौंक उठी। क्षणभर के लिए वह उनकी ओर देखती रही। फिर उसने पूछा, “आप कब आ गये?”

“थोड़ी ही देर हुई है। कोई बीस मिनट हुए होंगे।”

“तो साहब भी आगये होंगे?”

“जी नहीं, वे पीछे से आ रहे हैं।”

“पीछे से! क्या मतलब? वे तो आप ही के साथ आ रहे थे न?”

“जी हां, हम दोनों साथ ही रवाना हुए थे। लेकिन रास्ते में...”

आगे कहने में वे कुछ हिचकिचाये। क्षणभर के लिए मौन हो गये। उनके सामने द्विविधा थी कि उससे कैसे कहें कि बापूसाहब तो रोज़ के हाथ की कठपुतली हो गये हैं। उनके प्रति मन में जो चिढ़ पैदा हो गई थी, उसे अपनी मालकिन के सामने प्रकट करने की उन्हें हिम्मत न पड़ती थी। इसलिए वे वाक्य को अधूरा छोड़कर ही चुप हो गये थे।

उन्हें चुप होते देख बकुल ने पूछा, “क्यों, क्या साहब को अकेले ही आने की इच्छा हो आई थी?”

बकुल के प्रश्न से दीक्षित और भी असमंजस में पड़ गये। वे बोले, “वैसी कोई बात नहीं थी। लेकिन...”

दीक्षित को पुनः ‘लेकिन’ शब्द पर लड़खड़ाते देखकर बकुल बोली, “आपको सच बात कहने में संकोच हो रहा है, लेकिन मैं सब जानती हूँ। कम-से-कम इतना ही बता दीजिये कि क्या उनके लौटने की आज कोई संभावना है? क्या ऐसी कोई खबर आपके साथ उन्होंने भेजी है?”

“मुझे तो उन्होंने कोई खबर देने को नहीं कहा, लेकिन मैं सोचता हूँ कि वे जल्दी ही लौटेंगे।”

बकुल कुछ न बोली। चुपचाप कुंद की कलियां तोड़ने लगी। अंजलि में जितनी समा सकती थीं उतनी तोड़ चुकने के बाद वह बोली, “ठीक है। मैं चलती हूँ।”

बकुल के व्यवहार में बड़ा संयम था। प्रतीत हो रहा था, जैसे उसने यह निश्चय कर लिया हो कि उसके हृदय में दीक्षित के प्रति जो स्नेह है, उसे आवश्यकता से अधिक न बढ़ने देना चाहिए। लेकिन दीक्षित का मन उससे बातें करने के लिए बेहद आतुर हो गया था। बकुल को जाते देखकर वह एकदम बोल उठे, “क्या आप पांच मिनट के लिए रुक सकेंगी? पिछले दो महीने में आपसे भेंट करने का मैंने कितना प्रयत्न किया, लेकिन

जान पड़ता है, आपने मुझे कुछ गलत समझ लिया है।”

दीक्षित की यह बात सुनते ही बकुल रुक गई। गरदन उठाकर उसने ऊपर देखा और बोली, “ऐसी कोई बात नहीं हुई है। लेकिन...”

बकुल बोलते-बोलते हिचकिचाई। तभी दीक्षित अधीरता से बोले, “क्या आपका ख्याल है कि हम दोनों न मिला करें?”

“जीहां, मेरा ऐसा ही ख्याल है।”

“लेकिन मेरे आपसे मिलने के अनेक कारण हैं और आप भी उन्हें जानती हैं। आपके दुखी और एकाकी मन को धीरज मिले, मेरी भेंट के पीछे यह हेतु बराबर रहता है। जिस जीवन में स्नेह नहीं, ममत्व नहीं, वह जीवन निर्जीव होता है और असहनीय हो जाता है।”

“दीक्षितसाहब, आप जो कह रहे हैं, वह सब सच है। लेकिन दुनिया में कुछ अभागे ऐसे भी होते हैं, जिनमें स्नेह प्राप्त करने की पात्रता नहीं होती। जीवन-साथी के स्नेह को पाने के लिए वे अभागे अयोग्य सिद्ध होते हैं। दुनिया की निगाह में चाहे मैं भाग्यशालिनी मालूम होती हूं, लेकिन मैं भी इसी तरह की एक अभागिन हूं। इस कारण स्नेह की आर्द्रता के बिना ही मुझे जीवन बिताना है। मुझ अभागिन के भाग्य में यही बदा है।”

बकुल का एक-एक शब्द उसके अंतर से उठकर आ रहा था और दीक्षित के हृदय के अन्तरतम में जाकर अपना घर बना रहा था। मस्तक झुकाये बकुल बोली, “हमारे देशमुख-घराने की लौकिक परंपरा को कायम रखने का दायित्व मुझपर है। मृत्यु के समय आबासाहब ने मुझसे यही वचन लिया था और उसी दिन मेरा स्नेह-सिक्त जीवन समाप्त हो गया था। अब इसके आगे जो जीवन बिताना है, वह आंखें मूंदकर ही बिताना होगा। आज की ही बात लीजिये। पिछले दो दिनों से मैं यहां बिल्कुल अकेली पड़ी हूं। क्या यह कहा जा सकता है कि मुझे किसी साथी की या किसीके स्नेह की कोई जरूरत न थी? खैर, छोड़िये भी। अनुभव से सच यही प्रतीत होता है कि हर एक को अपने-अपने भाग्य के अनुसार जीवन बिताना होता है।”

सच पूछा जाय तो तरुणाई में स्त्री को गृहस्थी में रम जाना चाहिए। जीवन का आनंद वहीं से लेना चाहिए। लेकिन बकुल, जिसकी आयु सिर्फ पच्चीस वर्ष की थी, एक दार्शनिक की तरह बड़े प्रांढ़ विचार प्रकट

कर रही थी। अनुभव, आघात और संघर्ष मनुष्य को बड़े-बड़े पाठ पढ़ाया करते हैं। वही पाठ बकुल अब अपने शब्दों के द्वारा अनंत के सामने दोहरा रही थी। अपनी पच्चीस वर्ष की उम्र में बकुल ने अनेक निराशाएं सहन की थीं, दुःख उठाये थे। बंधन और निग्रह की जो चोटें उसने सही थीं, उनके कारण उसके चेहरे पर कुछ विशिष्ट प्रकार के स्थायी भाव अंकित हो गये थे। जीवन की ओर अब वह सुख और भोग की दृष्टि से नहीं देखती थी। इसके विपरीत, वह अपने मन को बार-बार यह जताया करती थी कि यह जीवन एक संग्रामभूमि है। इस कारण भरी जवानी में भी वह अधिक गंभीर दीखने लगी थी। ऐसा लगता था, मानों उसके प्रसन्न ओठों पर दिन-प्रतिदिन ताला पड़ता जा रहा है। उसकी ओर देखते समय अनंत को यह परिवर्तन साफ दिखाई दिया। इसलिए उनके मन में उसके प्रति जो आदर था, वह और भी अधिक बढ़ गया। वे बोले, “कितनी प्रौढ़ता है आपकी बातों में ! किसने सिखाया है आपको जीवन का यह तत्त्वज्ञान ?”

“सिखायेगा कौन ?” मनुष्य अनुभव से ही सबकुछ सीखता है। फिर वह उसके स्वभाव का अंग हो जाता है। इसी कारण विष को हजम करने की उसमें ताकत आ जाती है।”

इसके बाद क्षण-भर के लिए दोनों मौन होगये। बकुल ने ये सारे कटु अनुभव अपनी आदत में शामिल कर लिये थे। उसने अपने मन को नवीन अपेक्षाओं की आशा न करने का मोड़ दे दिया था। उसकी सारी आशा-आकांक्षाएं चकनाचूर होगई थीं। यह सब होते हुए भी दीक्षित के सामने बात करते-करते उसकी आंखों में आंसू छलछला आये। नथने किंचित लाल-से होकर थरथराने लगे। वह एकदम आवेग से बोली, “दीक्षितसाहब, मैं इस दुःख के भार को बरदाश्त करने का साहस चाहती हूं। क्या मेरा हृदय भावनाशून्य और पत्थर की तरह कठोर नहीं हो सकता है ? प्रेम, ममता और स्नेह के बिना क्या मैं जीवन न बिता सकूंगी ?”

बगल के एक पेड़ का आधार लेते हुए बकुल ने हाथों में मुंह छिपा लिया। उसका आंसुओं का स्रोत खुल गया।

बकुल यदि खानदानी परिवार की स्त्री न होती तो घर से बाहर निकलकर, कोई अन्य मार्ग खोज लेती, अथवा अपने पति से न पटने के कारण,

उनसे अलग होकर, स्वतंत्रतापूर्वक रहने का कोई उपाय निकाल लेती। लेकिन वह एक प्रतिष्ठित परिवार की बहू थी, स्वामिनी थी। इसलिए ऐसा कोई मार्ग अंगीकार करना उसके लिए असंभव था।

दीक्षित बेचारे उसकी यह अवस्था देखकर बड़े हैरान हुए, पर उसके प्रति उनके मन में जो भावनाएं थीं, जो विवेक और स्नेह था, उनकी एक सीमा थी, उनके आसपास एक कांटेदार बाड़ी थी। संयम की उस बाड़ी को वे तोड़ना नहीं चाहते थे। उलटे, उस सीमा के पास रुककर उन्हें बकुल के दुःख को हल्का करना था।

कुछ क्षण बीतने के बाद बकुल का दुःख का आवेग कम होगया। उसने गर्दन उठाकर दीक्षित की ओर देखा। उसकी भाव-भंगिमा से ऐसा प्रकट हो रहा था, मानों वह अनुभव कर रही हो कि इस तरह आंसू बहाकर उसने बड़ी गलती की। अपने हृदय की विवशता दीक्षित के सामने इस ढंग से प्रकट नहीं होने देनी चाहिए थी। उन विचारों से बकुल को स्वयं अपने-आपपर लज्जा हो आई और दीक्षित की ओर फिर बिना देखे ही वह अपने बंगले की ओर चल दी।

इसके बाद दीक्षित रात के आठ बजे तक बापूसाहब की बाट जोहते रहे। लेकिन रोज़ के घर से वे नहीं लौटे। दीक्षित ने कामठी के मिलटरी मैस में एक मित्र के साथ खाना खाने जाने से पहले, बकुल को अपने जान का संदेसा भेजा, लेकिन सिरदर्द का कारण बताकर बकुल उनसे नहीं मिली।

विधाता ने दीक्षित और बकुल के जीवन के धागे कुछ इस तरह उलझा कर बुन दिये थे कि वे किसीके भी सुलभाये नहीं सुलभ सकते थे। बकुल दीक्षित से मिलना बराबर टाल रही थी। उनके प्रति अपना स्नेह न बढ़ने पावे, इसलिए वह अत्यन्त अलिप्त रहा करती थी। लेकिन कुछ घटनाएं अचानक ऐसी हो जाया करतीं कि उनसे पार होने के लिए दीक्षित को छोड़कर और कोई भी दूसरा व्यक्ति उसकी सहायता नहीं कर पाता था। शायद विधाता ने ही दीक्षित के जीवन के धागे बकुल के दुखों को हल्का करने के लिए उसके आसपास कोमल हाथों से फैला रखे थे।

करीब छः-सात साल के बाद बकुल गर्भवती हुई। नागपुर की कोठी में इस शुभ समाचार के फैलते ही आनंद की लहर दौड़ गई। ताई के हर्ष का तो पारावार ही न रहा। उन्हें लग रहा था, जैसे रामटेक के रामजी ही उनपर प्रसन्न होगये हैं। उन्होंने जो मनीती मनाई थी, वह फलवती होगई थी। इसलिए उसकी सफलता के उपलक्ष में एक बड़े आयोजन का प्रबंध हो रहा था, जिसके कारण कोठी में बड़ी धूम मची हुई थी। मातृत्व के सुख की प्राप्ति के लिए बकुल ने भी तो कितना पूजा-पाठ और कितने व्रत आदि किये थे। उसने त्रिपुरी पूर्णिमा को रामटेक के रामसागर में अपने हाथ से एक लाख दीप छोड़े थे। उस मनीती का मधुर फल उसकी कोख से साकार होनेवाला था।

शीघ्र ही अपनी गोद में एक सुंदर नाती खिलाने को मिलेगा, इस विचार से अण्णासाहब को परम आनंद हो रहा था। अपनी संपत्ति के लिए वारिस आ रहा है, इसलिए बापूसाहब भी गर्व अनुभव कर रहे थे। बकुल का स्वास्थ्य बीच-बीच में ठीक न रहने से ताई उसके पास रहने कामठी आगई थीं। उनकी इच्छा थी कि बकुल नागपुर आ जाय, लेकिन बकुल ने छठवां महीना लगने के बाद नागपुर जाने का निश्चय किया। इसलिए ताई को ही उसके पास आकर रहना पड़ा। बकुल की इच्छाएं पूर्ण करने में कोई कसर न उठा

रखती थीं। वे उसे फूल की तरह संभालती थीं।

ताई के आ जाने से बकुल को अच्छा साथ मिल गया था। बापूसाहब हमेशा की तरह घर रहने के बजाय, बाहर ही रहा करते थे। इधर चार दिन पहले घुड़-दौड़ के लिए वे बंबई गये हुए थे। इस कारण उनके साथ का तो कोई प्रश्न ही न था। एकादशी होने के कारण उस दिन ताई भी राम के दर्शन के लिए रामटेक चली गई थीं। उन्होंने बकुल से भी अपने साथ चलने का आग्रह किया, लेकिन यह सोचकर कि रामटेक के मंदिर की ऊंची सीढ़ियां चढ़ना उसके लिए उचित नहीं होगा, उसने ताई के साथ जाने से इन्कार कर दिया। अंत में ताई अकेली ही गई। बकुल बंगले में रह गई।

शाम को उसने केथरिन के घर जाने का इरादा किया था। लेकिन दोपहर को ही उसकी तबीयत अचानक बिगड़ गई। घर में नौकरों के सिवा और कोई न होने से वह घबड़ा गई। लेकिन नौकरों ने बड़ी सूझ से काम लिया। एक नौकर कामठी के मिलिटरी अस्पताल के बड़े अंग्रेज डाक्टर को बुला लाया और दूसरा अण्णासाहब को खबर देने के लिए फौरन नागपुर रवाना हो गया।

नौकर जब अण्णासाहब से बकुल की तबीयत अचानक खराब हो जाने का समाचार कह रहा था, अनंत दीक्षित वहीं बैठे हुए थे। अण्णासाहब का स्वास्थ्य उन दिनों ठीक नहीं रहा करता था, इसलिए दीक्षित उनके कुशल-समाचार जानने के लिए सहज ही आ गये थे। बकुल के अस्वस्थ होने का समाचार सुनकर अण्णासाहब को बड़ा धक्का लगा। चार दिन पहले ही वह नागपुर आकर उनसे मिल गई थी। उस समय स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। फिर अचानक यह क्या हो गया? वे घबड़ा गये। दीक्षित ने उन्हें धीरज बंधाते हुए कहा, “आप कोई चिन्ता न करें, अण्णासाहब! मैं सारा प्रबंध किये देता हूं। आप निश्चित रहें।”

यह कहकर वे तुरंत म्योर मेमोरियल अस्पताल में गये और वहां की अंग्रेज डाक्टर मिस मार्टिन और एक नर्स को साथ लेकर शीघ्र कामठी आ पहुंचे। बंगले में बकुल अकेली ही थी। यह मालूम होते ही दीक्षित नागपुर से लेडी डाक्टर लाये हैं, बकुल को थोड़ी हिम्मत बंधी। लेकिन यह देखकर कि अपने घर का कोई भी व्यक्ति पास नहीं है, वह कुछ निराश भी हो गई।

दीक्षित के सामने यह विचित्र प्रश्न उपस्थित हो गया कि ऐसी स्थिति में बकुल से मिले या न मिले ? समय बड़े संकट का था। फिर भी अपनी मर्यादा भूल जाना उनके लिए उचित न था। अंत में वह डाक्टर मार्टिन के साथ बकुल के कमरे में आये। उन्होंने बकुल की ओर देखा। उसकी दृष्टि से कातरता और विवशता व्यक्त हो रही थी। जब वे बकुल के पलंग के पास पहुंचे, उन्हें देखकर वह कंपित स्वर में बोली, “दीक्षितसाहब, मेरा अर्थ क्या होगा ?”

दीक्षित का उसके कमरे में अधिक देर तक रुकना संभव न था। वह बोले, “मिसेज देशमुख, आपको हिम्मत रखनी चाहिए। सब ठीक हो जायगा। ताईसाहब के लिए कार भेज दी है और वापूसाहब को भी तार कर दिया है।”

दीक्षित के ये शब्द सुनकर बकुल की आखें भर आईं। उसने कृतज्ञता से उनकी ओर देखते हुए कहा, “दीक्षितसाहब, साहब के आने तक आप यहीं रहने की कृपा करेंगे ?”

बकुल के इस प्रश्न से जिस तरह उसकी असहायता और भय प्रकट हो रहा था, उसी तरह दीक्षित की सहायता की इच्छा भी प्रकट हो रही थी।

“मिसेज देशमुख, मैं अवश्य ठहूंगा। लेकिन आपको हिम्मत नहीं छोड़नी चाहिए।” कहकर वे कमरे के बाहर चले गये। नर्स ने भीतर से कमरे का दरवाजा बंद कर लिया।

कामठी के मिलिटरी अस्पताल के अंग्रेज डाक्टर और मिस मार्टिन दोनों ने बकुल की अत्यन्त सावधानी से जांच की और सायंकाल के पांच बजे तक उसका इलाज किया। गर्भपात न हो, इसकी उन्होंने अधिक-से-अधिक सावधानी वरती। इस इलाज से बकुल को थोड़ा आराम हो गया। शाम को मिस मार्टिन ने एक बार फिर से बकुल के स्वास्थ्य की ठीक से जांच की और नर्स को उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए रख दिया। अनंतर वह नागपुर लौट गई। दीक्षित बाहर बैठकखाने में बैठकर एक पुस्तक में ध्यान लगाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन उनका ध्यान लग ही नहीं रहा था। वे अत्यन्त अस्वस्थ मनःस्थिति में थे। ताई को लाने के लिए जो कार भेजी थी, वह अभी तक लौटकर नहीं आई थी। इस कारण उनकी चिंता और भी बढ़

रही थी। इसी समय नर्स बैठकखाने में आई और दीक्षित से बोली, “मिसेज देशमुख आपको बुला रही हैं।” दीक्षित कमरे में गये। बकुल पलंग पर चुपचाप पड़ी थी। शरीर से बहुत-सा खून निकल जाने के कारण बड़ी कमजोरी आ गई थी। उसका चेहरा बिल्कुल जर्द पड़ गया था।

दीक्षित जब कमरे के भीतर आये, बकुल की आंखें आधी बंद थीं। उसने उन्हें धीरे-से खोला और दीक्षित की ओर देखा। कहते हैं, पुरुष का हृदय पत्थर की तरह कड़ा होता है। पर व्यवहार में पुरुष भले ही कठोर जान पड़ते हों, संकट के अवसर पर वे स्त्रियों से भी मृदुल होते हैं। दीक्षित के विषय में यही हुआ। बकुल की दयनीय अवस्था देखकर उनकी आंखें गीली हो गईं। क्षण-भर के लिए उन्हें सूझ ही न पड़ा कि उससे क्या और कैसे बोलें। अंत में बकुल ने ही मंद स्वर में पूछा, “ताई अभी तक तक नहीं लौटीं?”

“नहीं, आती ही होंगी।” दीक्षित ने जैसे-तैसे उत्तर दिया। बकुल क्षण-भर के लिए मौन हो गई। लेकिन उसकी आंखों में संचित आंसू नीचे प्रवाहित होने लगे। उन आंसुओं ने तो दीक्षित के हृदय को और भी हिला दिया। बकुल अत्यन्त दुख-भरे स्वर में बोली, “दीक्षितसाहब, क्या मेरा भाग्य इस समय भी मुझे धोखा देगा? सुख की यह असीस भी क्या मुझसे छिन जायगी?”

“नहीं, मिसेज देशमुख, आप व्यर्थ के विचार अपने मन में क्यों ला रही हैं? ईश्वर की शक्ति और उसके आशीष पर तो आपकी श्रद्धा है न? मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस बीमारी से आपको कोई हानि न होगी।”

आशा के इस स्वर से बकुल की आंखें चमक उठीं। वह बोली, “सच! क्या आप सच कह रहे हैं? इससे मेरी कोई हानि नहीं होगी? मिस मार्टिन ने आपसे क्या कहा?”

“उन्होंने कहा कि सब ठीक हो जायगा। आपको हिम्मत नहीं छोड़नी चाहिए।”

“दीक्षितसाहब, दोपहर से मेरा मन बिल्कुल बैठ-सा गया है। मेरे भावी सुख के बारे में यदि कुछ और ही होना हो, तो उससे पहले ही मेरा कुछ हो जाय तो अच्छा। यदि मेरे जीवन के सुख का अंश मुझसे छिन जाने-

वाला हो, तो मुझ जैसी अभागिन जीवित भी क्यों और किसके लिए रहे ?”

बकुल सिसकने लगी। दुःख का आवेग न रोक सकने के कारण वह अंत में बोली, “मुझे जीवित नहीं रहना चाहिए। दीक्षितसाहब, मैं सचमुच मरना चाहती हूँ।”

बकुल के इन शब्दों से दीक्षित को बड़ी वेदना हुई। वह भौंचक्के-से रह गये। उन्हें लगता था कि बकुल के बिल्कुल समीप जा बैठें और उसके केशों पर हाथ फेरते हुए कहें, “आप इस तरह हिम्मत न हारें। मनुष्य यदि डर जाय तो आधी असफलता उसके पल्ले बंध जाती है। यदि वह निर्भीक होकर साहस रखे तो आधी से अधिक सफलता उसके पास अपने-आप चली आती है। इसलिए आप हिम्मत न हारें।”

लेकिन जो वह चाहते थे, नहीं कर सके, क्योंकि एक तो बकुल विवाहित थी, दूसरे वह उनके मालिक की पत्नी थी। वे मैनेजर भले ही हों, फिर भी थे तो नौकर ही। वे अपनी मर्यादा में रहने को मजबूर थे। लेकिन ये विचार थोड़ी ही देर में उनके मन से दूर हो गये। मैं उसका एक मित्र हूँ, हितचिंतक हूँ, उसके प्रति अत्यंत स्नेह और सहानुभूति रखनेवाला हूँ, इतनी ही भावनाएं अब उनके मन में रह गईं।

बकुल के मन से दीक्षित के प्रति परायेपन का भाव जाता रहा। उसे जो दुख हो रहा था और उसके जीवन में जो दुर्भाग्य आ गया था, वह सब उसने कुछ भी न छिपाकर, उनके सामने प्रकट कर दिया था। अब वह उनकी ओर इस भाव से नहीं देख रही थी कि वे उसकी खदान के मैनेजर हैं। इसके विपरीत वह इस भावना से उनसे बातें कर रही थी कि वे उसके हितैषी हैं और उसके प्रति प्रगाढ़ स्नेह और सहानुभूति रखनेवाले एक घनिष्ठ मित्र हैं। इस कारण भारी मन से वह कुरसी से उठे और उसके पलंग के बिल्कुल समीप जाकर खड़े होते हुए बोले, “आप अपने मन में इतनी दुखी क्यों हो रही हैं ? ऐसा क्यों सोच रही हैं कि सबकुछ विपरीत होगा ?”

“क्यों सोच रही हूँ, इसके बहुत-से कारण हैं। सब लोग मुझे भाग्य-शालिनी कहते हैं, परंतु मैं तो अभागिन हूँ। ऐसा न होता तो आज मेरे सामने ऐसा प्रसंग ही क्यों आता ? दीक्षितसाहब, मेरा दुर्भाग्य इस समय

भी मेरे सुख के आड़े आ गया है।”

बकुल रोने लगी। उसे एक छोटे बालक की तरह रोते देख दीक्षित के मन में उसके प्रति जो कुछ परायेपन का भाव था वह भी दूर हो गया। अकस्मात् वह भुके और बकुल के गाल थपथपाते हुए बोले, “आप ऐसी बातें न कीजिये। ऐसा कोई भी विचार इस समय आपको मन में नहीं रखना चाहिए।”

इतना कहकर उन्होंने जेब से रूमाल निकाला और उसकी आंखें पोछीं, मानों वह चाहते हों कि उसका दुःख ही सोख लें। मंद आवाज़ में वे बकुल से बोले, “आप मुझपर विश्वास करती हैं न?”

“जी हां !”

“तब फिर अपने दिल को मजबूत कीजिये। ज़रा भी हिम्मत न हारिये। व्यर्थ के विचार मन में न आने दीजिये। यदि इस कठिन परीक्षा से सफलतापूर्वक पार होना है तो आपको अपनी इच्छा-शक्ति अधिक प्रबल करनी होगी। अब इस विषय पर आप कुछ न कहें। पूरी तरह आराम करें।”

दीक्षित ने उसे अच्छी तरह समझाकर संतोष दिलाया। बापूसाहब के लौटने तक वे बंगले पर ही रहे। उनकी उपस्थिति के कारण बकुल को ऐसा लग रहा था, जैसे उसके पास एक जबरदस्त आधार है। उसके गिरे हुए मन में हिम्मत आ गई थी। उसके प्रति दीक्षित के मन में जो स्नेह था, उसका मूल्य वह जान गई थी। वह अत्यंत आदर से उनकी ओर देखने लगी थी।

जिस दिन बापूसाहब आनेवाले थे, उस दिन उन्हें लेने के लिए दीक्षित को नागपुर स्टेशन जाना था। बकुल से बिदा लेने के लिए वे उसके कमरे में आये। किन शब्दों में उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करे और किस तरह न करे, यह बकुल नहीं समझ पा रही थी। उसके हृदय में दीक्षित के प्रति प्रगाढ़ ममत्व की भावना पैदा हो गई थी। वह कृतज्ञता से अभिभूत होकर बोली, “दीक्षितसाहब, किन शब्दों में आपका आभार मानूं, मैं नहीं समझ पा रही हूं। आपके कारण ही मेरे सुख की ज्योति जलती रही है। कम-से-कम इस जीवन में तो मैं आपके उपकारों से उद्धरण नहीं हो सकती।”

“वाह, आपने भी यह खूब कहा ! जहां अपनेपन की भावना नहीं होती, वही ऐसा शिष्टाचार बरता जाता। लेकिन जिस समय अपनत्व और

स्नेह को मान्यता प्राप्त हो जाती है, उस समय वहां आभार के लिए स्थान ही नहीं रहता।”

दीक्षित के इस उत्तर से बकुल मन-ही-मन उनकी बुद्धि सराहने लगी। वह सिर्फ हँसी। उसकी इस हँसी को अपने मन पर हमेशा के लिए अंकित कर दीक्षित नागपुर की ओर चल दिये।

जिस मनुष्य के प्रति हमारे मन में बहुत स्नेह होता है और उस स्नेह से निरंतर अपनत्व उमड़ता रहता है, ऐसे मनुष्य का यदि कोई छोटा-सा पत्र भी, जिसकी हमें कोई कल्पना न हो, अचानक मिल जाय, तो उसे देखकर कितना आनंद होता है ! उस पत्र को पढ़ने में हमें बड़ा मीठा सुख मिलता है। संतोष और समाधान हमारे आसपास जैसे नृत्य करते रहते हैं और फिर हम अपने-आपसे पूछते हैं, “क्या सचमुच यह पत्र मेरे ही पास आया है ? मैं जाग रहा हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ ? धरती पर हूँ या स्वर्ग के सुंदर उपवन में ?”

दीक्षित के बारे में इस समय ठीक यही हो गया था। करीब तीन महीने के बाद वे बकुल से मिलनेवाले थे, उसे देखनेवाले थे। ऐसी बात न थी कि इस समय वे सिर्फ उस अकेली को ही देखनेवाले थे, बल्कि उसकी गोद में खेलनेवाले शिशु को भी देखनेवाले थे। जहां दीक्षित इस समय खड़े हुए थे, वह नागपुर की बापूसाहब की सात तहखानेवाली कोठी थी। बैठकखाने के पीछे एक बड़ा कमरा था, जिसमें कुछ स्त्रियां बातें कर रही थीं और बकुल से विनोद कर रही थीं ! इसी समय कमरे से बाहर निकलने से पहले, दो अंग्रेज युवतियां अंग्रेजी में बोलीं, “अच्छा बकुल, हम जा रही हैं अब !”

उनके जाने के बाद दीक्षित बकुल से मिलने को थे। उनके मन में अनेक विचार उठ रहे थे। उन विचारों में सबसे महत्वपूर्ण विचार यह था कि जिस पत्र के पाने की इससे पहले कोई आशा न थी, वह बकुल का पत्र अभी तीन दिन पहले ही उन्हें मिला था।

इस बीच, असल में, हुआ यह कि दीक्षित ने बकुल के लिए आड़े समय में जो कुछ किया था, बापूसाहब के बंबई से लौटते ही ताई ने उन्हें सब बता दिया। बापूसाहब उससे बड़े ही प्रभावित हुए और उन्होंने दीक्षित का बहुत आभार माना। दीक्षित खदान पर चले गये। अचानक एक दिन उन्हें पूना से तार मिला कि उनके पिता तात्यासाहब बीमार हैं, दो माह की छुट्टी

लेकर पूना चले आओ। कितने ही सालों के बाद दीक्षित अपने मां-बाप के पास गये। बेटे को देखकर मां-बाप के आनंद की सीमा न रही। एक दिन तात्यासाहब ने अपने पास बुलाकर उन्हें एक फोटो देते हुए पूछा, “अनंत, इस लड़की को देखना। पसंद है तुम्हें? तुम्हारी मां की इच्छा है कि तुम इस लड़की से ब्याह कर लो। अपनी मां की इच्छा के लिए ही कम-से-कम तुम्हें अपने ब्याह की बात अब सोचनी चाहिए।”

दीक्षित के इंग्लैंड जाने से पहले उनकी मां ने बहू देखने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, लेकिन दीक्षित ने उनकी बात नहीं मानी थी। इंग्लैंड में अपनी शिक्षा समाप्त करके वह हिंदुस्तान लौटकर आये तो उनके माता-पिता ने सोचा कि अब लड़का उनकी इच्छा पूरी कर देगा, लेकिन उस समय भी उसने अस्वीकार कर दिया। उनका इकलौता बेटा उन्हें बहू का मुंह देखने का मौका न दे, इसका उन्हें बहुत दुःख था। दीक्षित बापूसाहब की खदान पर नौकर हो गये। उसके बाद पांच साल बीत गये, फिर भी दीक्षित विवाह करने के लिए तैयार न हुए। आज फिर वही बात सामने आगई।

सच पूछा जाय तो दीक्षित जैसे सुंदर युवक के लिए वह लड़की उपयुक्त थी। फोटो में उसका सौंदर्य और उसकी सज्जनता प्रकट हो रही थी। इसके अलावा वह ग्रेजुएट भी थी। लेकिन दीक्षित ने तात्यासाहब के सामने अपना वही पुराना ध्रुपद फिर एक बार अलापा, “पिताजी, कम-से-कम इस साल तो मैं विवाह नहीं करना चाहता।”

तात्यासाहब को बड़ी निराशा हुई।

लेकिन दीक्षित जानते थे कि अपने विवाह के बारे में वह इस तरह के उत्तर क्यों दे रहे हैं, विवाह करने से इंकार क्यों कर रहे हैं। पच्चीस वर्ष की भरी-पूरी उम्र में उन्हें प्रेम में तीव्र निराशा होगई थी। इस कारण उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने में अपने मन को इतना लगाया कि उस ओर उनका ध्यान ही न गया। विवाह के लिए उन्हें कभी बेचनी महसूस नहीं हुई और न उन्हें कभी यह इच्छा ही हुई कि गृहस्थी बनाकर उसके सुख में खो जायं। इंग्लैंड में रहते समय एक-दो अंग्रेज युवतियों से उनका परिचय हो गया था, लेकिन मित्रता से अधिक उसका और कोई महत्व न था।

हिंदुस्तान लौटने पर खदान के कामों में उनका समय इतना व्यस्त

रहा कि विवाह के बारे में सोचने की फुरसत ही न थी। भूले-भटके यदि कभी विचार आया भी तो उन्होंने सोचा कि खदान के इस जंगली और अनाड़ी घातावरण में कौन-सी सुशिक्षित स्त्री उनके साथ रहने को तैयार होगी ! किससे यहां की मुसीबतें बरदाश्त होंगी ? फिर गृहस्थी में दोनों का एकरस होना कठिन हो जायगा। आगे चलकर बकुल से उनका परिचय हुआ। उसकी कहानी हम पीछे पढ़ चुके हैं।

दीक्षित खदान से थकेमांसे शाम को बंगले पर लौटते तो रात के एकांत में उनका मन बकुल पर केंद्रित हो जाता। यही कारण था कि उन्होंने पिता के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

पिता इस विषय में सिवा चुप्पी साधने के और कर ही क्या सकते थे ? उसी अवधि में दीक्षित को नागपुर से एक पत्र मिला, “आप जहां हों और जिस अवस्था में हों, तुरंत नागपुर आजाइये। मेरे पुत्र के नामकरण-संस्कार के अवसर पर आपको यहां उपस्थित रहना ही चाहिए। क्या मुझे यह कहने की जरूरत है कि यदि किसी कारण से आपने यहां आना टाल दिया, तो मुझे कितनी निराशा होगी ? इतने दिनों तक आपने मेरे दुःख में साथ दिया, उसमें मेरे हिस्सेदार रहे। अब मेरे सुख में भी आप मेरा साथ दें, उसमें भी मेरे हिस्सेदार बनें। इसलिए कहती हूं कि जहां आप हों और जैसे भी हों, तुरंत यहां आजाइये।

—सौ० बकुल देशमुख”

बकुल का पत्र अप्रत्याशित रूप से पाकर दीक्षित के आनंद की सीमा न रही। दुर्भाग्य से निरंतर मोर्चा लेनेवाली बकुल पर आखिर ईश्वर को दया आई और उसने उसकी गोद में एक शिशु दे दिया। सूचना मिलते ही दीक्षित तुरंत नागपुर आगये और इस समय बकुल से भेंट के लिए कोठी के बैठकखाने में कुरसी पर बैठे हुए थे। कितने दिनों बाद, आज उन दोनों की भेंट होगी। बापूसाहब सुबह से ही कहीं बाहर चले गये थे। बकुल से मिलने आनेवाली स्त्रियों का तांता लगा हुआ था। उसे देखकर दीक्षित यह अनुमान नहीं कर सकते थे कि उसकी भेंट कैसे होगी और उससे बातें करने के लिए उन्हें कितना समय मिलेगा। काफी देर से वह बैठकखाने में बैठे हुए थे। उन्हें पता नहीं था कि अभी और कितनी देर तक उन्हें प्रतीक्षा

करनी होगी। इसी समय एक नौकर भीतर आया और उनसे बोला, “बाई-साहब आपको भीतर बुला रही हैं।”

दीक्षित बकुल के कमरे में गये। वह सामने ही खड़ी थी। दीक्षित ने उसे नमस्कार किया। बकुल ने भी प्रत्युत्तर में नमस्कार किया। उसके मुखमंडल पर जो मंद मुस्कराहट चमक उठी, वह अत्यंत सुंदर और उसके रूप को कई गुना करनेवाली थी। उसने पूछा, “आप कब आये, दीक्षितसाहब?” बकुल ने जिस समय यह प्रश्न पूछा, उस समय उसके चेहरे पर नित्य दिखाई देनेवाली गंभीरता का पूर्ण रूप से अभाव था। उसके स्थान पर जीवन के प्रति आकर्षण के भाव आ गये थे। उसकी आंखों से प्रसन्नता टपक रही थी। वह कुछ मोटी भी हो गई थी, लेकिन वह मुटापा अच्छा लगता था। उसके कारण उसके लंबे चेहरे को एक विशेष दीप्ति प्राप्त हो गई थी और उसके साथ ही प्यार के भाव झलक रहे थे। बकुल के स्वास्थ्य और जीवन में यह परिवर्तन देखकर दीक्षित को हार्दिक आनंद हुआ, इतना कि उन्हें उसके प्रश्न का उत्तर देने का भी होश न रहा। बकुल ने पुनः पूछा, “आप कब आये? मैं सोच रही थी जाने आप आयेंगे या नहीं।”

“वाह! वाह! यह कैसे हो सकता था कि न आता? ऐसे आनंद के अवसर पर उपस्थित रहने में मुझे कितनी खुशी हो रही है! बापूसाहब ने भी अपने पत्र में आने का आग्रह किया था। कहिये, अब आपका स्वास्थ्य कैसा है?”

बकुल को अचानक वह घड़ी याद आ गई जब दीक्षित की सहायता ने उसके प्राण बचा लिये थे। उसने उनकी ओर ऐसे देखा, मानों वह कह रही हो, “मैं आपके उपकारों को जिंदगी भर नहीं भूलूंगी।” पर अपने आंतरिक भावों को छिपाकर वह हँसती हुई बोली, “मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है अब। मैं बड़े आनंद में हूँ। मुझे जीवन के सुख का यह दिन सचमुच आपके कारण प्राप्त हुआ है। किस तरह, किन शब्दों में, मैं आपका आभार मानूँ, दीक्षितसाहब!” दीक्षित ने देखा कि बकुल का कंठ रुंध गया है। वे बोले, “आप यह सब क्या कह रही हैं? मैंने आपके लिए कुछ भी तो नहीं किया।”

“आप यह कैसे कह रहे हैं कि आपने कुछ नहीं किया?” बकुल ने

क्षण-भर के लिए दीक्षित की ओर देखते हुए पूछा। अत्यन्त कृतज्ञता से दबकर उसकी आंखें दीक्षित के प्रति आदर-भाव व्यक्त कर रही थीं। वह बोली, “दीक्षितसाहब, आपको उसमें कुछ खास बात चाहे दिखाई न देती हो, लेकिन उस समय आपका जो सहारा मुझे मिला, वह अनमोल था।”

“अजी, कहां के सहारे की बात लिये बैठी हैं आप? मैं थोड़ी-सी आपकी सहायता कर सका, उसका मुझे स्वयं बहुत आनंद हो रहा है। लेकिन सुनिये, आज के शुभ अवसर पर मैं आपके लिए पत्रपुष्प के रूप में एक अल्प भेंट लाया हूं, यह लीजिये।”

इतना कहकर दीक्षित ने हाथ के कागज के पुलंदे को खोला। उसमें काश्मीरी पशमीने का एक सुंदर और बहुमूल्य शाल था। उसपर बड़ा सुंदर कसीदा कढ़ा हुआ था। बकुल के आगे शाल को बढ़ाते हुए दीक्षित ने कहा, “गरीब की यह तुच्छ भेंट है। आपको पसंद होगी?”

“पसंद क्यों नहीं होगी?” कहकर बकुल ने उनके हाथ से वह शाल ले लिया और उसपर धीरे-से हाथ फेरते हुए बोली, “दूसरे लोग मुझे लाखों की भेंट देंगे। लेकिन मेरी निगाह में आपकी यह भेंट उन सबसे अधिक मूल्यवान है।”

बकुल ने अपनी नजर दीक्षित की नजर से मिलाकर क्षणभर उनकी ओर स्थिरता से देखा। निगाह मानों अपनी बात आप कह रही हो। दीक्षित के हृदय पर बकुल के शब्दों की प्रतिध्वनि अंकित हो गई। उन्होंने उसकी ओर एकटक देखा। दोनों ने एक-दूसरे के मन के, एक-दूसरे के प्रति प्रगाढ़ स्नेह के, भाव जान लिये। उसी समय बकुल ने दीक्षित से कहा, “दीक्षितसाहब, आपके शुद्ध और पवित्र स्नेह की आज तक मुझे जो उष्णता मिलती रही है, उसीका प्रतीक यह शाल है। मनुष्य को जीवन में स्नेह और ममता की उष्णता की बड़ी आवश्यकता होती है। मैं इस शाल को बहुत सावधानी से सुरक्षित रखूंगी।”

भावना के आवेग से बकुल का चेहरा आरक्त हो गया था। जिस हाथ में वह शाल पकड़े हुए थी, वह कांप रहा था।

दीक्षित की हृदयतंत्री भी भावनाओं से भंकृत हो गई थी। दोनों एक-दूसरे के बहुत ही निकट अपनेको अनुभव कर रहे थे। दीक्षित ने जिस

कोमल भावना से बकुल को शाल भेंट किया था उस स्नेहमयी भेंट को बकुल ने भी कोमल भावना से स्वीकार किया था। इस कारण दीक्षित को अपरिमित आनंद हुआ। आनंदावेश में वे बोले, “आपका भविष्य इसी प्रकार के सुखों से परिपूर्ण रहे, यही मेरी कामना है।”

“देखो भाई अमृतलालजी, ‘जो-जो काम मैंने बतलाये हैं उनका ख्याल रखिये। मैं दो दिन में लौटता हूँ।” दीक्षित ने ओवरसियर अमृतलाल और ठेकेदारों को उनके कामों के बारे में समझाकर हिदायतें दीं और फिर उन्हें लेने जो मोटर आई थी उसमें जाकर बैठ गये। उनकी मोटर के पास उनका खानसामा और उनका नौकर दोनों खड़े थे। उन दोनों नौकरों की दीक्षित के प्रति महान भक्ति थी। मोटर में बैठते ही दीक्षित ने पूछा, “मेहरबान-सिंह, हमारा सब सामान ठीक रख दिया है न? शिकार के सब कपड़े भी रखे हैं न?”

“जी, हुजूर! दो जोड़ी कपड़े रख दिये हैं। बंदूक, कारतूस आदि सब सामान रख दिया है।”

“ठीक है। ड्राइवर, चलो!”

गाड़ी के चलने पर दीक्षित ने अपनी बंदूक में कारतूस भर लिये, क्योंकि वे बालाघाट के जिस वन-प्रदेश से गुजरनेवाले थे, उन भाग में भांति-भांति के जानवरों के मिलने की संभावना थी। बंदूक को ठीक से हाथ में रखकर, उन्होंने जेब से बापूसाहब का पत्र, जो उन्होंने भेजा था, बाहर निकाला और पढ़ने लगे। बापूसाहब ने लिखा था, “हमने शिकार के लिए कान्हा के रक्षित वन के डाक-बंगले में मुकाम किया है। मैं आपके लिए अपनी मोटर भेज रहा हूँ। दो दिन के भीतर आप जरूर आ जाइये।”

इस पत्र की सूचना के अनुसार दीक्षित इस समय डाक-बंगले की ओर रवाना हो रहे थे। उन्होंने पत्र को मोड़कर मोटर से बाहर फेंक दिया। बापूसाहब का पत्र मिलने पर वे इस चक्कर में पड़ गये थे कि शिकार के लिए जाऊं या न जाऊं। उन्होंने पहले तय किया था कि न जाना ही उचित है, क्योंकि बापूसाहब के शिकार को जाने का अर्थ था जंगल में जाकर मौज करना। यह उनका एक नियम ही हो गया था। लेकिन जब ड्राइवर से उन्हें यह मालूम हुआ कि इस समय शिकार की पार्टी में मेजर वॉन, केथरिन,

इसाबेल, मेजर हिडले और बकुलबाई भी हैं, तब दीक्षित को जाने का निश्चय करना पड़ा। मोटर के बीस-पच्चीस मील का अंतर तय करने पर दीक्षित कुछ ऊँघते-से होकर आंखें बंदकर पीछे की गद्दी के सहारे टिक गये। इसी समय ड्राइवर एकदम बोल उठा, “साहब, सामने देखिये, क्या मौके पर वह हिरन खड़ा है। जल्दी गोली चलाइये।”

ठंड के दिन थे। बेचारा हिरन खेत में खड़ा धूप ले रहा था। उसके पास चार-छः हिरनियां भी चर रही थीं। हिरनों का वह दल दीक्षित को इतना आकर्षक लगा कि गोली मारकर उनका शिकार करना उन्हें नहीं भाया। लेकिन जरा-सी देर में जाने कैसे उनके भीतर का शिकारी जाग्रत होगया। उन्होंने बंदूक उठाकर निशाना लगाया। ठां! पर गोली चूक गई और हिरनों की वह टोली उछलती-कूदती वन में गायब हो गई। मोटर आगे बढ़ी। तीस-चालीस मील चल लेने पर कान्हा का रक्षित वन शुरू हो गया। पिछले कई वर्षों से उस जंगल में जानवरों के मारने की मनाही होने के कारण वहां कई तरह के जंगली जानवर बड़ी स्वच्छंदता से घूमा करते थे। उन्हें मनुष्यों से विशेष भय नहीं रहा करता था, क्योंकि उन्हें यह अनुभव नहीं हुआ था कि मनुष्य उपद्रवी यानी गोली चलाकर प्राण लेनेवाला प्राणी है।

कान्हा के जंगल में प्रवेश करने के लिए जिस ऊंची टेकड़ी से होकर सड़क गई थी, उसके दोनों तरफ का प्राकृतिक सौंदर्य मनमोहक था। सागौन के बड़े-बड़े पत्तोंवाले वृक्ष थे। उन्हें देखकर लगता था कि जंगल बहुत घना है। बीच-बीच में नाले बह रहे थे। कहीं ऊंची टेकड़ियां थीं, कहीं सपाट मैदान। इस तरह बड़ा मजेदार था वह जंगल। दीक्षित की मोटर एक टेकड़ी का चढ़ाव चढ़ रही थी कि रास्ते के एक मोड़ पर देखते क्या हैं, आठ-दस फुट ऊंचा एक विशाल जंगली सांड किसी प्रचंड राक्षस की तरह देख रहा है। उसके बड़े-बड़े सींग बहुत ही भयावने लग रहे थे। उसका काला शरीर हाथी की तरह था। मोटर के पास आते ही उसने कान खड़े किये और नाक द्वारा जोर-जोर से सांस लेने लगा। उसे देखकर कोई दूसरा आदमी होता तो घबड़ा जाता और डर के मारे पसीना-पसीना हो जाता, लेकिन दीक्षित का ड्राइवर जानता था कि ऐसे जानवरों को कैसे भगाना चाहिए। उसने गाड़ी रोक दी और मुंह से धीरे-धीरे सीटी बजाने

लगा। उस सीटी की आवाज कान में पड़ते ही सामने खड़े हुए जानवर की अकड़ कुछ कम हुई। उसने दुम हिलाई। दूसरी ओर गर्दन मोड़कर नजर भी मोटर पर से हटा ली और अंत में गाड़ी की ओर जैसे बड़ी तुच्छता से देखता हुआ वह विशालकाय प्राणी जंगल के भीतर चला गया। उसके जाते ही ड्राइवर ने मोटर की रफ्तार बढ़ा दी। मोटर कुछ आगे बढ़ी ही थी कि एक जगह सड़क के किनारे वृक्षों की छाया में आठ-दस जंगली सांड और उनके बच्चे खड़े दिखाई दिये।

दीक्षित ने सुना था कि कान्हा, मुपरवार और बालाघाट के जंगलों में जंगली सांड मिलते हैं। बापूसाहब के द्वारा मारे गये एक जंगली सांड का सिर भी उन्होंने देखा था। लेकिन जीवित जंगली सांडों का दल इस समय वे प्रथम बार ही देख रहे थे। जंगली सांड बाघ या चीता की तरह क्रूर नहीं होता, लेकिन यदि गुस्से में आकर वह अपने प्रतिस्पर्धी पर टूट पड़े तो अपने सींगों की टक्कर से बड़ी-बड़ी मोटरें भी उलट देता है, ऐसा उन्होंने सुना था। इसलिए जब मोटर उन जानवरों की पहुंच के बाहर निकल गई तब कहीं उनकी जान-में-जान आई।

थोड़ा और फासला तय करने के बाद उन्हें एक बड़ा ही सुंदर वन मिला। सड़क के दोनों तरफ बड़े-बड़े चरागाह थे। उनमें जगह-जगह पर सौ-सौ, दो-दो सौ हिरनों और सांभरों के दल चर रहे थे। पश्चिम की ओर झुके हुए सूरज की लाल किरणों में ये जानवर स्वच्छंदतापूर्वक घूम-घूमकर चर रहे थे। इन दलों की रक्षा करनेवाले उनमें के नर गरदन उठाकर टोह ले रहे थे कि कहीं से उनपर कोई संकट तो नहीं आ रहा है। छोटे-छोटे हिरन हरी-हरी घास पर नाच रहे थे। कुछ हिरनियां अपने छोनो को प्रेम से चाट रही थीं। यह सुंदर दृश्य देखकर दीक्षित पूर्ण रूप से मंत्रमुग्ध हो गये। विधाता के ये निर्भय और स्वतंत्र प्राणी, उसकी कोमल वृत्ति के प्रतीक थे। सड़क के नजदीक हिरनों की जो टोली थी, उनमें के कुछ भीरु हिरन भयभीत-से होकर भाग खड़े हुए। कुछ देर के बाद दीक्षित को मोरों के झुंड दिखाई दिये। प्रकृति रूपी जादूगर की शोभा देख-वह बिल्कुल मोहित हो गये। सड़क के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की घनी छाया में से मोटर चली जा रही थी। उस छाया के कारण जंगल में अंजीरी

रंग का प्रकाश हो रहा था। कहीं कोई पक्षी जोर-जोर से चिल्लाकर वन की नीरवता को भंग कर रहा था।

थोड़ी देर के बाद दीक्षित को 'टप-टप' आवाज सुनाई पड़ी। वह सोच ही रहे थे कि देखें, अब किन जानवरों के दल देखने को मिलते हैं कि इसी समय चार-पांच घोड़े और उनपर सवार केथरिन, इसाबेल, बकुल और मेजर हिंडले आदि सामने से आते हुए दिखाई दिये। यह देखकर कि सामने से मोटर आ रही है, उन सब लोगों ने अपने घोड़े सड़क के किनारे कर लिये। मोटर के नजदीक आते ही केथरिन और इसाबेल ने चिल्लाकर कहा, "हलो मिस्टर दीक्षित, गुड ईवनिंग। हम लोग आपकी बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं!"

दीक्षित मोटर से उतर पड़े और सब लोगों से थोड़ी देर तक वहीं खड़े-खड़े बातें करते रहे। दीक्षित ने बकुल को भी घोड़े पर सवार देखा तो उन्हें बड़ा संतोष हुआ, साथ ही उसे आनंदित देखकर उनको प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने बकुल से कुछ प्रश्न पूछे और उसने भी दिल खोलकर उनके उत्तर दिये। उनकी दृष्टि में बकुल एकदम भिन्न और नई दिखाई दी, क्योंकि इससे पहले उन्होंने बकुल को जब-जब देखा था उसकी बड़ी ही करुण मूर्ति दिखाई दी थी, लेकिन आज उसमें बहुत ही परिवर्तन दिखाई दे रहा था। वह शिकारी की पोशाक में थी। घोड़े की सवारी में परिश्रम पड़ने से उसका गोरा मुख-मंडल आरक्त हो गया था। केथरिन और इसाबेल पसीने से सराबोर हो गई थीं। केथरिन ने अपने सुनहले बाल काट डाले थे। इसाबेल ने अपने ओठों पर आवश्यकता से अधिक रंग पोत लिया था। इस कारण उन तीनों में बकुल ही सबसे अधिक सुंदर दीख रही थी।

बकुल के जीवन में इस नये आनंद का प्रवेश देखकर दीक्षित का हृदय भर आया। कुछ देर बाद केथरिन और बकुल आदि ने अपने-अपने घोड़ों को आगे बढ़ाते हुए दीक्षित से विदा ली। उनकी जाती हुई आकृतियों के प्रति दीक्षित बड़ी उमंग-भरी दृष्टि से देखते रहे। बकुल की वह प्रसन्न, मधुर और उत्साहपूर्ण मूर्ति उनकी आंखों के सामने अचल रूप से खड़ी थी। किसी नये लोक में विचरण करते हुए दीक्षित को लेकर मोटर करीब दो फर्लांग का फासला और तय कर डाक-बंगले के सामने आकर खड़ी हो गई। बंगले के सामनेवाली हरियाली पर कुसियां रखी थीं और वहां बालाघाट

माइंस के मैनेजर हस्तमजी और हार्वीसाहब बैठे हुए थे। वे घोड़े पर जंगल का एक चक्कर लगाकर हाल ही में लौटे थे। उन्होंने अपनी खाकी पोशाक अभी तक नहीं उतारी थी। खानसामा मेज़ पर कांच के गिलास कायदे से रख रहा था। इस तैयारी को देखकर दीक्षित ताड़ गये कि हो-न-हो, अब साहब की बैठक जमेगी। इसी समय सुप्रीम मॅगनीज़ कंपनी के मैनेजर मिस्टर फोनटेन और उनकी लड़की रोज़ डाक-बंगले से बाहर आये। उन दोनों को वहाँ देखकर दीक्षित को अच्छा नहीं लगा। अन्य सब स्त्रियाँ घोड़ों पर बैठकर घूमने गई थीं, परंतु उन सबका साथ छोड़कर अकेली रोज़ बापूसाहब के आसपास मंडरा रही थी। यह देखकर दीक्षित को बड़ी चोट पहुंची।

रोज़ के कृत्रिम और नाटकीय सौंदर्य से दीक्षित को पहले से ही घृणा थी। उसने अपने होंठ जरूरत से ज्यादा रंग लिये थे। भौंहें भी बड़ी बनावटी थीं। हवा में सरदी होते हुए भी वह खुले गले का फ़ॉक पहने हुई थी। लाल टोपी उसके हाथ में थी। ठंड से बचने के लिए सिर पर लगाने के बजाय वह उसे शोभा के लिए अपने हाथ में लिये हुए थी। कुछ समय बाद बापूसाहब बाहर आये। उन्होंने बड़ी तत्परता से रोज़ को अपनी कुर्सी के पास बिठाया।

रात को खाना बड़ी देर में हुआ। शिकार-पार्टी के लिए बापूसाहब किस तरह पैसा खर्च किया करते थे, इसका यह एक उदाहरण था। खुले हाथों से मिलनेवाला पैसा खुले हाथों से खर्च करना चाहिए, यह उनका विचित्र तत्त्वज्ञान था।

खाने के समय बकुल उपस्थित थी। केथरिन और शिरीन के बीच में बैठकर बातें करने में उसने अपने-आपको लीन कर लिया था, मानों उसने निश्चय कर लिया हो कि चाहे कुछ भी हो, मैं रोज़ और बापूसाहब की ओर ध्यान नहीं दूंगी। कभी उसकी दृष्टि बापूसाहब की ओर जाती भी तो वह विषाद से उसे दूसरी ओर मोड़ लेती। दीक्षित को बकुल के इस संयम पर बड़ा अचरज होता था।

शिकार का दूसरा दिन उदित हुआ। कान्हा से पचीस-तीस मील दूर एक जंगल में सब लोग शिकार के लिए जाने को थे। सबेरे जल्दी उठने की आदत होने के कारण आज भी दीक्षित बड़े तड़के उठ बैठे और दूसरे लोगों के तैयार होने से पहले ही तैयार होकर डाक-बंगले के सामने-वाले मैदान में सुहावनी धूप का आनंद लेने के लिए बाहर आ गये। डाक-बंगले के सामने विस्तीर्ण मैदान था। उस मैदान की सतह से डाक-बंगला पंद्रह-बीस फुट की ऊंचाई पर था। उस बंगले के एक ओर एक टेकड़ी थी, जिसके नीचे से एक नाला मैदान के बीच में से बहता हुआ पास के जंगल में जा रहा था। दोपहर को, विशेषकर शाम को, बहुत-से जानवर जब पानी पीने के लिए उस नाले के किनारे आया करते, तब उनके भुंडों को डाक-बंगले में बैठे-बठे देखा जा सकता था। दीक्षित जिस समय धूप ले रहे थे, दो सुंदर मोर अपने डैनों को फैलाकर मैदान में घूमते हुए उन्हें दिखाई दिये। सूर्य के प्रकाश में उनके पंख बड़े सुंदर लग रहे थे और उनकी गहरे नीले और जामुनी रंग की सुडौल गर्दनें खूब चमक रही थीं। दीक्षित उन मोरों को देखने में इतने खो गये कि उन्हें यह तक पता न चला कि बकुल डाकबंगले से बाहर आ गई है। जब उसकी आवाज उनके कानों में पड़ी तो उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। दो साल के नन्हें प्रसन्न की अंगुली पकड़े उसे धीरे-धीरे चलाती हुई वह धूप में आ रही थी। दीक्षित की तरफ उसका ध्यान ही न था। प्रसन्न से प्यार-भरे स्वर में कह रही थी, “जल्दी-जल्दी चलो, मेले लाजा !”

बकुल अपने बदन पर पश्मीने का शाल ओढ़े हुई थी। यह वही शाल था, जिसे दो वर्ष पहले प्रसन्न के नामकरण-समारोह पर दीक्षित ने उसे भेंट किया था। उनका दिया हुआ शाल सुरक्षित और बकुल ने उसे ओढ़ रखा है, यह देखकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। इसी समय बकुल का ध्यान दीक्षित की ओर गया। दीक्षित बकुल की ओर बड़े स्नेहसिक्त भाव से देख रहे थे। क्षण-भर

के लिए बकुल का मन थरथरा उठा, लेकिन एकदम यह दिखाते हुए मानों कुछ हुआ ही न हो वह बोली, “नमस्कार । (फिर प्रसन्न से) बेटा, इन्हें गुड मारनिंग कहो । ”

बालक प्रसन्न न अलग-अलग शब्दों में कहा—“गु-ड-मा-र-नि-ग । ”

प्रसन्न की उस तोतली वाणी पर दीक्षित को हँसी आ गई । वे थोड़े नीचे झुके और उसके सुकुमार गाल को धीरे-से थपथपाते हुए बोले, “गुड मारनिंग ! ” फिर उन्होंने बकुल की ओर मुड़कर कहा, “मुन्नेजी तो बड़ी मीठी बातें करते हैं । ”

“इसीलिए तो मुझे उसके बिना चैन नहीं पड़ता । यही कारण है कि मैं इसे अपने साथ यहां ले आई हूँ । ”

वह प्रसन्न को कितना प्यार करती है, यह उसने अपने दो वाक्यों में स्पष्ट कर दिया । उसके शब्दों से यह भी ध्वनि निकली कि प्रसन्न को छोड़कर उसके सुख का कोई दूसरा सहारा नहीं है ।

प्रसन्न को साथ लिये बकुल जब थोड़ी आगे बढ़ी तो उसे भी मोर विहार करते हुए दिखाई दिये । प्रसन्न को उन्हें दिखाती हुई वह दीक्षित से बोली, “कितनी रमणीक है यह जगह ! है न ? कल शाम को हम लोग घोड़े पर बैठकर जब घूमने गये थे तो रास्ते में हमें कई तरह के जानवर देखने को मिले थे । ”

“आपने जंगली सांड देखे थे ? जब मैं मोटर से इधर आ रहा था तो एक जंगली सांड मोटर के सामने हाथी की तरह आकर खड़ा हो गया । बड़ा भयंकर था वह प्राणी ! मुझे तो ऐसा लगा मानों हमारी मोटर पर ही टूट पड़ेगा ! ”

दीक्षित की यह बात सुनकर बकुल बोली, “क्या इतने पास आकर खड़ा हो गया था वह ? कितना भयावना होगा वह दृश्य ! कल शाम को हमने भी कुछ जंगली सांड देखे थे, लेकिन थे वे हमसे काफी दूर । आज आप लोग जंगली सांडों के शिकार के लिए ही तो जा रहे हैं न ? ”

बकुल के “आप लोग ” कहने पर दीक्षित को आश्चर्य हुआ । वे बोले, “हां उन्हींका शिकार करने जा रहे हैं । लेकिन क्या आप नहीं चलेंगी हमारे साथ ? ”

“नहीं। इधर-उधर घूमने से मैं ऊब जाती हूँ, मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरा मन तो यहीं अधिक लगता है।”

दीक्षित ताड़ गये कि शिकार-पार्टी के साथ जाना बकुल जान-बूझकर टाल रही है। वे बोले, “सच पूछा जाय तो इस शिकार-पार्टी में सम्मिलित होना मुझे भी बड़ा अखरता है। लेकिन यह मालूम होने पर कि इस पार्टी में आप भी आई हैं, मैं यहां आ गया। सुपरवार यहां से अधिक दूर नहीं है। आपको वहां कोई तकलीफ न होगी। आप अगर चलें तो हम सबको बड़ी खुशी होगी।”

“हां, सब लोगों को खुशी होगी, लेकिन मेरी जाने की इच्छा नहीं है। मैं अपने प्रसन्न के साथ ही अपना समय अधिक आनंद में बिता सकती हूँ। पर आप ज़रूर जाइये। थोड़ी देर में जब यह ठंड कुछ कम हो जायगी तो मैं प्रसन्न के साथ इस जंगल में घूमने जाऊंगी।”

शिकार-पार्टी के साथ न जाने का बकुल ने दृढ़ निश्चय कर लिया था। इसका कारण भी दीक्षित को मालूम था। इसलिए उन्होंने इस संबंध में विशेष बातें न कीं। उन्होंने केवल क्षण-भर के लिए एक अर्थपूर्ण दृष्टि बकुल पर डाली। लेकिन बकुल उनकी ओर देखना बचा गई। कुछ क्षण योंही निकल गये। प्रसन्न कंकड़ इकट्ठे कर रहा था और बकुल उसकी इस हरकत को खुश होकर देख रही थी। गुलाबी शाल में बकुल का रूप निखर उठा था। वह गजब की सुंदर लग रही थी। शाल को स्वीकार करते समय उसने जो भावनाएं व्यक्त की थीं, क्या वे अब भी उसी तरह बनी होंगी? शायद प्रसन्न के जन्म के कारण और उसका साथ मिल जाने से अब दीक्षित के स्नेह की उसे उतनी आवश्यकता न मालूम होती हो! दीक्षित के मन में ये विचार उठ रहे थे कि तभी बकुल बोली, “आप जानते हैं कि शिकार-पार्टी का यह आयोजन क्यों हुआ?”

“नहीं तो। क्यों, क्या कोई खास बात है?”

“जीहां, रोज और उसके पिता आगामी सप्ताह इंग्लैंड जा रहे हैं। इसलिए रोज की विदाई के सम्मान में यह पार्टी की जा रही है।”

“रोज और उसके पिता जा रहे हैं? सच?” दीक्षित ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा।

बकुल बोली, “रोज़ के लिए कितनी बड़ी पार्टि दी जा रही है, यह आप ने देख लिया न ! और उसे कितना सिर आंखों पर रखा जा रहा है— उसका कितना लाड़-प्यार हो रहा है, यह भी आप देख रहे हैं ! लेकिन मैं जान-बूझकर उस ओर कोई ध्यान नहीं दे रही हूँ, इसलिए कि आठ दिन के बाद रोज़ हिंदुस्तान से चली जायगी। उसके जाने से मुझे बहुत संतोष होगा। उसने मेरे जीवन में तूफान उठाकर मेरे जीवन-दीप की ज्योति की जो छटपटाहट बढ़ा दी है, वह छटपटाहट अब कम हो जायगी, हमेशा के लिए जाती रहेगी। उसने ‘उनके’ आसपास प्रीति के जिस पाश को मजबूती से कस डाला था वह अब सदा के लिए टूट जायगा। आठ दिन के बाद का दिन मेरे जीवन के अंधकार को दूर कर देगा और मेरा सुहाग जगमगा उठेगा। तबतक उदित होनेवाला प्रत्येक दिन मेरे लिए चाहे कितना भी कटु हो, फिर भी उस प्रकाशमय दिन की ओर मैं आशा से आंखें लगाये बैठी हूँ।”

क्षण-भर के लिए बकुल रुकी और फिर प्रसन्न की ओर इशारा करते हुए बोली, “इस नन्हे मुन्ने के कारण मेरे जीवन में कितनी स्थिरता आ गई है ! आज यद्यपि मुझे दुःख होता है, फिर भी मैं उसे प्रसन्न-भाव से सहन कर रही हूँ।”

फिर कुछ रुककर एक-एक वाक्य धीरे-धीरे बोलते हुए उसने कहा, “यह सब मैंने आपसे ही प्राप्त किया है। समझे ?”

आज जब दीक्षित को यह पता चला कि रोज़ अपने पिता के साथ इंग्लैंड जा रही है, तो उन्हें सचमुच बड़ा आनंद हुआ। उन्हें विश्वास होने लगा कि भविष्य में बकुल को अब बहुत सुख मिलेगा और रोज़ के कारण बकुल के जीवन-दीप की जो ज्योति कांप गई थी, वह स्थिरता से प्रकाशमान होती रहेगी।

दीक्षित को विश्वास हो गया कि रोज़ के इंग्लैंड चले जाने से बकुल का जीवन सुखमय हो जायगा तो उन्होंने अनेक कल्पना-चित्र अपने मन के भीतर रंग डाले। बापूसाहब का ध्यान अब गृहस्थी की ओर आकृष्ट हो जायगा। अपने प्रसन्न की ओर देखकर उनके हृदय में वात्सल्य जाग उठेगा और बकुल को अपने अधिक निकट लाने के लिए वे आतुर हो जायेंगे। आज तक बकुल की उन्होंने जो उपेक्षा की और उससे जो अलिप्तता रखी, वह भी समाप्त हो जायगी। इस प्रकार की अनेक आशाएं दीक्षित ने संजोयी थीं। यही अवस्था बकुल की भी थी।

लेकिन जब रोज़ चली गई तो उन्होंने देखा कि बापूसाहब पर उसकी बिल्कुल विपरीत प्रतिक्रिया हुई। रोज़ के चले जाने से उनके जीवन में एक भारी रिक्तता आ गई। रोज़ को पहुंचाने बापूसाहब बंबई गये थे। उस समय वहां रेसेज भी हो रही थीं। इसलिए वे दो महीने तक घर ही न लौटे थे। आखिर वे आये। लेकिन उनका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा-दिखाई दिया। मनुष्य को जब उसके शरीर और मन को सुख देनेवाली बातों या व्यक्तियों का चस्का लग जाता है, तो उसमें वह अपना होश खो बैठता है। लेकिन उनके अभाव में वह पागल के-जैसा बर्ताव करने लगता है। उसका स्वभाव निश्चित ही चिड़चिड़ा हो जाता है।

बापूसाहब के इस प्रकार के बर्ताव का सब लोगों को स्पष्ट दर्शन हो गया। रोज़ के सहवास में उनकी विषय-वासनाओं को जो उभार मिलता था, उसके चले जाने से वह अब अतृप्त रहने लगा। उन्हें पता था कि उनकी इन विषय-वासनाओं का शमन बकुल के सहवास से असंभव है, क्योंकि बकुल उनकी अपेक्षा से बिल्कुल भिन्न थी। वह उच्च आचार-विचारों की है, रोज़ की तरह हल्की किस्म की नहीं, यह वे जानते थे। इसीलिए वे और बकुल कभी भी एक-दूसरे के निकट न आ सके। आगे चलकर तो उन दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति अधिकाधिक अलगाव होता गया। इस कारण बकुल

के प्रति उनके मन में स्नेह-भाव का लेश भी नहीं रह गया था। इसके विपरीत उसके प्रति द्वेष और विषाद के भाव दिनों-दिन बढ़ने लगे।

किसी-किसी मनुष्य का स्वभाव अत्यंत हठीला होता है। वह सबपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। उसके अहंभाव की सीमा नहीं रहती। ऐसी दशा में उसके जीवन में यदि किसी बात की लिप्सा पैदा हो जाती है तो उसके कारण वह बहुत ही जाग्रत हो उठता है और उसका हठीला और दूसरों पर अपना प्रभुत्व जमाने की इच्छा रखनेवाला मन आक्रामक होकर यह जांच-पड़ताल करने लगता है कि उसकी लिप्सा के कारण लोग कहीं उसीपर अपना प्रभुत्व जमाना न शुरू कर दें, उसकी ओर तुच्छता की भावना से न देखने लगे और उसकी लिप्सा से लाभ उठाकर कहीं उसे हलके दरजे का आदमी न समझने लगे। इस जांच-पड़ताल का नतीजा अंत में यह होता है कि वह मनुष्य बेधड़क यह मान बैठता है कि उसके मनमें किसी चीज की लिप्सा नहीं है। फिर वह अपनी उस कमजोरी को अपने बड़प्पन की ही चीज समझने लगता है, उसी दृष्टि से उसे देखने लगता है। लोग उसकी ओर तुच्छता से देखें, इससे पहले वही लोगों की ओर तुच्छता से देखना शुरू कर देता है।

बापूसाहब के मन की स्थिति ठीक इसी प्रकार की हो गई थी। विषय-वासना और लंपटता की उनकी हविसें इतनी बढ़ गई थीं कि वे हतबल से हो गये थे। शरीर और मन की हविस पूरी करने के शौक के आगे उनकी सारी तानाशाही शिथिल पड़ जाया करती थी। वे अपनी इस दुर्बलता को अच्छी तरह अनुभव करते थे। लेकिन उनकी इस कमजोरी से कोई फायदा न उठावे, उसके लिए उन्हें कोई तुच्छ न माने, और-तो-और, वह दोष किसी-के ध्यान में भी न आवे, यही उनका हठ रहा करता था। इस हठ के लिए बापूसाहब अपने दोष को ढंकने की भावना से बकुल से तने रहते और उससे बड़ी लापरवाही से पेश आया करते। वह उन्हें हीन समझे, इससे पहले वही उसके साथ तुच्छता का बर्ताव करने लगे थे। आगे चलकर वे यह प्रदर्शित करने लगे कि विषय-लोलुपता और लंपटता उनके दुर्गुण थे ही नहीं और अपने मन की मौज और मनोरंजन के लिए वे किसीको भी किसी भी तरह नचा सकते हैं। वे लोगों से बड़े अभिमान से कहते कि देखा, रोज

जैसी अंग्रेज युवती उनपर किस प्रकार आसक्त हो गई। ऊपर-ऊपर यह नाटक वह भले ही करते हों, लेकिन सचाई यह थी कि रोज़ के विछोह के कारण वे होश खो बैठे थे और बुरी तरह बेचैन हो गये थे। मन की भूख उन्हें चैन नहीं लेने देती थी। नतीजा यह हुआ कि वे अधिक चढ़ाने लगे। बकुल को इसका पता न चले, इसलिए वे हमेशा उसे ढालने का प्रयत्न करते। वे अपने आसपास मित्रों का जमघट बनाये रखते। खदान पर दावतों और महफिलों का नित्य आयोजन हुआ करता और उनका बहुत-सा समय वहीं बीता करता।

बापूसाहब का बार-बार खदान पर आना दीक्षित को बड़ा कष्टप्रद मालूम होता था। वे जब खदान पर होते, तो दीक्षित का सारा समय उनके साथ रहने में ही गुज़रा करता था। इसके अतिरिक्त खदान के काम में भी बाधाएं पैदा हो जाती थीं। खदान पर रहनेवाले मज़दूरों के भोंपड़े बिल्कुल टूट-फूट गये थे। उनकी आबादी के आसपास हमेशा दलदल बना रहता था। गंदे पानी के बहाव के लिए वहां नालियां या नाबदान न थे। इसी कारण मलेरिया और अन्य संक्रामक बीमारियां बार-बार फैल जाया करती थीं। दीक्षित को लगा करता कि जिन अनाड़ी और गरीब लोगों की जान पर बापूसाहब के ऐश्वर्य की बंसी बज रही थी, उन लोगों का उन्हें अधिक सहृदयता से विचार करना चाहिए, उनके सुख और सुभीतों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

बापूसाहब की खदान के पास ही एक अंग्रेज कंपनी की खदान थी। उस खदान का कारोबार बहुत बड़ा था। वहां चार-पांच हजार मज़दूर काम करते थे। उन मज़दूरों के सुख और सुभीतों का बड़ा अच्छा प्रबंध था। अंग्रेज मालिक होते हुए भी उसने अपने मज़दूरों के लिए सब प्रकार की सुविधाएं कर रखी थीं। मज़दूरों को रहने के लिए छोटे-छोटे पक्के मकान बनवा दिये थे। बीमारों के इलाज के लिए कंपनी का छोटा-सा अस्पताल था।

दीक्षित को लगता था कि अपनी खदान के मज़दूरों की सुख-सुविधा के लिए बापूसाहब भी इसी तरह का कुछ करें। कई बार उन्होंने उनसे इस विषय में बातचीत भी की, लेकिन बापूसाहब ने उनके सुझावों पर कभी

ध्यान न दिया। मजदूरों की भलाई के लिए लाख-दो लाख खर्च कर देना उन्हें भारी मालूम होता था। अपने ही सुख का चिंतन करने और अपने ही भोगविलास पर हजारों रुपये पानी की तरह बहानेवाले बापूसाहब के मन में गरीबों के सुख का विचार करने की उदारता आती तो कहां से आती ?

भोगविलास में खोये रहना ही बापूसाहब के जीवन का ध्येय बन गया था। इस कारण उनका व्यवहार इतना अनियंत्रित हो रहा था कि मजदूरों की अपने मालिक के प्रति भक्ति दिनों-दिन घटती जा रही थी। इससे मजदूर और मालिक के बीच मध्यस्थ के रूप में रहनेवाले दीक्षित की स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। वे हमेशा इस कोशिश में रहा करते थे कि मजदूरों में असंतोष न बढ़ने पावे और मालिक के प्रति उनके मन में दुर्भाव पैदा न हो। लेकिन रोज के इंग्लैंड चले जाने से बापूसाहब का दिमाग ही बदल गया था। दीक्षित और बकुल उनकी ओर बड़ी आशा से देखते थे। बकुल के जीवन में सुख को स्थिरता प्राप्त हो, इसलिए दीक्षित बापूसाहब के क्रोधी स्वभाव को सहनकर उनसे बहुत ही चतुरता से बर्ताव करते थे। लेकिन बापूसाहब के व्यवहार का स्तर क्षण-क्षण नीचे गिर रहा था। वे अत्यन्त नीतिभ्रष्ट हो गये थे, जिससे उनकी बड़ी अधोगति होने लगी थी। पन्द्रह दिन पहले की ही एक घटना है। कितनी लज्जास्पद बात थी वह ! बापूसाहब पन्द्रह-बीस दिन से खदान पर रह रहे थे। उन्हें बकुल से दूर-दूर क्यों रहना चाहिए, दीक्षित के लिए यह एक पहेली थी। लेकिन उस दिन की घटना के बाद दीक्षित को उनके मनोभावों का पूर्ण रूप से परिचय होगया।

नाथूराम नामक ओवरसियर बापूसाहब का पिट्टू बन गया था। एक रोज दीक्षित अपने कमरे में मसहरीदार पलंग पर आराम से सो रहे थे। सुबह पांच बजे का समय था। उनकी एकदम नींद खुल गई। उन्हें लगा, जैसे उन्हें कोई पुकार रहा है। पलंग के नीचे सोया हुआ स्नोई उठकर खड़ा होगया और कान खड़ेकर दरवाजे की ओर देखने लगा।

“मैनेजर साहब ! मैनेजर साहब !” दीक्षित को आवाजें सुनाई दीं। वे उठे और दरवाजा खोलकर बाहर आये। दरवाजे के सामने पांच-सात लोग खड़े थे। उनमें बंसी नाम का एक आदमी था। वह दीक्षित के

सामने आकर आवेग में कहने लगा, “हुजूर, यह नाथूराम का ही काम है ! उस शैतान की मैं जान न ले लूं तो मेरा नाम बंसी नहीं । लोगों की औरतें भगाता है बदमाश ! उसका कभी भला न होगा । उसका खून कर डालूंगा, तब देखना आप !”

कुछ क्षण तक दीक्षित समझ ही न पाये कि आखिर यह मामला क्या है ।

बंसी की औरत सुखिया सुंदर और जवान थी । चार-छः महीने पहले ही वह उसे ब्याह कर अपने साथ ले आया था । उस मजदूर-बस्ती में वह साज-शृंगार करके बड़ी मस्ती से रहा करती थी । बापूसाहब की उसपर नज़र पड़ गई । उन्हें खुश करने के लिए नाथूराम ने चाल चलकर उसे उनके पास भेज दिया । उस दिन बापूसाहब खदान पर न रहकर पास ही खिनसी के डाकबंगले पर सुखिया को साथ लेकर चले गये । नाथूराम का भी खदान पर कोई पता न था ।

दीक्षित के सामने जो लोग खड़े थे, वे सब नाथूराम को मनमानी गालियां दे रहे थे, पर मालिक के खिलाफ एक शब्द भी कहने की उन्हें हिम्मत नहीं हो रही थी । लेकिन लगता ऐसा था कि वे लोग जान गये हैं कि नाथूराम ने सुखिया को बापूसाहब के लिए भगाया है । यह सारा हाल जानकर दीक्षित सिहर उठे । मजदूर लोग गरीब थे । पेट भरने के लिए बेचारे खदान पर आकर बसे थे, लेकिन इसका मतलब यह न था कि उनकी विवशता से लाभ उठाकर उनकी स्त्रियों के शील को भंग किया जाय । बापूसाहब के घिनौने कृत्य पर दीक्षित को क्रोध ही नहीं आया, बल्कि बड़ी शर्म भी मालूम हुई । मालिक के आचार-विचारों की एक मर्यादा हुआ करती है । उसका एक स्तर होता है । उससे समान्यतया एक आशा होती है कि उसे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, लेकिन बापूसाहब का वह बर्ताव तो बहुत ही निम्नकोटि का था ।

बापूसाहब के स्वभाव से दीक्षित भली-भांति परिचित थे, फिर भी इस काण्ड से उनका मन बहुत दुखी हो उठा । बकुल जैसी बुद्धिमती और सुसंस्कृत पत्नी के होते हुए वह गंवार और जंगली स्त्रियों के पीछे पड़ें और अपनी भोग-वासना की तृप्ति के लिए इतने निम्न-स्तर पर उतर आयें यह

उनके लिए अकल्पनीय चीज थी। इस कृत्य की बापूसाहब से कैफियत तलब की जाय और इसके लिए उन्हें दंड दिया जाय, ऐसे विचार उनके मन में उठ खड़े हुए, लेकिन उन्होंने अपने को रोका। यह सोचकर कि मुझे ऐसा कोई काम न करना चाहिए जिससे मेरे मालिक के प्रति मजदूरों के मन में चिढ़ पैदा हो, उन्होंने बंसी तथा अन्य लोगों को आश्वासन देकर शांत कर दिया। मजदूर-बस्ती में एक-दूसरे की स्त्री, मां या बहन से भद्दा मजाक करने के कारण कभी-कभी भगड़े हो जाया करते थे। कोई-कोई अपनी औरत को छोड़ देता था। कोई उस परित्यक्ता से विवाह कर लेता था और इस प्रकार भगड़े हो जाते थे। मारपीट भी हो जाती थी। दीक्षित को ऐसे भगड़ों और लड़ाइयों को प्रायः निबटाना पड़ता था। लेकिन खदान के मजदूर की औरत को खदान का मालिक ही भगा ले जाय, यह घटना प्रथम बार ही घट रही थी।

दीक्षित ने यह सुन रक्खा था कि बापूसाहब के पिता आबासाहब ने भी अपनी जवानी के जोश में ऐसे काम एक-दो बार किये थे, लेकिन बापूसाहब तो अपने पिता से कहीं अधिक सुशिक्षित थे। वे ऐसी नीचता का व्यवहार करेंगे, इसका दीक्षित को रह-रहकर आश्चर्य होता था। लेकिन शायद, अति विषय-वासना की भूख उनके रक्त में पीढ़ियों से ही विधी थी।

यदि यह बात बकुल के कान में गई तो उसे कितना धक्का लगेगा और वह अपने मन में कितनी दुखी होगी, यह सोचकर दीक्षित का हृदय कांप उठा। उसकी गृहस्थी के सुख-सपने तो पहले ही टूट चुके थे।

दीक्षित बार-बार अपने से कह रहे थे, “कुछ भी हो, बकुल को इस मामले का ज़रा भी पता न चले, इसके लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए।”

जो हो, बापूसाहब अपनी उछलखलता की पराकाष्ठा पर पहुंच गये थे।

घड़ी में शाम के पांच बजते ही खदान के चौकीदार ने पांच के घंटे बजाये। पांच बजे खदान के मजदूरों की छुट्टी हो जाया करती थी। जिन मजदूरों का काम खत्म हो गया था, वे अपने-अपने फावड़े, कुदालियां आदि लिये इनक्लाइन से उतरकर नीचे आये। खोदकर निकाली गई मैंगनीज जिन टबों में भरी थी, वे टब इनक्लाइन के नीचे छोड़ दिये गए थे। घर जाने के लिए अधीर मजदूरों की टोलियां मिट्टी से सने हाथ-पांव धोने के लिए नल पर एकदम भीड़ लगा रही थीं। लेकिन आज का वातावरण दूसरे दिनों की अपेक्षा भिन्न था। मजदूरों की टोलियां आज विशेष उतावली करती हुई नहीं दीख रही थीं। नित्य की भांति दौड़-धूप और कोलाहल आज वहां न था। घर की तरफ लौटते समय, थकान मिटाने के लिए, आज कोई मजदूर गीत भी नहीं गा रहा था। इसके विपरीत, उनमें परस्पर कुछ कानाफूसी चल रही थी। सारा वातावरण बड़ा ही क्षुब्ध नजर आ रहा था। कुछ मजदूरों के चेहरों पर भय की झलक दिखाई दे रही थी। वे कुछ चिढ़े हुए-से और संव्रस्त से लग रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानों हर एक ने अपना क्रोध भीतर-ही-भीतर दबा रखा है। वे बड़े धीरे-धीरे बोल रहे थे। ओवर-सियर और ठेकेदारों की पुकारें अथवा उनके द्वारा दिये गए हुक्म हवा में उड़ रहे थे। मजदूरनियों और उनके बच्चों की किचकिच की आवाज भी कभी-कभी सुनाई पड़ जाती थी।

दीक्षित, उनके एक-दो मातहत अफसर, नाथूराम की जगह पर आया हुआ नया ओवरसियर मोतीराम, आदि पांच-छः लोग खदान पर एक तरफ बनी टीन की भोपड़ी में खड़े हुए बातें कर रहे थे। दीक्षित एक खंभे से टिके थे। वे ड्यूटी पर खाकी रंग की ब्रिजिश और कमीज पहनते थे। इस समय भी वे अपनी उसी पोशाक में थे। उन कपड़ों में उनकी इकहरी आकृति बड़ी रौबदार दीख रही थी। आज उन्होंने घुटनों तक के चमड़े के बूट भी पहन रखे थे। इसलिए वे मेजर या कर्नल जैसे किसी ऊंचे फौजी

अफसर की तरह लग रहे थे। पर आज उनका मन नित्य की भांति प्रसन्न न था। उनका चेहरा बड़ा गंभीर और चिंतित दीख रहा था। उनकी आंखों में एक प्रकार की हैरानी-सी झलक रही थी।

आठ दिन पहले जो घटना घटी थी, उसका उनके मन पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ा था। वे बड़ा तीव्र क्षोभ अनुभव कर रहे थे। उस घटना से उन्हें मानवी मन की पाशविक और राक्षसी वृत्ति का नग्न रूप देखने को मिला था। प्राचीन काल में बड़े-बड़े अमीर, सरदार और राजा-महाराजा गरीबों पर किस तरह जुल्म ढाया करते थे, उसके बहुत-से वर्णन दीक्षित ने पढ़े थे। पढ़ी हुई बात अब उन्होंने प्रत्यक्ष देख ली थी।

लेकिन उनकी वेदना और भी बढ़ गई जब उन्हें पता चला कि सुखिया का अभागा पति अचानक इस लोक से चला गया। उसकी मृत्यु का कारण दुर्घटना बताई जाती थी। लेकिन हर आदमी मन-ही-मन यह अच्छी तरह जानता था कि बंसी की मृत्यु का कारण दुर्घटना नहीं है, बल्कि उसका जान-बूझकर खून किया गया है। पर 'खून' शब्द को मुंह से निकालना गुनाह था। बंसी खदान में मैंगनीज खोदने के लिए सुरंग लगानेवाले फायरमैनो में से एक अत्यन्त कुशल फायरमेन था। पिछले दो वर्षों से सुरंग लगाने का काम वह बड़ी सफलता से करता आया था।

परंतु उस दिन शाम को जब सारे मजदूर खदान से अपने-अपने घर चले गये तो करीब छः बजे सुरंग लगाने का काम शुरू हुआ। पंद्रह फायरमैन सौ सुरंग लगानेवाले थे। प्रत्येक फायरमेन ने अपना सुरंग ठीक से लगा दिया था और संकेत की प्रतीक्षा कर रहा था। एक ही साथ बीस सुरंगों के विस्फोट करने थे। उन बीस में से बंसी को दो सुरंगों में बत्तियां लगानी थीं। वह छरहरे बदन का और बड़ा ही चपल होने के कारण तीन-तीन, चार-चार सुरंगों में एक साथ बत्तियां लगा दिया करता था। सुरंगों में बत्तियां लगाने के बाद, छिपने के लिए, पंद्रह-बीस फुट की दूरी पर, हरेक के लिए अलग-अलग सुरक्षित स्थान बना हुआ था। सुरंगों का विस्फोट होने के बाद फायरमेन पुनः सुरक्षित स्थान से बाहर आ जाया करते थे और फिर दूसरी सुरंग लगाया करते थे।

इस तरह एक सुरंग में बत्ती लगाने के बाद जब बंसी दूसरी सुरंग में

बत्ती लगा रहा था, तभी पहली सुरंग का अचानक विस्फोट हो गया। सारे फायरमैन उस विस्फोट की आवाज से चौंक पड़े। सबकी नजरें जहां से विस्फोट की आवाज आई थी, उस तरफ घूम गई। नजदीक सुरक्षा के लिए जो स्थान बने थे, उनमें खड़े ओवरसियर और ठेकेदार एकदम चिल्ला पड़े, “बंसी ! ओ बंसी ! दौड़कर जल्दी भाग आ !” लेकिन उन पुकारनेवालों के शब्द पूरे हों, उससे पहले ही विस्फोट के कारण जो पत्थर उड़े, उनकी मार से बंसी लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा। सबने उसे गिरते देखा, लेकिन उसकी मदद के लिए एकदम दौड़ पड़ना उस परिस्थिति में असंभव और बड़ा ही खतरनाक था। हर एक फायरमैन अपनी-अपनी सुरंगों में बत्तियां लगा चुका था और सब दौड़कर सुरक्षित स्थानों में पहुंच गये थे। बंसी की मदद के लिए यदि कोई दौड़ता तो अन्य विस्फोटों के कारण वह भी अपनी जान से हाथ धो बैठता।

बीस विस्फोटों की प्रचंड आवाज से आकाश एकदम चीत्कार कर उठा। बंसी जिस जगह लड़खड़ाकर गिरा था, उस स्थान पर अब भी पत्थर उड़कर गिर रहे थे। वह भयंकर रूप से घायल हो गया था। विस्फोटों की आवाजें हवा में विलीन होते ही सारे फायरमैनो ने दौड़कर बंसी को घेर लिया। बंसी के सिर में एक बड़े नुकीले पत्थर का जबर्दस्त चोट लगी थी, जिसके कारण उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। यों दुर्घटना ही थी वह, लेकिन निश्चित समय से तीन मिनट पहले सुरंग का विस्फोट कैसे हो गया ? किसने यह गलती कर दी ? इस तरह के अनेक प्रश्न सबके मन में उठ रहे थे। खदान पर बड़ा कोहराम मच गया था। बंसी की मृत्यु का समाचार पाते ही दीक्षित तुरंत दुर्घटना-स्थल पर पहुंचे। बंसी की क्षत-विक्षत देह सिर्फ उन्हींसे नहीं, बल्कि किसीसे भी नहीं देखी जाती थी। बंसी की औरत सुखिया तो छाती पीट-पीटकर रो रही थी।

दुर्घटना के बाद जो तहकीकात और जांच आदि होनी थी, उसका सारा प्रबंध दीक्षित ने कर दिया था। पुलिस आई। उसने जांच की। खदान के मैनेजर के नाते दीक्षित पर इस दुर्घटना की बड़ी गंभीर जिम्मेदारी आ गई थी। सुरंग का विस्फोट करनेवाले मंगजीन में बारूद कितनी भरी थी, किसने भरी थी, विस्फोट की सामग्री क्या-क्या और कितनी-कितनी थी,

सुरंग जलाने की बत्ती काफी लंबी थी या नहीं, इन सब बातों की जांच-पड़ताल शुरू हुई। इस जांच के दौरान में दीक्षित को यह शक हो गया कि इस षड्यंत्र में नाथूराम का हाथ है। कुछ दिन पहले सुखिया-कांड को लेकर नाथूराम और बंसी में जो भगड़ा हो गया था, उसके कारण नाथूराम ने बंसी से बदला लेने के लिए यह षड्यंत्र रचा था। मजदूर साफ-साफ शब्दों में कहने लगे थे कि नाथूराम ने ही बंसी का इस तरह खून किया है। वे यह भी कहते थे कि सुखिया के लिए नाथूराम ने बंसी को अपने रास्ते से हटा दिया। मालिक सुखिया को चाहते हैं। इसलिए नाथूराम को काफी पैसे देकर उन्होंने बंसी का कांटा दूर करा दिया। इस तरह के बीसियों आरोप, शंकाएं और अनुमान लोगों की जबान पर थे।

बारीकी से जांच-पड़ताल करने के बाद दीक्षित को पूरा विश्वास हो गया कि बंसी के खून में बापूसाहब का ही हाथ था। पिछली घटना से बापूसाहब बंसी से बहुत बिगड़े हुए थे, क्योंकि उसने उनकी बदनामी की थी और सुखिया पर बेहद कड़ी निगाह रखी थी। इस कारण उन्होंने अपने भीतर के भड़कते हुए क्रोध और बदले के भाव को अमानुषिक रीति से प्रकट किया। सुखिया की प्राप्ति के लिए उनके मन में जो चाह थी, उसके लिए ही उन्होंने इस नीचतापूर्ण मार्ग का अवलंबन किया था।

दीक्षित सोचते थे कि मैं नौकरी से इस्तीफा दे दूं, मजदूरों की ओर से लड़कर बापूसाहब को अदालत में खींचूं और बंसी के खून की बाकायदा जांच कराके उन्हें सजा दिलाऊं। लेकिन बापूसाहब ने जहां-तहां हजारों रुपये खिलाकर और नाथूराम को फरार होने में मदद करके, अंत में, यह सारा मामला इस आधार पर दबवा दिया कि बंसी की मृत्यु दुर्घटना के कारण हुई।

बेचारे दीक्षित को भी बकुल और देशमुख-घराने की प्रतिष्ठा के लिए बापूसाहब की ही बात का समर्थन करना पड़ा। लेकिन अण्णासाहब से इस विषय में बातें करते समय दीक्षित ने कुछ भी न छुटाकर सारी बात सच-सच कह दी और अंत में कहा, “अब इस नौकरी पर बने रहना मेरे लिए असंभव है। मेरी बुद्धि को एक क्षण के लिए भी यहां रहना नहीं जंचता। कृपाकर मुझे अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने की अनुमति दीजिये और

यहां से मुक्त हो जाने दीजिये ।”

दीक्षित के इन शब्दों से अण्णासाहब को बड़ा धक्का लगा । वे बोले, “अनंतराव, आप जैसे कर्मशील और नीतिमान मनुष्य के लिए ऐसे अत्याचारी और अमानुषिक लोगों के सहवास में दिन काटना असंभव हो, यह ठीक ही है । लेकिन आप मेरी ढलती उम्र का ख्याल कीजिये । गुणवती लड़की के जीवन का किस तरह सत्यानाश हो गया है, यह आपने देखा है, और देख रहे हैं । भगवान ही जानते हैं कि उसके भावी जीवन में कैसे-कैसे कांटे बिछे हुए हैं । आप यदि नौकरी छोड़कर चले जायेंगे तो मुझे और बकुल को किसका सहारा रहेगा ? अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि...”

अण्णासाहब की आंखों में आंसू छलछला आये । उनका कंठ रुंध गया । भर्राई हुई आवाज में वे बोले, “आपके नैतिक प्रभाव के कारण ही खदान पर थोड़ा दबदबा है । यदि आप यहां से चल देंगे तो खदान का दिवाला निकलने और बापूसाहब के घराने की प्रतिष्ठा के धूल में मिल जाने में अधिक समय नहीं लगेगा ! मेरी बकुल और मेरे नाती प्रसन्न का आगे क्या होगा ? अनंतरात्र, इस समय आप हमपर दया करें तो बड़ी कृपा होगी ।”

अण्णासाहब थोड़ी देर रुके । उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और कुछ क्षणों के अनंतर बोले, “देखिये, मैं कितना बूढ़ा और जर्जर हो गया हूं । हमेशा बीमार रहता हूं । किस वक्त मेरे प्राण मेरा शरीर छोड़ देंगे, पता नहीं । लेकिन आप बड़े उत्साह से खदान का काम देखते हैं, इससे मुझे कितनी हिम्मत बंधी रहती है ।”

अण्णासाहब ने बड़ी विवशता व्यक्त की और अंततोगत्वा दीक्षित उनके सामने झुकना ही पड़ा । बंसी की दुर्घटना से खदान काफी बदनाम हो चुकी थी । पर चारा क्या था !

बापूसाहब ने बंसी-कांड में बड़ी निर्भयता दिखाई थी, लेकिन मन-ही-मन वे डर गये थे और सच यह था कि उस मामले को दबाने में उन्हें एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देना पड़ा था । मामले के दब जाने पर भी उनका पापी हृदय भय से कांप रहा था । इसलिए खदान की सारी जिम्मेदारी दीक्षित पर छोड़कर वे बंबई चले गये । इसी बीच प्रसन्न की वर्षगांठ आई । बकुल

उसे बड़ी धूमधाम से मनाना चाहती थी । वह उसीकी तैयारी में लीन हो गई । दीक्षित सोचते थे कि बकुल के सामने कैसे जाऊँ ? यदि उसे बंसी-कांड का पता लग गया होगा तो उसके प्रश्नों का क्या उत्तर दूंगा ? उससे किस तरह भूठ बोलूंगा ? इसलिए वे बकुल से मिलना टाल रहे थे । उनके दिल में आता—मान लो, वह मुझे बुलवा भेजे तो मैं उससे क्या कहूंगा और किस तरह कहूंगा ? इस प्रकार के विचारों से उनका मन खिन्न हो रहा था ।

एक रोज टीन के भोपड़े में एक खंभे का सहारा लिये हुए वे खदान के मातहत अफसरों और ठेकेदारों से काम के बारे में बातें कर रहे थे । पिछले कई दिनों से सुरंग लगाने का काम बंद था । आज दीक्षित स्वयं अपनी निगरानी में सुरंग लगवानेवाले थे । वे अपने मातहतों को इसी विषय की हिदायतें दे रहे थे । काम से छुट्टी पाये मजदूर अपने-अपने घर चल दिये थे । सिर्फ कुछ चुने हुए मजदूर और सुरंग लगानेवाले फायरमैन ही खदान के पास थे । सुरंग लगाने की पूर्व-तैयारी हो चुकी थी । दीक्षित और उनके साथी जिस स्थान पर खड़े थे, वहां भी सुरंग द्वारा उड़कर आनेवाले पत्थर पहुंच जाते थे । इसलिए चौकीदार के खतरे की सीटी बजाते ही ये लोग भी सुरक्षित स्थान में जाकर खड़े हो गये । ओवरसियर ने सुरंगों में बत्तियां लगाने की आज्ञा दी । सुरक्षित स्थान में जाकर खड़े हुए दीक्षित के मस्तिष्क में एक-दम बंसी की याद कौंध गई । उस याद के आते ही उन्होंने सहज ही अपनी नजर दूसरी ओर घुमाई । तभी उन्होंने जो देखा उसपर उन्हें सहज ही विश्वास न हुआ ।

सामने से बकुल चली आ रही थी । दीक्षित जिस बंगले में रहते थे, उसकी बगल में एक पगडंडी थी, जो बहुधा सूनी पड़ी रहा करती थी । इस पगडंडी के एक तरफ होने के कारण, खतरे की सूचना देते समय चौकीदार को भी बकुल आती हुई नहीं दिखाई दी थी । सिर्फ एक या आधी मिनट के भीतर सुरंगों का विस्फोट होनेवाला था और जिस तरफ से बकुल आगे बढ़ी आ रही थी, उसी तरफ सुरंग से खुदे हुए पत्थर उछलकर जानेवाले थे । बकुल दुर्घटना का शिकार होने को थी । जिस तरह बंसी की दुर्घटना हुई थी, कहीं बकुल भी उसका शिकार न हो जाय, यह विचार आते ही दीक्षित जोर से चिल्ला उठे, “मिसेज देशमुख, वहीं रुक जाइये । एक कदम

भी आगे न बढ़िये। आपकी जान का खतरा है। पीछे हटिये। जल्दी पीछे हट जाइये !”

दीक्षित के ये शब्द बकुल के कानों में पड़े, लेकिन उसे यह बोध न हुआ कि खतरा क्या है। बोध होता भी तो उसे अपने प्राणों की परवा कहां रही थी? वह अत्यन्त दुखी मन से खदान पर आई थी। कुछ समय पहले ही वह खदान के बंगले पर पहुंची थी। लेकिन यह पता चलते ही कि दीक्षित बंगले में नहीं है, वह किसीसे कुछ न कहकर उनसे मिलने सीधी खदान पर आ रही थी। वह खदान पर आई थी कितनी विचित्र मनःस्थिति में! पिछले दिन उसे उसके माली से खदान पर हुई दुर्घटना का पता चल गया। लेकिन उसे मालूम केवल इतना ही हुआ था कि किसी मजदूर की दुर्घटना से मृत्यु हो गई। ‘दुर्घटना हुई और एक मजदूर चल बसा’ इस समाचार से उसका हृदय विचलित हो गया था। वह मजदूर कौन था, उसके रिश्तेदार कौन थे, उसकी स्त्री कौन थी और उसके बच्चे कितने थे, उन सबका अब आगे क्या होगा और आगे उनकी परवरिश किस प्रकार होगी, आदि अनेक विचार बकुल के मन में उठ रहे थे। उसे इस बात का भी रह-रहकर मलाल होता था कि इतनी बड़ी दुर्घटना की खबर उसे क्यों नहीं दी गई।

पिछले आठ दिनों में दीक्षित उससे एक बार भी नहीं मिले थे। उसे लगा, यदि उनसे भेंट हो जाती तो इस घटना का उसे पूरा पता चल जाता।

अगले दिन सुबह बकुल इसाबेल के साथ घोड़े पर सैर करने गई। लौटकर अपने बंगले आई और भीतर प्रवेश कर ही रही थी कि उसे एक औरत फाटक के पास चौकीदार से हुज्जत करती हुई दिखाई दी। वह ठिठक गई और ध्यान से सुनने लगी। औरत चौकीदार से कह रही थी, “मुझे भीतर जाने दे, बावा! मुझे मालकिन से मिलना है!”

बात जानने के लिए बकुल ने एक नौकर से उस औरत को बुला लाने के लिए कहा। वह सोच ही रही थी कि वह औरत मुझसे मिलने क्यों आई होगी, तभी फटे-पुराने और गंदे वस्त्रों में लिपटी हुई एक बूढ़ी स्त्री जल्दी-जल्दी उसके पास आई और उसके चरणों में गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी। सिसकियों के बीच उसने कहा कि उसके पुत्र बंसी की

मृत्यु दुर्घटना से नहीं हुई, बल्कि उसका खून कर दिया गया है। जब बकुल को उससे सारी घटना का पता चला, तो उसका हृदय कांप उठा। बूढ़ी के उन शब्दों से उसे इतनी तीव्र वेदना हुई, मानों उसके कानों में कोई उबलता हुआ तेल डाल रहा हो। वह पागल की तरह देखती रही। दूसरे ही क्षण एक अस्पष्ट चीख उसके मुंह से बाहर निकल पड़ी, “यह क्या सुन रही हूँ मैं ? सच-सच ! क्या यह सच है सब ?”

घायल हिरनी की भांति विह्वल बकुल मन को थोड़ा विश्राम देने के लिए अपने कमरे में चली गई। रह-रहकर वह अपने मन से पूछ रही थी, “मैंने जो सुना, क्या वह सब सच है ? यदि वह सच है तो बापूसाहब ने एक औरत के लिए एक मजदूर की बलि ले ली... ! उसका खून कर डाला !”

बकुल को ऐसा लगा, जैसे वह निर्जीव-सी हो गई हो। उसके मुंह से अचानक ये शब्द निकल पड़े—“आबासाहब, आप स्वर्ग से देख रहे हैं न ? देखिये, आपकी बहू की ज़िंदगी किस तरह धूल में मिल रही है। आप तो स्वर्ग में जा बैठे हैं और इस अभागिन को अपना दुर्भाग्य भोगने के लिए यहां छोड़ गये हैं !”

फिर उसे अपने पिता का ध्यान आया। बोली, “अण्णा, अण्णा ! देखिये, लखपति के घर में ब्याही हुई आपकी कन्या के भाग्य का क्या हो रहा है ! अण्णा, आपने बकुल को क्यों जन्म दिया ? इस अभागिन बकुल का, जन्म होते ही, आपने गला क्यों नहीं दबा दिया ?”

बकुल ने बहुत विलाप किया। दुख के आवेग में उसे ऐसा लगा, जैसे वह पागल हो गई हो। वह चाहती थी, मैं खूब रोऊं, खूब चीखूं और चिल्लाऊं। पर यह सोचकर कि अण्णासाहब के पास जाकर इस मामले की सचाई के बारे में पूछताछ करूं, उसने अपनी भावनाओं को दबाकर नागपुर जाने का निश्चय किया।

तभी उसने सोचा कि स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण कहीं उसके जाने से उनकी बीमारी बढ़ न जाय, इसलिए उसने नागपुर जाने का इरादा छोड़ दिया और निश्चय किया कि अण्णासाहब के बदले, दीक्षित से ही सारा हाल पूछ लेना चाहिए। इसीलिए वह इस वक्त खदान पर आई थी। विचारों का आवेग उसके कदमों को जल्दी-जल्दी आगे बढ़ाये जा रहा था।

तभी उसे दीक्षित के शब्द सुनाई दिये। लेकिन बकुल रुकी नहीं, आगे बढ़ती गई। दीक्षित फिर चिल्लाये, “आपकी जान का खतरा है, मिसेज देखमुख। पीछे हटिये। जल्द पीछे हट जाइये।”

यह देखकर कि बकुल बराबर बढ़ती जा रही है, दीक्षित का कलेजा कांप उठा। एक क्षण का भी विलंब न कर वे तुरंत अपने सुरक्षित स्थान से बाहर निकले और बकुल की ओर दौड़े। लेकिन तभी एक के बाद एक भयंकर आवाज के साथ विस्फोट हुए। दूसरे ही क्षण मिट्टी और पत्थर जोर से आकाश में उछल गये।

दीक्षित बकुल से आठ-दस फुट के अन्तर पर रह गये थे। उसी समय एक सुरंग के भयानक विस्फोट के बाद दो-चार पत्थर बकुल की दिशा में उड़े और बकुल के मुंह से एक आर्त चीख बाहर निकल पड़ी। वह लड़खड़ाकर जमीन पर गिरने लगी कि तभी दीक्षित आगे बढ़े और उन्होंने लड़खड़ाकर गिरनेवाली बकुल को सम्हालने के लिए अपनी दोनों बांहें आगे फैला दीं। किसी निर्जीव लता की तरह बकुल दीक्षित की बांहों में गिर पड़ी। उसका मस्तक उनके सीने से टिक गया और उसी समय दीक्षित के मुंह से निकल पड़ा—“बकुल ! बकुल !”

बकुल की बड़े कण्ट से आंखें खुलीं तो क्षण-भर के लिए उसे सब तरफ घना अंधकार-ही-अंधकार फैला हुआ दिखाई दिया। दीक्षित, जो उसके पलंग के नजदीक कुरसी पर बैठे हुए थे, उसकी आंखें खुलती देखते ही आगे झुके और उसके मस्तक पर रखी ठंडे पानी की पट्टी पर उन्होंने धीरे-से अपना हाथ रखा। बकुल ने अपनी अध-खुली आंखें पुनः बंद कर लीं और क्षण-भर के लिए वह पुनः शिथिल-सी हो गई। उसके मुंह से एक कराह निकल पड़ी।

बकुल को पता नहीं चल रहा था कि वह कहाँ पर थी और किस जगह उसके चोट लगी थी। लेकिन तुरंत ही उसे खदान पर हुए विस्फोट की आवाज़ का स्मरण हुआ। उसे यह भी याद आया कि उस समय उसकी कनपटी पर किसी चीज का जोर से आघात हुआ था। वह खदान पर क्यों गई, इसकी भी उसे याद हो आई। उसका हृदय एक बार कांप उठा। कितना भयंकर आवेग था उसके दुख का ! उस आवेग के कारण उसे उस घाव की वेदना भी तुच्छ मालूम हुई। कितनी ही देर तक वह सांस रोके हुए रोती रही। चोट लगने से बेहोश हो जाने पर दीक्षित उसे बंगले में ले आये थे। उन्होंने उसके घाव की मरहम-पट्टी की और अब वे उसके होश में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बकुल के पलंग के नजदीक बैठे हुए वे उसके मस्तक पर ठंडे पानी की पट्टियाँ रख रहे थे।

बकुल की चोट का घाव गहरा नहीं था। थोड़ा खून निकल आया था। उसकी बेहोशी का कारण चोट न थी, बल्कि पांच-छः घंटे पहले उसके मन पर जो भयंकर आघात हुए थे और उनके कारण उसे जो वेदना सहन करनी पड़ी थी, उसीका वह प्रभाव था।

बकुल के होश में आते ही दीक्षित की सारी ममता जाग उठी। कुरसी पर बैठे-बैठे ही आगे झुककर उन्होंने बकुल का एक हाथ अपने एक हाथ में कसकर पकड़ लिया और दूसरा हाथ उसकी गरदन के नीचे डालकर उसे ज़रा ऊपर उठाकर, गद्गद् स्वर में पुकारा—“बकुल ! बकुल !”

असफल जीवन के भयंकर आघात से दग्ध और निराधार बकुल ने जब दीक्षित की प्रेम और स्नेह से पगी वह पुकार सुनी तो उसे बड़ी सांत्वना मिली। उसका आवेग एकदम धीमा पड़ गया। उसने करुण दृष्टि से दीक्षित की ओर देखा। उसकी दृष्टि में बेहद आकर्षण था और स्नेहार्द्र भावना भरी हुई थी।

सहारा की चिलचिलाती मरुभूमि में कोई व्यक्ति एक बूंद पानी की तलाश में मारा-मारा घूमता हो और पानी न मिलने के कारण तृषा से अत्यन्त व्याकुल हो लड़खड़ाकर जमीन पर गिरनेवाला हो और तभी उसे अचानक अपने सामने पानी का सोता दिखाई पड़ जाय तो उस व्यक्ति की उस समय जो हालत होती है, वही इस समय बकुल की थी। प्यासा जिस तरह सोते की ओर आकर्षित हो उठता हो, उसी तरह दीक्षित की दृष्टि से दृष्टि मिलते ही बकुल की प्यास बढ़ गई। उसने दीक्षित की ओर गहरी आत्मीयता से देखा और उसके मुंह से निकल पड़ा—“अनंत। अनंत !”

बकुल के इन शब्दों ने दोनों के बीच का अंतर विलुप्त कर दिया। वे दोनों एक-दूसरे के बिल्कुल पास आ गये।

बकुल से परिचय होने के बाद से दीक्षित को उसके प्रति जो आकर्षण, सहानुभूति और प्रेम अनुभव होता था, उस सबको आज तक उन्होंने संयम में जकड़ रखा था, परंतु अब वे सारे बंधन तोड़कर ऊपर आगये थे। दीक्षित का अर्न्तमन, जो बकुल का बड़ी आत्मीयता से चिंतन करता रहता था, आज उसे सांत्वना देने के लिए अधीर हो उठा था।

क्षण, दो क्षण बीत गये। बकुल का भयभीत और मर्माहत मन दीक्षित के स्नेह की उष्णता से कुछ शांत हो गया। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि दुख से दग्ध मनुष्य को जब अपना आत्मीय अपने पास दीख जाता है तो उसके दुख में और भी उबाल आ जाता है। बकुल के मन की भी इस समय यही स्थिति हो गई। उसका आहत मन गद्गद् हो उठा। वह फिर रोते हुए बोली, “अनंत, तुमने इस अभागिन को क्यों बचाया? यदि मैं मर जाती तो क्या यह अधिक अच्छा न होता? मैं आखिर जिंदा किसलिए रहूँ? नहीं, अनंत, नहीं, मुझे इस भयंकर जिंदगी की चाह नहीं।” इतना कहकर बकुल पुनः सिसक-सिसककर रोने लगी।

दीक्षित ने बकुल का मस्तक पूर्ववत् तकिया पर रख दिया। फिर उसके एक हाथ को उन्होंने अपने हाथ में ले लिया और उसे मजबूती से पकड़े कुछ क्षण के लिए वे स्तब्ध रहे। थोड़ी देर के बाद बकुल के दुख का आवेग भीमा पड़ गया। दीक्षित उसके हाथ को अपने हाथ में लिये कोमलता से सहला रहे थे ! कितना मृदु और सुखद स्पर्श था उनके उस मजबूत किंतु कोमल हाथ का ! दुख का आवेग कुछ कम होने पर बकुल को वह सुखद स्पर्श और भी अधिक तीव्रता से अनुभव हुआ और इस कारण वह धीरे-धीरे उनकी ओर भी अधिक निकट खिंच गई। उसे बोध हुआ कि दीक्षित और उसके बीच आज तक संयम का जो पतला-सा परदा था, वह अब धीरे-धीरे एक तरफ सरक गया है।

“बकुल ! बकुल !” पुकारकर दीक्षित ने जब उसे अपने सीने से लगा लिया था, उस समय उनके हृदय की धड़कन बकुल को उनके हृदय का पूर्ण परिचय दे रही थी। उनकी फीके पीले रंग की आंखों में भलकनेवाली भावनाओं ने उसे उनके अन्तरतम के अगाध प्रेम का पूर्ण रूप से ज्ञान करा दिया था। दीक्षित की उस दृष्टि में, उनके उस स्पर्श में और उनके प्रत्येक शब्द में उसे आत्मीयता छलछलाती दिखाई दी थी। कितनी तीव्रता थी उनमें ! उसकी आत्मा एक मानव की आत्मा थी ! उसके हृदय में एक कोमल मृदु स्त्री का हृदय समाविष्ट था। उस कोमल मन को स्नेह, प्रेम और ममता की प्यास थी।

दोनों जान चुके थे कि उनका एक-दूसरे से उत्कट प्रेम हो गया है, लेकिन साथ ही उन्हें यह दृढ़ आत्म-विश्वास भी था कि वह प्रेम निष्कलंक, निष्पाप, निष्कपट और सात्विक है।

इस आत्मविश्वास के कारण ही वे दोनों दिल खोलकर बातें कर रहे थे। दीक्षित बकुल के हाथ को अपने हाथ में लिये हुए थे, लेकिन बकुल ने किसी भी प्रकार के संकोच से कोई विरोध प्रदर्शित नहीं किया।

दीक्षित उससे कह रहे थे, “बकुल, स्त्री का जीवन तूफान में डगमगाती ज्योति की तरह होता है। जब तूफान उठता है तब लाखों ज्योतियां उसका सामना करने में असमर्थ सिद्ध होती हैं। बहुत-सी बुझ भी जाती हैं। जीवन अंधकारमय हो जाता है। लेकिन बकुल, मानव को जीवन-क्षेत्र में भेजने-

वाला विधाता क्या ज्योतियों को इसलिए भेजता है कि भंभाओं का सामना न कर वे बुझ जायें ? बकुल, आज तुम्हारे मन को दुख हुआ है। तुम्हारे मन पर जो आघात हुआ है, वह भयंकर है। जीवन और गृहस्थी से उबा देनेवाली परिस्थिति बापूसाहब ने निर्मित कर दी है। इसलिए तूफान में अस्थिर ज्योति की भांति तुम्हारी स्थिति हो गई है। लेकिन बकुल, इस आंधी में भी तुम्हें अपनी ज्योति जलती रखनी चाहिए। अपने प्रसन्न को तुम्हें ही प्रकाश दिखाना होगा, अंधेरे में छटपटानेवालों को हिम्मत देनी होगी और जीवन का सदुपयोग कर लेना होगा। बकुल, बापूसाहब जीवन की अंधेरी गली में भटक गये हैं पर कल—शायद कल उनका जीवन तुम्हारी ज्योति के प्रकाश से चमक उठेगा।”

दीक्षित का एक-एक शब्द बकुल के अंतर का स्पर्श कर रहा था। उसकी नजर दीक्षित के धीर-गंभीर, किंतु उसके प्रति अनुभूत दुख से उदास दीखने-वाले चेहरे पर कितनी एकाग्रता से गड़ गई थी ! दीक्षित के माथे पर बिखरे हुए घुंघराले बालों की लटें झांक रही थीं। बकुल ने विह्वल होकर कहा, “अनंत !” उसके मुंह से इस संबोधन के निकलते ही इस बार उसने अपनेको संभाला और संकोच के साथ बोली, “नहीं, दीक्षितसाहब !” लेकिन दीक्षित ने उसे आगे कुछ और न कहने दिया। उन्होंने उसे बीच ही में रोका और उसका हाथ ज़रा दबाकर बोले, “बकुल, इस तरह परायेपन का भाव क्यों दिखा रही दो ? फिर क्या मुझे भी तुम्हें ‘मिसेज देशमुख’ ही नहीं कहना चाहिए ?”

बकुल ने दीक्षित की ओर क्षणभर के लिए देखा, बोली, “अनंत, तुमने कहा—‘तूफान में ज्योति को बुझना नहीं चाहिए।’ लेकिन मुझमें अब वह हिम्मत नहीं रही। खदान पर हाल ही में जो घटना हुई वह मानवी मन के लिए कितनी अशोभनीय है ! अनंत, ये पाशविक अत्याचार और कहां तक होते रहेंगे ? मैं इन्हें कहां तक सहन करती रहूंगी ?”

“बकुल, मैं तुम्हारे मन को अच्छी तरह जानता हूं। लेकिन जीवन में निराश होकर क्या कभी कुछ बना है ? बकुल, अण्णासाहब का और उनकी वृद्धावस्था का तुम्हें ख्याल करना चाहिए। प्रसन्न को भी तो तुम्हें ही संभालना है। जीवन के प्रति ऐसी दृष्टि रखोगी तो कैसे काम चलेगा !”

बकुल और दीक्षित ने थोड़ी काँफी ली। काँफी पीने से बकुल में कुछ ताज़गी आगई। उसे अच्छा लगा। उसका गिरा हुआ मन अण्णासाहब और प्रसन्न के आकर्षण से जीवन की ओर पुनः आशा से देखने लगा। आंधी से अस्थिर उसका जीवन-दीप दीक्षित के स्नेह से पुनः प्रकाशमान होने लगा था। दीक्षित के प्रति किसी प्रकार का भी परायेपन का भाव अब उसके हृदय में नहीं रहा था। बातचीत के सिलसिले में दीक्षित ने उससे कहा, “पहले एक बार हम दोनों कामठी से नागपुर जा रहे थे। याद है तुम्हें? उस समय मैंने कहा था कि मनुष्य को यदि पढ़ने की रुचि हो, तो उसे जीवन में एकाकीपन महसूस नहीं होता। बकुल, जीवन के दुखों को भुला देने में पुस्तकें बड़ी सहायक होती हैं। अपने जीवन की दुखद घटनाओं का विचार करते रहने के बदले यदि हम अपना मन विद्या-संपादन और पठन-पाठन में लगा दें तो जीवन के दुख की तीव्रता बहुत-कुछ कम होने लगती है। मेरे पास बहुत-सी पुस्तकें हैं, संसार के प्रख्यात लेखकों की लोकप्रिय कृतियाँ हैं। उनमें से चार-छः पुस्तकें तुम पढ़ने को ले जाओ।”

इसके बाद दीक्षित बगल के कमरे में गये और उन्होंने अलमारी में से कुछ पुस्तकें चुनकर निकालीं। उनमें मेरी कॉरली का ‘इन्नोसेंट’ भी था। बकुल को यह उपन्यास भेंट करने का उन्होंने पहले ही निश्चय कर लिया था। उन्होंने जब से कलम निकाली और उपन्यास पर कुछ लिखने लगे। पर क्या लिखें? पिछले दो घंटों में उन्हें बकुल का और उसके अंतरंग का जो दर्शन हुआ था, उसकी निष्कलंक और निष्पाप वृत्ति की जो सुगंध उन्होंने ली थी, उसके कारण उनका मन स्तब्ध-सा होगया था। उनके मन में यह विचार आते ही कि बकुल मेरी कॉरली के ‘इन्नोसेंट’ की नायिका की तरह निष्पाप और निष्कलंक है, उन्होंने पुस्तक के पहले पृष्ठ पर लिखा, “निर्दोष बकुल को—अ. दी.।”

अपने लिखे अक्षरों को उन्होंने क्षण-भर देखा और वे कुछ बोझिल-से

स्वर में बोले, “बकुल, निर्दोष बकुल ! क्या मैं तुम्हारा जीवन सुखमय कर सकूंगा ? या ‘इन्नोसेंट’ की नायिका की तरह तुम्हारा कोमल हृदय जीवन के भयंकर आघातों से...लेकिन नहीं-नहीं, ऐसा अमंगल विचार मन में नहीं आना चाहिए। बकुल जीवन से ऊबकर, जीवन-ज्योति को बुझा देने की बातें भले ही करती हो, मैं उसके जीवन को शक्ति दूंगा।” इस तरह सोचते हुए दीक्षित बकुल के कमरे में गये। बकुल उस कमरे में दीवार पर लगे दीक्षित के फोटो की ओर देख रही थी। सूट-बूट में बड़ी शान से खड़े और प्रसन्न दृष्टि से उसकी ओर देखनेवाले फोटो का निरीक्षण करने में वह मानों खो-सी गई।

फोटो की ओर देखती हुई वह कह रही थी, “अनंत—अनंत, कितना स्नेह भरा हुआ है तुम्हारी इन तेजस्विनी आंखों में ! कितने ममत्व से सराबोर हैं ये आंखें ! इस हतभागिन बकुल के लिए कितना दिल टूट रहा है तुम्हारा ? अनंत ! क्या विधाता ने तुम्हें मेरे ही लिए भेजा है ? अनंत, कहीं तुम्हारे स्नेह के मोह में न फंस जाऊं, इसलिए तुमसे दूर रहने की आज-तक मैं भरसक कोशिश करती रही। लेकिन—आज ? आखिर क्या है उस विधाता के मन में ? एक तरफ जीवन में धधकते हुए अंगारे फैलाये जा रहे हैं और उन अंगारों से यह बकुल जली जा रही है, तो दूसरी तरफ हम दोनों के स्नेह के मोहक और कोमल फूल ! दीक्षित के फोटो की ओर देखती हुई वह इस प्रकार के विचारों में खोई हुई थी। तन्मयता से उसे अपने फोटो को निहारते देखकर उनका मन जैसे खिल उठा। वे क्षण-भर के लिए जहां-के-तहां खड़े रहे। बकुल बड़ी सुंदर लग रही थी। उसके घुंघराले बालों का ढीला-सा जूड़ा बिखरकर खुलने लगा था। लेकिन फिर भी उसकी शुंडाकृति, गोरी, ऊंची और नाजुक गर्दन पर वह बहुत ही शोभित हो रहा था। उसके कानों की सुंदर, सुडौल और आरक्त लोर कुछ पारदर्शक-सी प्रतीत हो रही थीं। वह अपने कानों में हीरे के जो बूंदे पहने थी, उनसे उसका सौंदर्य जगमगा उठा था। दीक्षित को लगा—मेरे फोटो की ओर देखते हुए वह क्या सोच रही होगी ? किस भावना से वह उसे देखने में इतनी निमग्न होगई है ? क्या वह मेरे हृदय की थाह लेने का प्रयत्न कर रही है ? अथवा मेरी दृष्टि में जो समा गया है, उसीको वह खोज

रही है ? क्यों बकुल, अब तो तुम अनंत के हृदय के आकर्षण को जान गई हो न ? देखा, किस तरह मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा है तुम्हारे सुख के लिए ? बकुल-बकुल !

इन विचारों के आवेश में दीक्षित आगे बढ़े । इसी समय बकुल ने पीछे मुड़कर देखा । सागर और क्षितिज क्षण-भर के लिए एक हो गये । आकाश की नीलिमा सागर की नीलिमा से एकरूप हो गई । आकाश में बिजली चमक उठी । बादलों से स्नेहार्द्र भावनाओं की वृष्टि आरंभ हो गई । दीक्षित ने पुकारा “बकुल !”

उतनी ही आत्मीयता से, किंतु अनजाने बकुल ने प्रत्युत्तर दिया, “अनंत !” अनंत ने अपने हाथ की पुस्तकें एक ओर कुरसी पर रख दीं और जीवन में आधार खोजनेवाली बकुल को अपनी दोनों भुजाओं में आधार देने के लिए अपने हाथ आगे बढ़ा दिये । क्षण-भर मौन रहने के बाद उन्होंने फिर एक बार “बकुल” कहकर पुकारा । बकुल अपने-आपको भूल गई थी । लेकिन यह सोचकर कि जाने विधाता की क्या इच्छा है, वह जाग गई और तुरंत अनंत की ओर पीठ फेरकर एकदम गद्गद् स्वर में बोली, “नहीं अनंत, तुम्हारे स्नेह को स्वीकार करना भी इस हतभागिन बकुल के भाग्य में नहीं बदा है । इस अभागिन को अकेली ही जलना होगा !”

“बकुल, बकुल, यह क्या कह रही हो तुम ?”

“अनंत, मैं ठीक कह रही हूं । जो सच है, वही मेरे मुंह से निकल रहा है । हमें इस विशाल जग में भेजनेवाले विधाता ने यद्यपि आज हमें एक-दूसरे के इतने निकट ला दिया है, फिर भी सारी जिम्मेदारी उस ईश्वर पर ही छोड़कर हम इससे अलग नहीं हो सकते । हमें अपनी जिम्मेदारी समझकर ही बर्ताव करना चाहिए । आज किसी ईश्वरीय शक्ति की तीव्र इच्छा के कारण हमारे मन चाहे एक-दूसरे के अत्यंत समीप आ गये हों, फिर भी हमारे ये मन जबतक हमारे इन पार्थिव शरीरों से गुंथे हुए हैं, जबतक हमारा आत्मिक मिलन संभव नहीं, और इसलिए, और इसीलिए हमें एक-दूसरे से अलग रहना चाहिए । हमारा मिलन असंभव है ! अनंत, जबतक इस शरीर के चारों ओर समाज की नीति का बंधन पड़ा है, जबतक हमारी आत्माएं एकरूप न होकर, इसी तरह दूर-दूर रहेंगी ।”

“बकुल, बकुल, यह तुम क्या कह रही हो ? कितनी कठोर...कितनी कठोर...”

“हां, कठोर है मेरी बात, बहुत कठोर है ! पर अनंत, जीवन का नहीं, बल्कि मानव द्वारा निर्मित जीवन-मूल्यों का पालन करना बड़ा ही कठोर होता है। आत्मा का निष्पाप भाव इन मूल्यों को नहीं जानता। वे भाव, वे भावनाएं इन मूल्यों की शृंखलाओं में जकड़कर कुचल दी जाती हैं, रौंद दी जाती हैं। समझे।”

बकुल की ये बातें सुनकर दीक्षित समीप की कुरसी का सहारा लेकर खड़े हो गये। बकुल का एक-एक शब्द अंकुश की तेज़ नोंक की तरह उनके हृदय में चुभ रहा था। कुछ समय पहले दुःख के प्रहार से बकुल की जीवन-ज्योति भड़क उठी थी। और अब, अब उनके इन अनपेक्षित शब्दों से उन्हें लग रहा था, जैसे उनके जीवन में एक भयंकर रिक्त स्थान निर्मित हो गया है। क्षण-भर पहले उन्हें अनुभव हो रहा था, मानों जीवन में उन्हें बहुत-कुछ मिल गया है। लेकिन उनके मन में खिली हुई वह कली बकुल के एक-एक शब्द से मुरझाकर नीचे गिरने लगी। यह देखकर वह उनसे बोली, “अनंत, हम एक-दूसरे के हृदय को पहचान गये हैं न ? फिर यह दुःख किसलिए ? इस आत्मीयता की अनुभूति के सहारे ही क्या हम अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकेंगे ?”

बकुल आत्मीयता से बोल रही थी। दीक्षित कुर्सी के पीछे का डंडा मजबूती से पकड़े खड़े थे, मानों अपने मन का संतुलन संभाल रहे हों। बकुल के शब्दों ने उनका हृदय प्रकाशित कर दिया था। अंत में वे बकुल की ओर एकदम मुंह फेरकर बोले, “बकुल-बकुल, किसने सिखाया है तुम्हें जीवन का यह तत्त्वज्ञान ?”

“किसने सिखाया है ? अनंत, भारतीय संस्कृति जिनके रोम-रोम में बिंध गई है, उन आर्य नारियों को क्या यह सब किसीसे सीखना पड़ता है ? उनके भाग में कैसा दुर्भाग्य क्यों न आवे, उसे सहते हुए वे, जबतक जीवित रह सकें, रहती हैं, वरन मिट्टी में विलीन हो जाती हैं। आर्य-परंपरा से यह सिद्धांत उनके रक्त में मिला होता है। फिर किसीको उन्हें कुछ सिखाने की क्या ज़रूरत ? अनंत, अण्णा ने मुझे गीता कंठस्थ

करा दी है। शायद गीता के सिद्धांतों के अनुरूप ही मेरे मुंह से वे शब्द बाहर निकल पड़े हों। परंतु इतनी बातें क्यों? अनंत, क्या तुम्हींने कुछ समय पहले मुझे नहीं कहा था कि मानव-जीवन में उन्हें तूफान का सामना करने के लिए यदि ज्योतियां असमर्थ सिद्ध हुईं तो जीवन अंधकारमय हो जाता है। तुम्हारे ही शब्द कह रही हूं मैं! हम एक-दूसरे के समीप आये, लेकिन किस तरह? जिस तरह क्षितिज और सागर आते हैं, हम एक-दूसरे से दूर भी हैं और निकट भी हैं। अनंत, क्या तुमको बुरा लग गया?

अनंत बकुल की बातें बिल्कुल स्तब्ध होकर सुन रहे थे। लेकिन उसका अंतिम प्रश्न सुनते ही उन्होंने उसकी ओर बड़े प्रेम से देखा और बोले, “नहीं बकुल, नहीं! तुम जैसे निष्पाप और निष्कलंक व्यक्ति पर कौन नाराज होगा? मुझे दुख है कि... लेकिन छोड़ो भी! बकुल, आज की मेरी स्मृति के रूप में यह पुस्तक तुम अपने पास रख लो।”

पुस्तक बकुल ने अपने हाथ में ले ली। क्षण-भर के लिए दोनों की निगाहें एक-दूसरे से मिलीं। बकुल के चेहरे के निष्पाप भाव देखकर अनंत बेसुध-से होगये। वे बोले, “बकुल, बिदा लेने से पहले एक ही विनती करता हूं। तुम यद्यपि मेरी नहीं हो, लेकिन बकुल, मैं तुम्हारा ही हूं, मेरा सबकुछ तुम्हारा ही है। तुम्हारी पुकार पर मैं सदैव उपस्थित रहूंगा। बकुल, तुम्हारी आंखों के आंसू मेरी आंखों से बहेंगे। तुम्हारे हृदय की व्याकुलता मेरे जीवन की व्याकुलता होगी। मेरी मदद लेने में कभी संकोच न करना।”

इन शब्दों को सुनकर बकुल गद्गद होगई। उसका हृदय भर आया। क्षण-भर के लिए उसकी पलकें गीली होगईं। उसे लगा कि बार-बार वह उन्हें प्रेम से ‘अनंत’ कहकर पुकारे। लेकिन शब्द होठों से बाहर न निकलें। अनंत से बिदा लेने से पहले वह बोली, “मैं भी तुमसे एक चीज मांगना चाहती हूं! इस पुस्तक के रूप में तो तुम्हारी स्मृति मेरे पास रहेगी, लेकिन मैं तुम्हारा एक चित्र भी चाहती हूं। तुम्हारे साथ मैं मुझे जो नैतिक धैर्य प्राप्त होता है, वह इस चित्र से मुझे बराबर मिलता रहेगा। क्या एक चित्र मुझे दोगे?”

अनंत ने फ्रेम से फोटो निकाला और उसपर “अ. दी.” हस्ताक्षर करके बकुल के हाथ में दे दिया। उसके बाद बकुल खदान से कामठी लौट गई। वह अनंत से दूर—दूर चली गई। अकेली—नितांत अकेली!

सवेरा हुआ और स्वप्न टूट गया। रात खत्म हुई और चांद डूब गया। अब स्नेह की आर्द्रता के बिना सूखा पड़ा बालू का यह रूखा मैदान सर्द आहें भर रहा है। सितारे उसकी ओर देखकर हँस रहे हैं। क्यों न हँसेंगे ?

चांद और सितारो, हँसो, खूब हँसो। एकाकीपन की अग्नि में दग्ध हो रही इस बकुल पर मनमाने हँस लो ! जिस अनंत ने बड़े स्नेह और प्रेम से इस बकुल को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान किया था, जिस अनंत ने अपने स्नेह की अंजलि से भावनाओं के महकते फूल इस बकुल के चरणों में अर्पित किये थे, उस अनंत की सारी भावनाओं को ठुकराकर आई हुई इस बकुल के असफल जीवन पर अट्टहास करो !

चंद्रमा क्षितिज पर विश्राम करने आ गया था। धुंधली चांदनी के प्रकाश के कारण कन्हान नदी का प्रवाह, बालू का मैदान और आसपास के वृक्ष चमक उठे थे। ग्रीष्म में सूखी हुई नदी की धार का शांत जल तालबद्ध बह रहा था। सारी प्रकृति शांति से सोई थी। केवल बकुल उस बालू के मैदान पर अकेली बैठी हुई थी। वह अपने-आपको भूल गई थी। दूर के उस मंदिर के शिखर पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई थी। कितनी शांत लग रही थी वह ! लेकिन उसके हृदय में भयंकर आंधी उठी हुई थी, मन लगातार छटपटा रहा था।

बकुल के हाथ में एक पत्र था, जिसे वह अभी तक न जाने कितनी बार पढ़ चुकी थी। उसका एक-एक शब्द उसे कंठस्थ हो गया था। वह कह रही थी, “अनंत, जीवन का तत्त्वज्ञान सचमुच कठोर होता है, बड़ा ही कठोर। अब मेरे मन की यह छटपटाहट तुमको चुपचाप दूर से देखनी होगी। तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे। तुम्हें सहानुभूति के चार शब्द कहने की और मुझे उन्हें सुनने की इन नीति के नियमों ने मनाही कर दी है। सच, तुम ठीक ही कहते थे—हम दोनों क्यों मिले ? क्यों, एक-दूसरे के इतने समीप आये ? क्या विधाता की यही इच्छा थी कि हम दोनों इस तरह घुटें ? अनंत,

हमारी आत्माएं कितनी विवश हो गई हैं ? लेकिन नहीं-नहीं, इससे आगे हम दोनों को अब एक-दूसरे से कभी न मिलना चाहिए। हम दोनों के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति जो स्नेह पैदा हुआ, उसका स्वरूप कितना निर्मल था ? हमारे मन में एक-दूसरे के प्रति जो आकर्षण जाग्रत हुआ, उसका कारण विषय-वासना न थी। अनंत, हमारा स्नेह आत्मिक था। दूसरा स्नेह होता है शारीरिक। उस स्नेह के वशीभूत होकर हम एक-दूसरे के पास नहीं आये थे। हमारा स्नेह फूलों की सुगंध है, जिसे हृदय से सूंघना होता है, शरीर से नहीं। अनंत, इसीलिए हम लोगों को अब आगे एक-दूसरे से कभी नहीं मिलना चाहिए। हमारे इस स्नेह की सुगंध इसी तरह निर्मल बनी रहे, इसलिए आवश्यक है कि हम एक-दूसरे से अलग हो जायें।

“हे विश्व-विधाता, तुम जिस दिव्य भावना से हम दोनों को इतने निकट लाये हो, उस भावना की पूर्ति के लिए अब तुम्हीं हमें एक दूसरे से दूर रहने की शक्ति दो। अनंत, भूल जाओ इस अभागिन बकुल को। तुम विवाह कर लो। किसी भाग्यशालिनी सुंदर स्त्री के साथ अपना जीवन सुखी बनाओ। मुझ अभागिन के लिए तुम क्यों अपनी जिदगी बरबाद करो ?

“चांद और चकोर क्या कभी पास आये हैं ? क्या आग और पानी में कभी मित्रता हुई है ? क्या कभी कोई बिजली को अपनी बांहों में भर सका है ?”

रात के उस नीरव वातावरण में इस प्रकार के धधकते हुए और छट-पटाहट-भरे विचारों का ताना-बाना बुनती हुई बकुल बालू के मैदान पर अकेली बैठी हुई थी।

कोई एक घंटे तक वह उसी स्थिति में बैठी रही। वहां से उठने को उसका जी ही नहीं करता था। सुदूर चंद्रमा की ओर वह विस्मृत भावना से देख रही थी।

पिछला पूरा महीना बकुल ने इसी तरह जीवन में पराजित की तरह द्विविधा में व्यतीत किया था। ‘सुखिया-कांड’, ‘बंसी का खून’ और ‘बापू-साहब का बंबई-गमन’—इन बातों से उसके मन को जो चोट पहुंची थी, उसके घाव अनंत की सहानुभूति पाकर भी नहीं भरे थे। उल्टे अनंत के स्नेह से उसका मन और भी अधिक विह्वल हो उठा था। जीवन जीने के लिए

होता है, इस सिद्धांत पर से उसका विश्वास उठ चला था। उसे हर तरफ घोर निराशा ही दिखाई देने लगी थी। संयोग से उसी दिन दोपहर को खदान के नागपुर आफिस के मैनेजर ने आकर उसे जो समाचार दिया, उसे सुनकर तो वह और भी अधिक निराश हो गई।

बापूसाहब ने बंबई से मैनेजर को लिखा था कि रोज़ के पिता के नाम पांच हजार रुपये इंग्लैंड फौरन भेज दो। चूंकि इतनी रकम उस समय मैनेजर के पास नकद न थी, इसलिए वह इसकी सूचना देने बकुल के पास कामठी आया था। उस साल मंगनीज के व्यवसाय में बड़ी मंदी आ गई थी। पहले जितनी मात्रा में मंगनीज विदेश जाया करती थी, वह मात्रा अब प्रति वर्ष घटती जा रही थी। इस कारण नागपुर आफिस के मैनेजर की चिंता बढ़ गई थी। उधर बंबई में बापूसाहब रुपये पानी की तरह बहा रहे थे। बंबई की किसी घुड़दौड़ में वे कभी दस हजार जीतते, तो दूसरी में पंद्रह हजार खो बैठते। इस कारण मैनेजर की बड़ी मुसीबत हो रही थी। एक ओर अपने मालिक की बढ़ती हुई मांगों को पूरा करना जरूरी था तो दूसरी ओर इस बात की कोशिश करनी पड़ती थी कि खदान का खर्च उसकी आमदनी से अधिक न बढ़ने पावे और वहां के मजदूरों तथा कर्मचारियों को समय पर वेतन मिलता रहे। बापूसाहब को उन्होंने बार-बार आर्थिक परिस्थिति से अवगत कराया था। इतना होने पर भी उन्होंने मैनेजर को रोज़ के पिता के नाम पांच हजार रुपये भेज देने का आदेश दिया था। आय में जो बकुल का हिस्सा रहा करता, उसे खर्च में लाने के लिए अण्णासाहब की अनुमति आवश्यक थी। इस समय मैनेजर बकुल से यही कहने आये थे कि वह अण्णासाहब से किसी तरह पांच हजार रुपये देने के लिए कह दे। लेकिन बकुल ने उनसे साफ कह दिया कि आजकल अण्णासाहब का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। ऐसे समय उनसे यदि ऐसी कोई बात कही गई तो उनके स्वास्थ्य के और अधिक बिगड़ जाने की संभावना है। इसलिए उनसे रुपये हर्गिज नहीं मांगने चाहिए।

बेचारे मैनेजर निराश लौट गये। लेकिन बकुल को वे एक नया ही धक्का दे गये। वह सोचने लगी कि रोज़ के पिता को यानी रोज़ को ये पांच हजार रुपये क्यों भेजे जा रहे हैं? वह तो हिंदुस्तान छोड़कर चली गई

है, लेकिन फिर भी क्या उसकी चाह बापूसाहब के 'दिमाग से अभी तक दूर नहीं हुई है ? क्या रोज़ के प्रति उनकी आसक्ति अब भी बनी हुई है ? इस तरह के अनेक विचार उसके मन में उठ रहे थे। वे उसे डरा रहे थे। वह भौंचक्की-सी हो गई थी। इसीलिए रात के ग्यारह बज जाने पर भी उस नदी के किनारेवाले मैदान में वह अकेली बैठी हुई थी। वहां आकर बैठने के बाद दो दिन पहले मिले अनंत के पत्र की बातें उसके मन में चक्कर लगा रही थीं। पत्र भेजने से पहले अनंत ने दो बार उससे मिलने की कोशिश की थी, लेकिन वह उनसे नहीं मिली। इसलिए उन्होंने अंत में उसे पत्र लिखा। उस पत्र ने उसके टूटे हुए हृदय को थोड़ी-बहुत शांति भले ही प्रदान की हो, फिर भी वह रो रही थी। रोने से उसका मन कुछ शांत हुआ। इस दुनिया में मुझे निष्पाप 'इन्सोसेंट' कहनेवाला, मेरा अंतरंग जाननेवाला, अपने कोमल हृदय का परिचय करा देनेवाला और मेरी चिंता करनेवाला, मेरे सुख-दुःख का साथी एक प्राणी मौजूद है, यह विचार उसके उदास मन को किंचित सांत्वना दे रहा था, पर कहां था वह आधार, जिसपर व्यक्ति का जीवन टिकता है ? मन की उस विफल अवस्था में वह अभी न जाने और कितनी ही देर वहां बैठी रहती कि मंजुला ने बंगले के पीछे फाटक के पास आकर उसे पुकारा।

बकुल को चेत हुआ। वह बंगले लौट आई। अगला दिन उसे बड़े सौभाग्य का मालूम हुआ, क्योंकि बापूसाहब का पत्र आया था कि वे बंबई से लौट रहे हैं। बकुल को यह पता न था कि बापूसाहब बंबई में इतने दिन रहकर क्या कर रहे हैं और रोज़ के प्रति वे अपने हृदय में क्या-क्या अभिलाषाएं संजोये हुए हैं। अब यह समाचार पाते ही कि वे नागपुर लौट रहे हैं, बकुल को कुछ संतोष हुआ। उनके आगमन का समाचार अण्णासाहब को देने और साथ ही अण्णासाहब के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ करने के विचार से वह प्रसन्न को साथ लेकर नागपुर गई। अण्णासाहब के स्वास्थ्य में कोई विशेष सुधार न हुआ था, बल्कि वे और भी अधिक क्षीण होते जा रहे थे। उनकी हालत देखकर बकुल को बड़ी चोट पहुंची। वह उस दिन कामठी नहीं आई, अण्णासाहब के पास ही रह गई। अपने पिता को ऐसी हालत में छोड़कर जाने के लिए उसका मन तैयार नहीं होता था। दूसरे,

बापूसाहब अगले दिन नागपुर पहुंचनेवाले थे, इसलिए वह वहीं उनसे भेंट कर सकती थी। यही सब सोचकर वह वहीं ठहर गई और अत्यंत आतुरता से अगले दिन की बाट जोहने लगी।

लेकिन दूसरा दिन जो उदित हुआ वह बड़ा भीषण रूप लेकर आया। बापूसाहब लौटे, पर अपने हृदय में एक भयंकर तूफान लिये। कितना भयावना वेग था उस तूफान का। बापूसाहब घर आये, लेकिन दिन-भर वे बकुल से मिले ही नहीं। स्नान करके जो बाहर निकले, सो दोपहर को भोजन के लिए भी नहीं आये। उनकी यह उदासीनता देखकर बकुल के मन में आशा के जो थोड़े-बहुत अंकुर निकले थे वे पुनः सूख गये। जिस दिन बंसी की मृत्यु के रहस्य का सच्चा पता चला था उस दिन बकुल के मन में बापूसाहब की क्रूरता का बड़ा डर समा गया था। उस कुकृत्य की कल्पना करते ही उसका हृदय कांप उठता था। लेकिन अनंत और अण्णासाहब के समझाने-बुझाने से उसका मन कुछ शांत हो गया था। पर बापूसाहब के आज के बर्ताव के कारण वह फिर भयभीत हो उठा था। शाम तक तो उसका डर इतना बढ़ गया था कि वह समझ नहीं पा रही थी कि पति के सामने वह कैसे जा सकेगी।

शाम को एक नौकर ने आकर बापूसाहब के आगमन का समाचार दिया। वे अण्णासाहब के घर आये थे। इस समाचार को सुनते ही बकुल का हृदय कांपने लगा। पर बापूसाहब से दूर भाग जाना भी तो उसके लिए संभव न था, बल्कि बैठकखाने में जाकर उनकी कुशल-क्षेम पूछना उसके लिए जरूरी था, उसका कर्तव्य था। अण्णासाहब ने बकुल से कहा, “जाओ बेटी, उन्हें ठीक से बिठाओ। मैं अभी आ रहा हूं।”

बकुल बैठकखाने में जाने लगी। जाना उसके लिए बड़ा भारी हो रहा था। इसलिए अचानक उसके मन में विचार आया कि अपने साथ प्रसन्न को ले जाऊं। लेकिन संयोग से नौकर प्रसन्न को घुमाने के लिए ले गया था। वह धड़कते हुए हृदय से बैठकखाने में आई। बापूसाहब कोच पर न थे। वे दीवार पर लगे एक फोटो को देख रहे थे। उन्हें उस तरह खड़ा देखकर बकुल ताड़ गई कि उनके मिजाज ठीक नहीं हैं।

उसने सोचा कि चुपचाप लौट जाऊं, लेकिन तभी बापूसाहब ने मुड़-

कर पीछे देखा। बकुल ने अटकते-अटकते पूछा, “आप आ गये ?”

बापूसाहब ने कठोर स्वर में कहा, “अच्छा, तुम यहीं हो ?”

“हां !” बकुल ने डरते-डरते उत्तर दिया। बापूसाहब ने उसके उत्तर को अनसुना करके एकदम क्रोध-भरे स्वर में कहा, “तुम क्यों न रहोगी यहां ? यह सुनकर कि मैं आ रहा हूं, तुम्हारे बाप ने तुम्हें कुछ सिखाने-पढ़ाने की जरूरत समझी होगी। मैंने रुपये मंगाये थे, सो तुमने भेजने से साफ इंकार कर दिया। क्यों ? बाप की बीमारी का बहाना बनाकर मेरी मांग एकदम ठुकरा दी ? तुम्हारे बाप ने तुम्हें पढ़ी पढ़ाई होगी। मेरी सम्पत्ति का आधा हिस्सा इसीलिए उन्होंने तुम्हारे नाम लिखवा लिया था। उस सारी सम्पत्ति को हजम करने का इरादा है उनका। लेकिन मैं साफ कहे देता हूं कि तुम लोगों का यह षड्यंत्र मेरे सामने नहीं चलेगा। मुझे रुपयों की जरूरत है और वे मुझे मिलने ही चाहिए, समझी ! जाओ अपने बाप से जाकर कहो कि मुझे रुपये चाहिए। इसी वक्त मुझे बीस हजार रुपए नकद चाहिए।”

बापूसाहब का क्रोध, उनका आवेश, उनका स्वर, उनका आदेश—यह सब देखकर बकुल हतबुद्धि हो गई। वह भौंचक्की-सी क्षणभर बापूसाहब की ओर देखती रही। लेकिन उसे उसी तरह खड़ी देखकर बापूसाहब एकदम बरस पड़े, “क्या तुमने सुना नहीं ? बीस हजार रुपये लाओ। मुझे अभी चाहिए। जाओ, अपने बाप से कहो कि इंतजाम करें।”

इस वाक्प्रहार से बकुल का मन कठोर हो उठा। रोज के लिए इन्हें मेरे हिस्से के रुपयों की जरूरत थी ? इस विचार के मन में आते ही वह बुरी तरह चिढ़ उठी। उसके दिल में आया कि साफ कह दूं कि मेरे हिस्से में से तुम्हें एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी, लेकिन बापूसाहब की दुर्वासा की-सी लाल-लाल आंखें देखकर उसकी जिह्वा शिथिल पड़ गई। उसने धीरे-से कहा, “आपको रुपये चाहिए। पर यह भी तो मालूम हो कि आखिर किसलिए ?

“किसलिए ? तुम मुझसे इसका जवाब-तलब करोगी ? तुम ?”—बापूसाहब का पारा एकदम चढ़ गया। लेकिन इसी समय उनके कानों में ये शब्द पड़े, “वह नहीं पूछेगी। लेकिन—मैं-मैं पूछता हूं वह जवाब आपसे !”

बैठकखाने में आकर खड़े हुए अण्णासाहब के शब्दों से बापूसाहब चौंक पड़े। पर निरंकुशता और निर्भीकता बापूसाहब की रग-रग में बिंधी थी। वे क्षण-भर के लिए कुछ हतोत्साहित से हुए, लेकिन दूसरे ही क्षण वे पहले जैसे आवेग में बोले, “मुझे कैफियत मांगने की किसीको जरूरत नहीं। यदि आपका यह ख्याल है कि आपकी बेटी के हिस्से का रुपया उसका है और इसलिए आप उसे हड़प कर सकते हैं, तो आपको यह ख्याल अपने दिमाग से निकाल देना चाहिए। आज बीस हजार रुपयों की मुझे सख्त जरूरत है। इतने रुपयों का इंतजाम तुरंत होना चाहिए...”

अण्णासाहब ने उन्हें समझाते हुए कहा, “बापूसाहब, आपके पिता ने बकुल के नाम आधी जायदाद लिख दी है, वह इसलिए नहीं कि उसे आप मनमाना उड़ा दें। आज मैंगनीज के धंधे में बड़ी मंदी आ गई है। पहले मैंगनीज को जो भाव मिलता था, उसका एक-चौथाई भी आज नहीं मिल रहा है। खदान का खर्च कितनी कठिनाई से चल रहा है? बकुल का पैसा खदान की जरूरतें पूरी करेगा, आपकी नहीं।”

“क्या कहा, मेरी नहीं?”

“जीहां, आपकी नहीं! बापूसाहब, आपको अपने भविष्य की, अपनी पत्नी की, अपने पुत्र की, कोई फिक्र भले ही न हो, लेकिन मुझे उनकी चिंता करनी होगी।”

“आपको? भूठ। यह सब आपका ढोंग है। मेरी सारी जायदाद को आप खुद हड़प कर लेना चाहते हैं। इसलिए...”

बापूसाहब आगे बोल न सके। उनके उपरोक्त शब्द सुनकर अण्णासाहब ने चिल्लाकर कहा, “बापूसाहब, मैं आज तक आपके मामलों में नहीं पड़ा, लेकिन अब आपने हद कर दी है!”

अण्णासाहब के इन क्रोध-भरे शब्दों को सुनकर बापूसाहब कुछ नर्म पड़े। थोड़े दबकर बोले, “हद किसने कर दी है—मैंने या आपने?”

अण्णासाहब का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच गया। उन्हें चिल्लाकर कहा, “बापूसाहब...” आगे उनका गला रुक गया। उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ा हुआ था। आवेश के कारण उनकी हालत एकदम बिगड़ गई। बड़ी धीमी आवाज में उनके मुंह से निकला—“बकुल, मुझे सम्हाल।” बकुल

दौड़कर उनके पास गई। अण्णासाहब कहीं नीचे न गिर पड़ें, इसलिए उन्हें सम्हालकर पकड़े हुए वह बोली, “अण्णा, आप यह क्या कर रहे हैं? क्या हो रहा है आपको?”

अण्णासाहब के मुंह से निकला—बकुल!”

और वे धड़ाम से नीचे गिर पड़े।

बकुल अपने पलंग पर मूक पड़ी हुई थी। शुभ्र साड़ी पहने उसकी आकृति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सूखी और मुरझाई हुई-सी प्रतीत हो रही थी। कमरे के सब दरवाजों और खिड़कियों में परदे लगे रहने के कारण भीतर धुंधला-सा प्रकाश फैला था। बकुल के नजदीक बैठी मंजुला धीरे-धीरे पंखा भल रही थी। अण्णासाहब की मृत्यु का आज चौथा दिन था।

किसी पराभूत व्यक्ति की भांति बकुल अपने कमरे में गुमसुम पड़ी थी। ताई और अण्णासाहब के कुछ रिश्तेदार उसे सांत्वना देने का प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन फटे हुए आसमान को क्या कभी पैवंद लगाये जा सकते हैं ? नदी की बाढ़ को क्या कोई रोक पाया है ? उसी तरह बकुल के दुख को भी कोई कम नहीं कर पा रहा था। उसका हृदय पिता की मृत्यु से दग्ध हो गया था। साथ ही, बापूसाहब की भयंकर आकृति के दर्शन से उसका हृदय भी टूक-टूक हो गया था। उनकी याद आते ही उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसका मन बापूसाहब को ही पिता की मृत्यु का जिम्मेदार ठहराता था। बापूसाहब उनसे यदि इतनी कठोर बातें न करते, तो आज उसके पिता उसे इस तरह अकेली छोड़कर न चले जाते। बापूसाहब ने उनके नाजुक स्वास्थ्य की तनिक भी परवा न की। उल्टे बकुल को तो यह भी लग रहा था कि अण्णासाहब के कांटे को अपनी राह से दूर करने के लिए ही अगर बापूसाहब ने जानबूझकर उनसे ऐसा कठोर बर्ताव किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वैसे देखा जाय, तो बापूसाहब ने अपने मन की हविस पूरी करने के लिए आज तक उठा क्या रखा था ? सुखिया और बंसी-कांड ! सुखिया के लिए उन्होंने बंसी की जानबूझकर हत्या करा दी थी ! और अब ? रोज की चाह के लिए अण्णासाहब के भी प्राण ले लिये ! इसके आगे... इसके आगे... शायद मेरे भी... मेरे भी... !

बकुल के मन में इस तरह के भयंकर विचार निरंतर कुहराम मचा रहे थे। अण्णासाहब की मृत्यु के बाद से उसने बापूसाहब से मिलना छोड़ दिया

था। वह उनसे डरने भी लगी थी ! इसलिए पिछले चार दिनों से वह अपना कमरा छोड़कर कहीं बाहर नहीं गई थी।

दुःख ! आंसू ! विलाप ! पिछले चार दिनों में उसका शरीर बिल्कुल पस्त हो गई थी। आज तो वह बहुत ही थक गई थी। इस कारण उसे बड़ी कमजोरी लग रही होगी। उसे अपने एकाकी और सूने जीवन में सबकुछ खोया-सा लगने लगा। वह किसीके आधार का सहारा खोजने लगी। उसे अनंत की याद आई। पिछले दो दिनों में अनंत दो बार आ चुके थे, किंतु उसने कहलवा दिया था कि वह किसीसे भी नहीं मिलना चाहती। पर आज उसका मन अनंत के स्नेह की उष्णता की कामना कर रहा था। चुपचाप आंसू बहाती हुई वह कहने लगी, “अनंत, अनंत, देखो, मेरे जीवन की किस तरह धज्जियां उड़ रही हैं ? मेरे जीवन में अब रह ही क्या गया है, जिसके लिए मैं जीवित रहूं ? प्रसन्न ! वह अब बड़ा हो गया है। मां की गोद की उष्णता के बजाय अब उसे दुनिया के प्रकाश की इच्छा होगी। अनंत तुम्हीं बताओ, फिर मैं किसलिए जिऊं ?”

इसी तरह के विचार उसके मन में उठ रहे थे कि तभी अण्णासाहब का एक पुराना नौकर सदाशिव भीतर आकर बोला, “दीक्षितसाहब आपसे मिलने आये हैं।”

बकुल ने कोई उत्तर न दिया, सदाशिव पहले से ही जानता था कि अनंत दीक्षित अण्णासाहब और बकुल के हितचिंतकों में से हैं। उसे विश्वास था कि यदि वे बकुल से मिलकर उससे दो-एक सांत्वना की बातें कह देंगे, तो उसे अच्छा लगेगा। इसलिए बाहर बैठे हुए अनंत दीक्षित से उसने आकर कहा “आइये, अंदर आइये।”

यह कहकर वह उन्हें बकुल के कमरे में छोड़ आया। अनंत धीरे-धीरे कदम बढ़ते हुए बकुल के पलंग के पास आकर खड़े हो गये। उन्हें भीतर आया देखकर मंजुला कमरे से बाहर चली गई। अनंत क्षणभर स्तब्ध खड़े रहे। बड़ी कातर दृष्टि से वे बकुल की कृश काया की ओर देख रहे थे। इस तरह देखते-देखते उन्होंने भारी कंठ से पुकारा, “बकुल !”

बकुल अनंत की ओर पीठ करके लेटी हुई थी। उनकी आवाज सुनकर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। पर उनकी पुकार सुनकर उसके हृदय की

गहराई से एक जोर की सिसकी बाहर निकल पड़ी। उस सिसकी के बाद वह बहुत देर तक रोती रही। तूफान में फंसी हुई लता अथवा तूफान में थरथरानेवाली दीप-ज्योति की छटपटाहट बहुतों ने देखी होगी, लेकिन दुखावेग से थरथरानेवाले बकुल के हृदय की छटपटाहट उससे भी अधिक भयंकर थी। अनंत भग्न हृदय से बकुल की ओर देखते रहे। उसकी प्रत्येक सिसकी उनके हृदय को झकझोर रही थी। उनकी अंतरात्मा कह रही थी, “बकुल, इतनी दुखी न होओ। इस वेदना में क्या तुम अपने-आपको डुबा दोगी? हे विधाता, मुझे और बकुल को तुम इतने निकट ले आये। क्या इसीलिए कि मैं बकुल का दुख इस तरह बेबस होकर देखता रहूं? इसका क्या कभी अंत न होगा?”

इसी बीच बकुल ने सिसकियों के बीच पुकरा, “अनंत—अनंत—!”

बकुल के हृदय की अगाध गहराई में से निकली हुई वह करुण पुकार सुनकर अनंत का हृदय गदगद हो गया। वे आगे बढ़े। उन्हें लगा, बकुल को इस सारे दुख का स्पर्श न हो, इसलिए उसे अपने हृदय में समेट लूं। वे उसके सिरहाने के पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने उसका एक हाथ अपने हाथ में लिया और अपना दूसरा हाथ उसके मस्तक पर कोमलता से फेरते हुए बोले, “बकुल, धीरज रखो। इस तरह रोओ नहीं। शान्त हो जाओ।”

सांतवना के इन शब्दों ने अग्नि में घी का काम किया। बकुल का मन और भी अधिक व्याकुल हो उठा। वह हताश होकर बोली, “अनंत, मेरे जीवन में जो आंधी उठी है, वह अब कभी शांत न होगी। अण्णासाहव होते तो वे शायद मेरे जीवन के तूफान को शांत कर सकते। लेकिन आज—आज—।”

बकुल की बात सच थी। बापूसाहब ने उसके जीवन में जो आंधी उठा रखी थी, उसका शांत होना असंभव था। अण्णा होते तो अपनी बेटी को तूफान से बचा लेते। अण्णा का आधार टूट गया था। बापूसाहब से अब कोई आशा करना व्यर्थ था। रोज़गार में बेहद मंदी आगई थी। बापूसाहब को रूपयों की बड़ी तंगी हो रही थी। ऐसी परिस्थिति में बकुल को आंधी का मुकाबला करते हुए जिंदगी गुजारनी थी।

बकुल का जीवन बिल्कुल सूना हो गया था। उसे लगता था, जिंदगी

से कहीं छिपकर बैठ जाऊं, जीवन को अपना मुंह भी न दिखाऊं, जिससे तूफान का तीव्र आवेग उसे सहन न करना पड़े, मन आकुल न हो।

बकुल महीने भर तक अपने मायके में बनी रही। वह बापूसाहब का और जीवन की समस्याओं का सामना नहीं करना चाहती थी। लेकिन उसे जीवन से इस प्रकार विमुख हुआ देखकर बापूसाहब को अपने स्वेच्छा-चार के लिए और भी छूट मिल गई थी। वे नहीं जानते थे कि इस मैदान में जो खेल खेला जा रहा है, वह आंखमिचौनी का खेल है। उन्होंने अपने हृदय की मानवी भावनाओं की आंखों पर पट्टी बांध दी थी और जीवन के नकली मूल्यों पर आसक्त होकर उनके पीछे घूम रहे थे। वे मूल्य उन्हें अधोगति के गहरे गर्त में ले जा रहे थे। पिछले तीन महीनों में उन्होंने क्या-क्या नहीं किया था ! सच बात यह थी कि उनके हृदय के किसी कोने में कुछ चुभ रहा था। वह चुमन उन्हें महसूस न हो, इसलिए वे अपने आप-को भांति-भांति के छल-प्रपंचों में उलझाये हुए थे। नकली सुख के मार्ग खोज रहे थे और अधोगति के गर्त में अधिकाधिक गिरते जा रहे थे। बकुल की ओर से उनका हृदय इतना कठोर हो गया था कि उसके पिता की मृत्यु के बाद उसे धीरज बंधाना तो दूर, उससे मिलने तक न आये।

इसके विपरीत उन्होंने रोज और उसके पिता को बहुत जल्द हिन्दुस्तान आने का निमंत्रण भेजा था। मंगनीज के रोजगार में बहुत गिरावट हो गई थी। इसलिए रोज के पिता की सलाह से बापूसाहब बंबई और नागपुर में दो सिनेमाघर बनवाकर उनसे रुपया कमानेवाले थे। इस रोजगार की प्रारंभिक कार्यवाही और उसकी देख-रेख के लिए रोज और उसके पिता को जल्द हिन्दुस्तान आने के लिए पत्र-पर-पत्र जा रहे थे। रोज के पिता तो यह चाहते ही थे। किसी-न-किसी बहाने बापूसाहब के पैसों पर मौज उड़ाने का उन्होंने निश्चय कर लिया था। इसीलिए थोड़ा भी विलंब न कर वे रोज के साथ हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गये थे। इस समाचार से कि रोज आ रही है, बापूसाहब की खुशी का ठिकाना न रहा था। वे उसके स्वागत की तैयारी में लग गये। बकुल पिछले पूरे महीने से कामठी के बंगले में नहीं गई थी। इसलिए उसकी अनुपस्थिति में बापूसाहब ने वहां एक दूसरा ही नाटक खेलना शुरू कर दिया था।

बेचारी बकुल ! कुछ दिनों तक उसे बापूसाहब के इस नये षडयंत्र का पता ही न चला । लेकिन जब उसे सारी बात मालूम हुई तब उसकी क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना कौन कर सकता है ?

करीब डेढ़ महीने के बाद बकुल ने कामठी के बंगले में पैर रखा। ग्रीष्म के अंत में वह कामठी छोड़कर नागपुर गई थी। उस समय कामठी ताप से जल रही थी। लेकिन इस समय वहां और उसके बंगले के आसपास जहां-तहां हरियाली हो गई थी। वर्षा ने पृथ्वी की चार महीने की गरमी को पिघलाकर उसपर मुक्त हस्त से जल-वृष्टि करके उसे शांत कर दिया था। प्रकृति का यह स्नेहभाव देखकर बकुल को अपना दुर्भाग्य और भी अखरा।

वह बंगले में आई। हाल में उसने जो चीजें सुंदरता से सजाकर रखी थीं, वे ज्यों-की-त्यों थीं। उन्हें देखकर उसे अच्छा लगा। लेकिन जब उसने पूरे बंगले में घूमकर देखा तो भूकंप से जैसे सुंदर इमारतें धराशायी हो जाती हैं, उसी तरह बकुल की गृहस्थी का महल क्षणभर में भूमिसात हो गया।

रोज़ और उसके पिता इसी बंगले में आकर रहनेवाले थे। बापूसाहब ने बंगले के आधे हिस्से में उन मेहमानों के रहने की बड़े ठाट-बाट से तैयारी कर रखी थी। उस सारी साज-सज्जा और बंगले में हुए परिवर्तन से बकुल के मन पर बड़ी गहरी चोट लगी और उसका मन क्रोध से जल उठा था।

आज तक बकुल ने बापूसाहब की सब क्रियाओं की ओर भयभीत और भयाकुल दृष्टि से देखा था। इस कारण उनसे किसी भी बात का जवाब तलब करने की उसे कभी हिम्मत न हुई थी। लेकिन आज—आज दुख सह-सहकर निर्भीक नहीं, किंतु निर्जीव बने हुए उसके मन को बापूसाहब से उनकी इस हरकत की कैफियत पूछने में जरा भी भय न लगा। आज तक बापूसाहब के विषय-लोलुप मन के खेल घर के बाहर खेले गये थे, लेकिन अब तो उन्होंने उस मर्यादा का भी उल्लंघन कर दिया था। आबासाहब के बाद उनपर अण्णासाहब का कुछ दबाव था, लेकिन अब वह दबाव भी जाता रहा था। अब उन्हें अपने स्वेच्छाचार के लिए सारा मैदान खाली

मिल गया था। बकुल उनकी इस हरकत से बेहद चिढ़ गई। वह बापू-साहब के लौटने की बाट जोह रही थी। शाम के साढ़े पांच बजे थे। वैसे देखा जाय तो इस समय अंधेरा नहीं होना चाहिए था, लेकिन वर्षाकालीन मेघों ने उमड़-धुमड़कर आसमान में जमघट लगा दिया था। बिजली के कोड़े की फटकार से सारे बादल दौड़-दौड़कर एकत्र होगये और बात-की-बात में चारों तरफ अंधेरा फैलने लगा।

तूफान आने की यह पूर्व तैयारी थी। बापूसाहब एक घंटे में घर लौटे। उन्हें इसकी कोई कल्पना भी न थी कि बकुल बंगले में आजायगी। उसके आगमन के समाचार से निमिष-भर के लिए उनका अपराधी मन कांप उठा। लेकिन अपनी प्रकृति के अनुसार उन्होंने मन के भय को दबा लिया और नित्य की भांति तामसी रूप धारण किया। बकुल को ज्योंही उनके आने का समाचार मिला, बिना किसी सूचना के वह सीधी उनके कमरे में जा पहुंची। बापूसाहब उस समय कपड़े उतार रहे थे। उनकी दृष्टि बकुल पर पड़ी। क्षण-भर के लिए वे चौंक पड़े। यह देखकर कि बिना पूर्व-सूचना के बकुल उनके कमरे में आ गई है, उन्हें ताज्जुब हुआ। वह पहले की बकुल न थी। आज उसके चेहरे पर झलक रहा तेज कुछ अलग ही था।

उसे बापूसाहब की नज़र से नज़र मिलाने में पहले जैसा डर नहीं लग रहा था। आज उनसे जवाब तलब करने में उसकी जबान नहीं लड़खड़ाती थी। आज की आत्मा पार्थिव देह की क्षणभंगुरता को अनुभव कर बड़े तेज से बोल रही थी। बापूसाहब से उत्तर न मांगकर, वह उनकी आत्मा से, उनकी मानवता से उत्तर मांग रही थी। बकुल का वह आवेग देखकर बापूसाहब किंचित सकपका गये। लेकिन उसी क्षण संभलकर उन्होंने कहा, “देखो, तुम्हारे इस आवेग का मेरे मन पर जरा भी असर नहीं पड़ेगा। रोज़ यहां आयगी और यहीं रहेगी। यह ध्यान में रखो। मेरा निश्चय उतना ही अटल है, जितना कि सूरज का निकलना। ‘रोज़ यहां आकर रहेगी’ का मतलब है कि यही उसका घर होगा। यदि उसका यहां रहना तुम्हें पसंद नहीं है, तो आबा ने तुम्हारे नाम पर नागपुर की सात तहखानेवाली कोठी लिख दी है। शौक से वहां जाकर रह सकती हो। समझीं?”

बापूसाहब का यह उत्तर सुनकर बकुल के पैरों के नीचे से जमीन

खिसक गई। वह हताश होकर बापूसाहब की ओर क्षण-भर देखती रही। फिर बोली, “क्या कहा आपने? क्या आपने स्त्री-जाति को कलंकित करने-वाली एक युवती के लिए अपनी पत्नी को घर से निकल जाने के लिए कहा?”

“हां, यही कहा। एक बार नहीं, हजार बार कहने में भी मुझे कोई डर नहीं, कोई संकोच नहीं। इस तरह रोक-चिल्लाकर मेरे सामने नाटक करने की जरूरत नहीं। नाटक रंगमंच पर ही ठीक लगता है। यदि तुम आज ही इस बंगले को छोड़कर जाना चाहती हो, तो इसका इंतजाम हो सकता है।”

इसके उपरांत बकुल बापूसाहब के सामने क्षणभर के लिए भी नहीं ठहरी। पराई स्त्री के लिए स्वयं अपनी पत्नी से ‘चली जाओ’ कहनेवाले पति के सामने खड़े रहने में अथवा उससे बातें करने में कौन-सी बुद्धिमानी थी? उसे अपने दुर्भाग्य पर ग्लानि हो आई। उसकी भग्न आत्मा रुदन करती हुई कह रही थी, “बस, बस! हे विधाता, इस बकुल की जितनी विडंबना तूने कर दी, उतनी काफी है। फूटे नसीबवाली इस ‘भाग्यशालिन बकुल’ को अब जो भी अंतिम सजा तुझे देनी है, वह दे दे। ‘उनके’ मुंह से तूने जो शब्द मुझे सुनवाये हैं, उनके बजाय तूने मुझसे यह क्यों नहीं कह दिया कि आज मेरा खून होनेवाला है। मेरे गले में तूने फांसी क्यों न लगा दी? लेकिन छिः विधाता! तुझे दोष क्यों दूं? मेरी किस्मत फूटी है। यहां भी मेरा दुर्भाग्य ही आड़े आया होगा! मौत मांगने से ही मौत आ जाय, इतना सौभाग्य कहां है मेरा! लेकिन नहीं, आज... आज... आबासाहब, क्या आप अपनी बहू को अपने पास बुला रहे हैं? हां, वह देखो, आपकी पुकार सुनाई पड़ने लगी। आबा! क्या तुमसे भी मेरा दुःख नहीं देखा जाता है? इसीलिए मुझे बुला रहे हो? और अण्णा, तुम भी मुझे बुला रहे हो क्या? अपनी बेटी के बिना तुम्हें भी स्वर्ग में अच्छा न लगता होगा। है न? आबा, अण्णा, मैं आ रही हूं। जीवन में उठे इस तूफान का सामना करने की अब इस ज्योति में शक्ति नहीं बची है। देखिये, कितना भयंकर तूफान आया है? देखिये, ज्योति किस तरह थरथरा रही है? इस तूफान का कैसे मुकाबला करूं? जीवन के तूफान से बचने के लिए स्त्री को पति का सहारा होता है,

लेकिन इस बकुल के भाग्य में पति का सहारा नहीं, न घर का ही आधार है।”

बकुल के मन में नाना प्रकार के विचारों का तूफान उठा था। पिछले दस वर्षों से उसकी आत्मा निरंतर दुःख सहते-सहते जीवन से ऊब उठी थी। आज तो पराकाष्ठा ही हो गई थी ! जीवन में मानवी मन को यदि स्नेह और प्रेम की आर्द्रता प्राप्त होती रहे, तो मन को भस्म करनेवाले विष की गांठ को भी हृदय में दबाये हुए मनुष्य जीवन बिताता रहता है। लेकिन बकुल को इस क्षण बड़ी बेचैनी हो रही थी। घोर निराशा, निविड़ अंधकार, ऊपर से उठा भयंकर तूफान ! भावी जीवन के प्रति आकुलता पैदा करने-वाली बापूसाहब के अंतिम आदेश की वह कर्ण-कटु आवाज ! बकुल से उस सबको सहना संभव न था। आवा और अण्णा उसे बुला रहे हैं, इस विचार ने उसको एक नया ही मार्ग दिखा दिया। एकाएक उसका मन इस तरह जाग उठा, जैसे उसमें नया उत्साह भर गया हो।

“बस ! अब मेरे दुर्भाग्य की इतिश्री हो जायगी। इस निष्ठुर और स्वार्थी जग से हमेशा के लिए संबंध टूट जायगा !” इन विचारों से बकुल को जैसे जोश आ गया और उसका रोना रुक गया। उसके दिल में आया— “प्रसन्न को बुला लूं, उससे मिल लूं, उससे बिदा ले लूं।” लेकिन तभी जैसे कोई उसके भीतर से बोल उठा, “प्रसन्न, मेरे प्राणों के प्राण ! जग की निष्ठुरता ने तेरी मां को आज जग से उठ जाने के लिए बाध्य किया है। बेटा, मेरे बेटा, मैं जा रही हूं ! तुझे छोड़कर जा रही हूं ! नहीं, बेटा, इस तरह करुणा-भरी निगाह से मेरी ओर न देख ! आर्त स्वर से, “मां ! मां !” कहकर न पुकार ! तेरी पुकार इस अभागिन माता के हृदय को टूक-टूक करती है। मेरे पैरों में बेड़ियां डालती है। मेरे प्यारे लाल, जुग-जुग जिओ ! प्रभो, मेरी बची हुई आयु मेरे बच्चे को दे देना। उसे सुखी रखना। मेरी यह अभागिन आत्मा अपने बेटे का सुख देखकर तृप्त हो जायगी। बेटा, मैं तुझे आशीष देती हूं। देशमुख-घराने की पिछली दो पीढ़ियों के किसी भी वारिस को ऐसा आशीर्वाद नहीं मिला होगा। अपने प्यारे बेटे को मैं अपनी जीवन-ज्योति बुझाकर आशीर्वाद देती हूं। प्रसन्न, बेटा, मेरे लाल, तुम सुखी होगे। देशमुख-घराने का नाम ऊंचा करोगे। इस घराने का जो कुछ भी दुर्भाग्य

और दुर्दैव है, उसे मैं अपने साथ लिये जा रही हूँ। मैं जा रही हूँ—मैं चली
...मैं...

इन विचारों के आवेश में बकुल अपने कमरों के पिछवाड़ेवाले बरामदे में गई। रात के नौ बज रहे थे। इस समय बंगले में वैसे काफी चहल-पहल रहा करती थी, लेकिन आज का दिन तंग वातावरण में अस्त हुआ था। नौकरों-चाकरों के सारे काम बिल्कुल चुपचाप हो रहे थे। बेशक बाहर जोर की आंधी ने धूम मचा रखी थी। चारों ओर घना अंधेरा छाया था। हवा सांय-सांय करती हुई करुण रुदन कर रही थी। जोर की वर्षा हो रही थी। इस कारण आसपास के जंगल में बड़ी अजीब-सी आवाजें गूंज रही थीं। सामने कन्हान नदी ! कहां चला गया था उसका वह चांदनी रात का सौम्य स्वरूप ? कहां गायब हो गया था उसका वह रुपहला जलप्रवाह ? कहां विलुप्त हो गया था उसका वह चमकीला बालू का मैदान ? किस तरह भीषण नाद करती हुई वह नदी भयंकर वेग से बही जा रही थी। बकुल धीरे-से बरामदे की सीढ़ियां उतरी और जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई बंगले के उस छोटे फाटक के पास आई, जो नदी-किनारे के निकट था।

फाटक खोलते समय बकुल का हृदय जोर-से कांप उठा, लेकिन वह रुकी नहीं। बड़ी तेजी से फाटक खोलकर बाहर निकल गई। सामने की छोटी पगडंडी तय करके वह टेकड़ी पर आई। कितना घोर अंधकार था उस समय ! कितना भयानक स्थान था वह ! कितना भयंकर तूफान उठ रहा था उस वक्त ! बकुल का अंग-अंग थरथर कांप रहा था ! उसकी जीवन-ज्योति फड़फड़ा रही थी ! उसकी आत्मा अपना होश खो बैठी थी। उस ऊंची टेकड़ी पर खड़े होकर उसने क्षण-भर पीछे मुड़कर देखा—पीछे, जहां उसके जीवन का पसारा फैला हुआ था, जहां उसका प्यारा बेटा चैन से खेल रहा था, और जहां उसके पति पराई स्त्री के स्वागत की बड़ी धूम-धाम से तैयारियां कर रहे थे। बकुल ने मन-ही-मन कहा, “बापूसाहब, आपकी राह में बड़ी रुकावट थी। वह रुकावट आज दूर हो रही है। उससे आपकी आत्मा को आनंद मिलेगा ! भगवान से मेरी अंतिम विनय है कि मेरी मृत्यु के कारण ही क्यों न हो, आपको सुख मिले। मेरी जीवन-ज्योति बुझकर आपके अंतरंग की ज्योति को प्रज्ज्वलित कर दे। यदि यह हुआ तो

मेरी आत्मा सचमुच बड़ी सुखी होगी। मेरा मरण वरदान बन जायगा।”

इतना कहकर बकुल ने एक आह भरी। फिर वह एक कदम आगे बढ़ी। लेकिन इसी समय उसे ऐसा आभास हुआ, मानो कोई पुकार रहा है—“बकुल !”

“ओ हो, यह तो अनंत की आवाज़ है !” इस विचार से बकुल के पैर जहां-के-तहां ठिठक गये। निमिष भर के लिए उसका मन कांप उठा। वह बोली, “अनंत ! अनंत ! इस तरह मत पुकारो। जीवन के बंधन तोड़कर यह बकुल अब मृत्यु के कगार पर आकर खड़ी हो गई है। उसे वापस मत बुलाओ। तुम्हारी पुकार का उत्तर देना, तुम्हारे पास आना, नहीं, अब वह संभव नहीं ! ईद का चांद थोड़ी देर के लिए उदित होता है। उसी तरह तुम्हारा स्नेह मेरे जीवन में मुझे क्षण-भर के लिए अनुभव करने को मिला। उसके लिए मैं तुम्हारी आभारी हूं। तुम्हारे उपकारों से मैं कभी उद्धरण न हो सकी। शायद अगले जन्म में—हां, अगले जन्म में—विधाता की इच्छा होगी तो तुम्हारी और मेरी भेंट होगी। अब तुम इस तरह मत पुकारो। देखो, आगे बढ़ते मेरे पैर किस तरह रुक गये हैं ! अनंत, मुझे विदा दो, अंतिम विदा ! लेकिन छिः, अंतिम क्यों ? बकुल की यह पार्थिव देह भले ही नष्ट हो जाय, उसकी आत्मा—? आत्मा तो अमर होती है ? अनंत, तुम्हारी और मेरी आत्माएं क्या कभी मिलेंगी ? जाती हूं—जाती हूं, अनंत ! कितना भयानक तूफान उठा है ? नहीं, ऐसे भयानक तूफान में अपने जीवन की ज्योति को जलते रखना मेरे लिए बिल्कुल असंभव है !”

बकुल दो कदम आगे बढ़ी सामने गहरा पानी था। अंधेरे के कारण उसे कुछ सूझ ही न रहा था। नदी के वेगवान प्रवाह के भयंकर निनाद से जल का आभास होता था। बकुल थोड़ी और आगे बढ़ी। उसने अपनी अंगुली से अंगूठी को, जो आबासाहब ने उसे दी थी, उतारकर हाथ में ले लिया। उसे ध्यान आया—यह अंगूठी आबासाहब ने यह कहकर उसे दी थी कि यह बड़े सगुन की है। लेकिन इस अंगूठी से देशमुख-घराने की स्त्रियों को सुख मिलने के बजाय दुख ही अधिक मिला। ऐसी अशुभ अंगूठी इस घराने में आगे न रहे। इसे सदा के लिए नष्ट हो जाना चाहिए। इस विचार के मन में आते ही उसने वह अंगूठी नदी में फेंक दी। फिर बोली, “अब

प्रसन्न की बहू आयगी, तो उसका भाग्य बड़ा सुखी होगा। मेरे साथ ही इस घराने का सारा दुर्भाग्य और दुर्दैव नष्ट हो जाने चाहिए ! प्रसन्न, मेरे लाल ! तुम सुखी रहो। अपना जीवन ऊंचा रखना, जिससे तुम्हारी मां की आत्मा को शान्ति मिले।”

इसके बाद बकुल सपाटे से आगे बढ़ी और जल-धारा में कूद पड़ी। नदी के तूफानी प्रवाह में कुछ खलबली-सी हुई। फिर मिट गई।

बकुल की जीवन-लीला समाप्त हो गई। जीवन-ज्योति बुझ गई।

: २६ :

कामठी के बंगले के उत्तरी कमरे में प्रतिमा तन्मय होकर लिख रही थी। अंतिम पंक्तियां लिखते समय उसका मन स्तब्ध हो गया था। उसकी आत्मा बकुल की आत्मा से एकरूप हो गई थी। प्रतिमा एक विशिष्ट प्रकार के उन्माद में “बकुल, बकुल !” कहकर पुकारने लगी। सामनेवाले द्वार का वह जाली का भीना परदा हिला। देखते-देखते शुभ्र परिधान में एक आकृति धीरे-से उस द्वार से होकर भीतर आई और प्रतिमा की मेज़ के पास आकर खड़ी हो गई। प्रतिमा हतबुद्धि होकर उसकी ओर देखने लगी। उस आकृति के चेहरे के भाव कितने निष्पाप और निर्मल थे। कौन ? कौन थी वह आकृति ?

प्रतिमा उसे पहचान गई। धीरे-से बोली, “बकुल—बकुल ?”

“हां, बकुल देशमुख—तुम्हारी सास ! प्रतिमा, तुमने बड़ी भावना से मुझे देखने का प्रयत्न किया। इसीलिए मैं तुमसे मिलने आई हूं।

“प्रतिमा, तुम्हें और प्रसन्न को आज आनंद से इस बंगले में रहते देखकर मुझे कितना आनंद हो रहा है ? मेरे समूचे जीवन में मेरा हृदय शायद ही कभी इतना प्रसन्न हुआ होगा।

“प्रतिमा, अपनी सास के प्रति तुम्हारे मन में जो सद्भावनाएं हैं, उन्हें देखकर मेरा चित्त गद्गद हो गया है। तुमने मेरे जीवन पर प्रकाश डालने-वाला यह इतिहास कितनी कोमल भावनाओं से लिखा है। कितना हृदय-स्पर्शी है यह ! कितना करुण ! कितना वेदनापूर्ण ! पर कितना यथार्थ !

“आज तक मेरे जीवन की सच्चाई पर किसीने रोशनी नहीं डाली थी। इसलिए मेरी आत्मा यहां की चीजों के आसपास चक्कर काटती रहती थी। पिछले पच्चीस वर्षों से मैं लगातार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। अंत में तुम यहां आईं। मुझे कितना अच्छा लगा !

“यहां आने पर मेरी आत्मा की तीव्र इच्छा से ही तुम्हारे मन में मेरे जीवन के रहस्य के प्रति इतना कौतूहल उत्पन्न हुआ। मेरी इच्छा से ही तुम्हें

मेरा इतिहास लिखने की प्रेरणा हुई। वह इतिहास पूरा हुआ। मुझ बड़ा संतोष मिला।

“प्रतिमा, मेरे जीवन का यह दुःखांत देखकर यदि दुनिया की क्रूरता क्षण-भर के लिए भी रुक गई, तो मैं समझूंगी कि मेरा बलिदान सार्थक हो गया।

“इसे पढ़कर जग का हत्याकारी खड्ग किसी निष्पाप प्राणी पर प्रहार करने से पहले कम-से-कम क्षण-भर के लिए तो सोचेगा। उसकी आत्मा मानवता का ध्यानकर कुछ देर के लिए तो कोमल बन ही जायगी! प्रतिमा, इसीमें मेरे बलिदान की विजय हो जायगी, मेरा जीवन कृतार्थ हो जायगा।

“बेटी प्रतिमा, तुम्हें मेरा आशीर्वाद है। तुम्हारा जीवन सुखी होगा। जिस आंधी के कारण तुम्हारी सास की जीवन-ज्योति बुझ गई, उस आंधी का अब तुम्हें सामना नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि वह देखो, उधर अपने ससुर के चित्र की ओर देखो। मेरी बुझती हुई ज्योति के कारण उनके हृदय में प्रकाश की कैसी निर्मल ज्योति जल रही है। इस प्रकाश से प्रसन्न का जीवन उज्ज्वल हो गया है। उसके दादा के, उसके पिता के, दुर्गुण उसमें नहीं हैं। इसपर तुम विश्वास रखो। सुख से फलो-फूलो! अच्छा विदा!”

इसके बाद वह आकृति धीरे-धीरे वहां से हटी। आगे बढ़कर वह सामने के बापूसाहब के चित्र के सामने रुकी, फिर बड़ी तेजी से यह कहती हुई दरवाजे की ओर दौड़ पड़ी, “अनंत, मैं आ रही हूं।”

प्रतिमा भारी मन से उस आकृति का ध्यान करती रही। अचानक प्रतिमा को आकाश में एक ज्योति जलती दिखाई दी। वह बकुल की आकृति का रूपांतर था।

प्रतिमा अपनी समाधि से जाग उठी। वह समझ न पाई कि एक क्षण पहले उसने अपनी सास की जो आकृति देखी थी और उस आकृति ने उससे जो बातें की थीं, वह सब सच था, अथवा उसकी कल्पना-मात्र थी!

प्रतिमा के मन में और भी कई प्रश्न उठे। जो हो, बकुल के दर्शन से उसका मन आनंदित हो उठा। कितनी कोमल भावनाओं की तरंगें उठी थीं उसके मन में। उन अद्भुत भावनाओं की गूढ़ता में खोई हुई वह दिनभर घूमती रही। एक प्रश्न बार-बार उसके मन में उठ रहा था—बकुल की जो

आकृति उसने देखी, वह जाते समय यह कहती हुई अदृश्य क्यों हुई—“अनंत में आ रही हूं?”

शाम तक प्रतिमा इसी विचार में खोई रही। बकुल के जीवन का सारा रहस्य वह जान चुकी थी, लेकिन अंतिम प्रश्न का उत्तर पाना अभी शेष था। वह अत्यंत अधीर होकर उस प्रश्न पर सोच रही थी कि तारवाला आया और उसने एक तार निकालकर दिया। उसे पढ़ते ही प्रतिमा को उसके सवाल का जवाब मिल गया। तार में अनंत दीक्षित की मृत्यु का समाचार था।

इस दुःखद समाचार से प्रतिमा के मन को बड़ा धक्का लगा। पर दूसरे ही क्षण उसका हृदय जगन्नियंता के प्रति कृतज्ञता से भर उठा।

अनंत और बकुल कहा करते थे, “विधाता को मंजूर होगा तो हम दोनों की भेंट अवश्य होगी।” उन दोनों का शारीरिक मिलन कभी भी हो सकता था, पर वैसे मिलन की अपेक्षा वे तो आत्मिक मिलन के आकांक्षी थे।

बकुल जबतक इस संसार में रही, एक-से-एक बढ़कर कठोर यातनाओं का सामना करती रही। उसके जीवन में भयंकर-से-भयंकर तूफान आये। उनका दृढ़तापूर्वक मुकाबला करने की उसमें क्षमता न थी। एक असहाय प्राणी की भांति वह उन्हें झेलती रही। आखिर यह नश्वर शरीर असह्य वेदनाओं के भार को कबतक सहन कर सकता था! उसकी जीवन-ज्योति बुझ गई।

विद्योह सदा दुःखदाई होता है। बकुल के जीवन की इतिश्री की सूचक पंक्तियां लिखते समय प्रतिमा ने स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि ऐसी नाजुक घड़ी में उसे अनंत दीक्षित के तिरोहित होने की खबर मिलेगी। क्षण-भर को वह उस समाचार से बड़ी व्यथित हुई; लेकिन तभी उसका हृदय एक अनिर्वचनीय आनंद से ओतप्रोत हो गया। बकुल की आत्मा को कम-से-कम अंत में तो सुख मिला ही।

पार्थिव शरीरों की एकरूपता से परे इस विश्व में आत्मिक मिलन का जो एक तेजस्वी तथा अजर-अमर सिद्धांत है, उसके अनुसार अनंत और बकुल का मिलन अवश्यभावी था और वह होकर ही रहा।

